पंचाल राज्य का इतिहास

डॉ० सुषमा आर्या

डॉ० सुषमा आर्या

1. **जन्म**—ग्राम मुंडेट (रुड़की, हरद्वार, उत्तराखंड) में 14 जनवरी 1963 को डॉ० श्री सेवाराम आर्य (त्यागी) के घर में जन्म।
2. **शिक्षा**—मुरादाबाद, श्रीमद्दयानन्दार्षविद्यापीठांतर्गत कन्या गुरुकुल नरेला (दिल्ली), गुरुकुल कांगड़ी विश्वविद्यालय (हरद्वार), महर्षिदयानंद विश्वविद्यालय रोहतक और विश्वायतन योगश्राम जम्मू से शास्त्री, आचार्य (संस्कृत, प्राचीन इतिहास), एम.ए. (इतिहास), पी.एच.डी. (उत्तरी और दक्षिणी पांचाल), बी.एड. एम.एड., योगशिक्षक आदि उपाधियाँ प्राप्त कीं। आचार्य कक्षा में स्वर्णपदक प्राप्त किया।
3. विदेशों में फैली भारतीय संस्कृति, सभ्यता आदि के अध्ययन हेतु इंडोनेशिया, थाईलैंड, सिंगापुर, बाली, जावा, सुमात्रा आदि की यात्रा।
4. कन्यागुरुकुल नरेला (दिल्ली) के ऐतिहासिक पुरातत्त्व संग्रहालय में रहकर प्राचीन मुद्रा, मुद्रांक, शिलालेख, मूर्तिविज्ञान आदि का क्रियात्मक ज्ञान प्राप्त करते हुए विशेष योग्यता अर्जित करना।
5. भाषण एवं निबंध प्रतियोगिताओं में पुरस्कार प्राप्त किए।
6. गुरुकुल कांगड़ी विश्वविद्यालय से पुरस्कृत 'महर्षि दयानन्द और राष्ट्रीय एकता' नामक आपकी पुस्तक आर्यप्रतिनिधिसभा महाराष्ट्र की ओर से प्रकाशित।
7. वर्त्तमान में नई दिल्ली नगरपालिका परिषद् के अंतर्गत अध्यापनकार्य।
8. दैनिक यज्ञ करना आपके जीवन का अभिन्न अंग बन गया है। प्रतिवर्ष चतुर्वेदपारायण यज्ञ भी करती हैं।
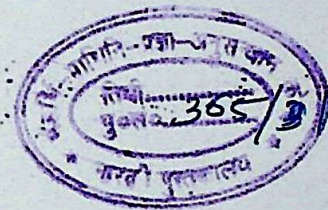
ओ३म्

पञ्चाल राज्य का इतिहास

अर्थात्

उत्तरी और दक्षिणी पञ्चाल

का

ऐतिहासिक और पुरातात्विक अध्ययन

लेखिका

डॉक्टर सुषमा आर्या

सम्पादक

विरजानन्द दैवकरणि

प्रकाशक

प्राचीन भारतीय इतिहास शोध परिषद्

११९, गुरुकुल गौतमनगर, नई दिल्ली-४९

प्रस्तुत ग्रन्थ पर सम्मतियाँ

पांचाल राज्य के इस इतिहास ग्रन्थ में लेखिका ने विषयवस्तु का सम्यक् विवेचन किया है तथा स्वयं के द्वारा की गई अनेक मौलिक खोजों की भी चर्चा की है। संस्कृत, पाली आदि साहित्य का प्रचुर मात्रा में प्रयोग किया गया है। अंग्रेज़ी भाषा में उपलब्ध ग्रन्थों और शोधपत्रों का भी उपयोग इस पुस्तक में करना चाहिए था। लेखिका ने सामग्री एकत्र करने तथा उसकी विवेचना करने में भरपूर परिश्रम किया है तथा अपने निष्कर्षों को सम्यग् रूपेण सुसम्बद्ध रीति से प्रस्तुत किया है। भाषा एवं प्रस्तुतीकरण उच्चकोटि का है।

—डॉ० कृष्णदत्त वाजपेयी

ए-१५, पद्माकरनगर, सागर (म०प्र०)

पांचाल इतिहास में दी गई अधिकांश सामग्री लेखिका ने स्वतः सर्वेक्षण द्वारा प्राप्त की है। इनका यह कठिन कार्य सराहनीय है। इस सामग्री से सम्बन्धित विषय पर हमारे ज्ञान में अभिवृद्धि हुई है। ऐतिहासिक स्रोतों का अध्ययन और उपयोग भी ग्रन्थ में भलीभाँति स्पष्ट होता है। यह शोधकार्य अन्वेषणात्मक एवं आलोचनात्मक है और इनकी समीक्षात्मक प्रतिभा एवं तर्कसंगत निर्णय लेने की क्षमता का परिचायक है। विषय का प्रस्तुतीकरण साहित्यिक दृष्टि से भी सन्तोषजनक है। सांस्कृतिक इतिहास का विवरण अधिक विस्तृत होना चाहिए था।

—डॉ० युद्धवीर सिंह

पूर्व अध्यक्ष इतिहास विभाग

कुरुक्षेत्र विश्वविद्यालय, कुरुक्षेत्र

पञ्चालानां प्रदेशे भ्रमणकृतपरीष्टौ बुधैर्लब्धकीर्तिः,
द्वात्रिंशच्छासकानामविरलमखिलप्राप्तवृत्तान्तगाथा।
लब्ध्वोपाधिं प्रतिष्ठां सपदि गुरुकुलात् कांगड़ीविश्वविद्या-
केन्द्रात् सद्भावभूषाऽमलगुणसुषमा राजते सुप्रसिद्धा॥ १॥

आचार्या शब्दशास्त्रे श्रुतिविमलमतिर्येतिहासे सुविख्या
सेवारामार्यपुत्री दुहितृगुरुकुलस्नातिकाऽजातशत्रुः।
आर्या सौम्यस्वभावा विविधगुणवती कन्याकावृन्दवन्द्या,
सद्विद्याद्योतितान्तः प्रथयति भुवने प्रोज्ज्वलां कीर्तिगाथाम्॥ २॥

—आचार्यविशुद्धानन्दमिश्रः

वेदमन्दिर, कूचापांडा, बदायूँ

पंचाल राज्य का इतिहास

विषय-सूची

तृतीय अध्याय : पंचाल राज्य का सांस्कृतिक इतिहास

चतुर्थ अध्याय : पंचाल की मूर्त्तिकला और वास्तुकला

पंचम अध्याय : पंचाल राज्य की पुरातत्वीय सामग्री

षष्ठ अध्याय

समर्पण

श्रीमती द्रौपदी त्यागी
डॉक्टर श्री सेवाराम आर्य (त्यागी)

जिन माता-पिता के सर्वविध सहयोग से निश्चिंत होकर पंचाल इतिहास के इस ग्रंथ का प्रणयन हो सका है, तथा आज भी जिनकी छत्रच्छाया मेरे सिर पर विद्‌यमान है, उन्हीं माता-पिता की सेवा में यह ग्रंथ सश्रद्ध समर्पित कर रही हूँ।

—सुषमा आर्या

सम्पादकीय

प्राचीन संस्कृत और पाली साहित्य में पञ्चाल प्रदेश की जितनी चर्चा है उतनी अन्य किसी जनपद अथवा राज्य की नहीं मिलती। इससे पांचाल क्षेत्र की महत्ता सुतरां सिद्ध है। पञ्चाल राज्य के विषय में स्वर्गीय डॉ० कृष्णदत्त जी वाजपेयी तथा डॉ० कृष्णमोहन श्रीमाली ने बहुत कुछ लिखा है, परन्तु प्रस्तुत ग्रन्थ में संस्कृत साहित्य तथा पुरातत्त्वीय प्रमाणों के आधार पर सर्वथा नूतन अन्वेषण करके इतिहास जगत् को विशेष देन दी गई है। अन्य संग्रहालयों से सामान्य सहायता लेने के साथ-साथ लेखिका ने अनेक वार स्वयं पञ्चाल प्रदेश का सर्वेक्षण किया है। इन्हीं सर्वेक्षणों में अद्यावधि अन्यत्र अप्राप्त और अप्रकाशित सामग्री की उपलब्धि हुई है। ऐसी ही दुर्लभ सामग्री को इस इतिहास के माध्यम से जनता के सम्मुख प्रस्तुत किया गया है। इस पुरुषार्थ के लिए इतिहास-पुरातत्त्व जगत् लेखिका डॉक्टर सुषमा आर्या का सदा ऋणी रहेगा। इस महत्त्वपूर्ण अभूतपूर्व देन के लिए वे बधाई की पात्रा हैं।

मैंने स्वयं भी गत ३२ वर्षों में सौ से अधिक वार पञ्चाल के अहिच्छत्रा आदि स्थानों का सर्वेक्षण किया है। १९६९ से १९९५ तक जितनी ऐतिहासिक सामग्री इस क्षेत्र में उपलब्ध हुई, वह सब तो हरयाणा प्रान्तीय पुरातत्त्व संग्रहालय गुरुकुल झज्जर में रख दी गई। वर्तमान विषम परिस्थिति में इस पुस्तक के लिखने में उस अप्रकाशित सामग्री का प्रयोग करना सर्वथा असम्भव था, इसीलिए **प्राचीन भारतीय इतिहास शोध परिषद्** की स्थापना करके विगत चार वर्षों में पञ्चाल क्षेत्र के पुरातत्त्वीय अन्वेषण में विशेष पुरुषार्थ किया है और ईश्वर की कृपादृष्टि रही है कि इन अन्वेषणों में अड़तालीस पांचाल शासकों का पता लगा लिया गया है। पञ्चाल प्रदेश के इतने शासकों की जानकारी अभी तक कोई इतिहास पुरातत्त्वज्ञ नहीं कर पाया था। इसलिये यह नया अन्वेषण इतिहासकारों के लिए गौरव का विषय है।

पञ्चाल क्षेत्र में अब भी प्राचीन ऐतिहासिक सामग्री का अतुल भण्डार भूमि में दबा पड़ा है। यदि भारतीय पुरातत्त्व सर्वेक्षण विभाग अहिच्छत्रा, काम्पिल्य, संकिशा और काशीपुर की खुदाई पूर्णरूप से करवा दे तो भारतीय प्राचीन इतिहास की अमूल्य धरोहर की उपलब्धि हो सकती है। एक-एक स्थल ही अपने भीतर अतुल सम्पदा संजोए पड़ा है। निकट भविष्यत् में इनका उद्धार होने की सम्भावना नहीं दीखती। इस विषय में ब्रिटिश युगीन भारतीय एवं अंग्रेज़ विद्वानों का परिश्रम और लग्न सराहनीय था जिनके कारण देश को शतशः शिलालेख, ताम्रपत्र, मुद्राएँ, मोहरें एवं मूर्त्तियाँ आदि प्राप्त हुईं। इनको प्राप्त करके वे लोग तुरन्त प्रकाशित भी करा देते थे। यह प्रवृत्ति आज स्वतन्त्र भारत के पुराविदों में नहीं है। पहले तो कोई जंगलों में भटककर सामग्री संग्रह करने आदि का कष्ट नहीं उठाना चाहता। दूसरे यदि कभी किसी व्यक्ति को किसी भांति कोई पुरावस्तु मिल गई और वह पुरातत्त्व विभाग तक पहुँच गई तो अधिकतर तो उसके विषय में जानते ही नहीं, जानते हैं

तो प्रकाश में नहीं लाते और वह सामग्री भूमि में दबे हुए की भांति प्रकोष्ठों में बन्द हो जाती है। कोई इच्छुक व्यक्ति देखना चाहता है तो भी नहीं देख सकता, क्योंकि दिखाने की प्रक्रिया अत्यन्त जटिल और धीमी है जिससे देखनेवाले का उत्साह मन्द पड़ जाता है। यही कारण है कि अपने ऐतिहासिक अन्वेषण की अन्य प्रमाणों से पुष्टि हेतु राष्ट्रीय संग्रहालय दिल्ली आदि में वर्षों तक यत्न किया गया, पुनरपि सफलता नहीं मिली। उनके सुरक्षित भंडार से लाभ उठाना असंभव ज़ान पड़ता है।

इसीलिए स्वयं पुरुषार्थ करके अन्वेषण करना, उसी को प्रकाश में लाना तथा दूसरों को उपयोग करने की सुविधा देना उचित जान पड़ा है। भारत-भर में अनेक संग्रहालय हैं, जिनके पास प्राचीन दुर्लभ सामग्री रक्खी है, पुनरपि उसे प्रकाशित नहीं करते। यह प्रवृत्ति संतोषजनक नहीं है। राजकीय संग्रहालयों के अधिकारियों को जीविका प्राप्ति तो राजकीय सहयोग से हो ही रही है, उसके बदले में पुरातत्त्वीय धरोहर को प्रकाशित करके राष्ट्र को कुछ अद्भुत देन दे दी जाये तो सभी का उपकार हो सकता है। पूर्व प्रकाशित सामग्री को ही अनेक रूपों में पुनः प्रकाशित करके ग्रन्थों को नया रूप देने की अपेक्षा अप्रकाशित वस्तुओं को प्रकाश में लाना अधिक उपयोगी है। अन्यथा सब पुरावशेष प्रदर्शनीकक्ष तथा अल्मारियों की ही शोभा बढ़ाते रह जाएँगे। इसलिए इतिहास पुरातत्त्व के विशेषज्ञों को अपने जीवन में कुछ नवीन रचना देकर यश प्राप्त करते रहना चाहिए।

संस्थागत तथा निजी संग्रहालयों के अधिकारीजन न तो स्वयं कुछ लेखन कार्य करते हैं न किसी अन्य को चित्रादि देते हैं। बहुतों की योग्यता इतनी नहीं होती कि वे उस सामग्री के माध्यम से कुछ लिख सकें। पुनरपि दूसरों के ज्ञान को अपने नाम से प्रचारित करने की कामना बनी रहती है। ऐसी ही प्रवृत्तियों के कारण नूतन लेखन नहीं हो पाता।

संग्रहकर्ता और विद्वानों में उपर्युक्त प्रवृत्ति को देखकर ही हमने प्राचीन भारतीय इतिहास शोध परिषद् के माध्यम से इस अभाव की पूर्ति करने का महत्प्रयत्न आरम्भ किया है। ईश्वर की कृपा से यह प्रयत्न कार्यरूप में परिणत हो यही प्रार्थना हैं। पञ्चाल राज्य सम्बन्धी यह परिणाम इसी प्रयास का तीसरा फल है। आशा है सुधीजन इसका उपयोग करके लाभान्वित होंगे।

केन्द्रीय हिन्दी निदेशालय के अनुदान से इस ग्रन्थ का प्रथम संस्करण प्रकाशित हुआ था। उस मूल ग्रन्थ में लेखिका ने प्राचीन भारतीय मान्यता के अनुसार तथा आधुनिक नवीनतम अन्वेषण के आधार पर कुछ कालक्रम दिये थे। हिन्दी निदेशालय के विशेषज्ञ ने अपने ज्ञान के अनुसार यह टिप्पणी दी थी कि इस अतिरंजित कपोलकल्पित भारतीय पारम्परिक कालानुक्रम का उल्लेख करना हास्यास्पद लगता है, अतः इस कपोलकल्पित कालक्रम को हटा दें जिससे भविष्य में आलोचना से बचा जा सके।

हिन्दी निदेशालय के प्रकाशन तथा अनुदान के नियम के अन्तर्गत यह सत्य बात भी मूल ग्रन्थ से हटानी पड़ी थी। आधुनिक शिक्षापद्धति से शिक्षित-दीक्षित व्यक्ति

भारतीय कालक्रम को काल्पनिक मानते हैं। परन्तु प्राचीन भारतीय ज्योतिष और कालपरम्परा के अनुसार यह मान्यता उचित सिद्ध होती है। इसीलिए इस प्रकार के कालक्रम को इस पुस्तक में पुनः स्थान दिया गया है। सारा प्राचीन भारतीय वाङ्मय सतयुग, त्रेतायुग, द्वापरयुग और कलियुग आदि को सिद्ध करता है। इस प्रामाणिक सत्य को कुछेक विदेशी इतिहासकारों ने अमान्य कर दिया तो भारतीय भी आँख बन्द करके ज्यों-का-त्यों मान बैठे हैं, यह प्रवृत्ति अन्वेषण करनेवालों की नहीं होती।

इसीलिए सम्पादक और प्रकाशक के नाते मैंने सत्य बात को तत् तत् स्थलों में टिप्पणी में दे दिया है। जब हम सत्य का प्रचार ही नहीं करेंगे तो जनता तक वह कैसे पहुँचेगा। भारतीय इतिहास में हमें अनेक असत्य बातें १५० वर्षों से लगातार और बार-बार पढ़ाई लिखाई जा रही हैं। इसीलिए हम उन्हें सत्य मान बैठे हैं तथा भारतीय परम्परा ज्ञान, विज्ञान, भाषा आदि को हेय दृष्टि से देखते हैं।

भारतीय कालक्रम को कपोलकल्पित कहने वाले विद्वानों ने क्या कभी प्राप्त शिलालेखों का गम्भीरता से अध्ययन किया है? उनमें जो युगादि के अनुसार संवत् लिखे हैं वे क्यों सत्य निकलते हैं और ज्योतिष के साथ कैसे अक्षरशः सही बैठते हैं। जिन्हें संस्कृत का ज्ञान नहीं, भारतीय परम्परा से जो अनभिज्ञ हैं, वे भला इन शिलालेखों और ताम्रपत्रों में दिये कालक्रम को कैसे समझ सकते हैं। जिन्हें यह नहीं ज्ञात कि हर्ष और शक संवत् कितने हैं, किसने चलाए, वे लोग भारतीय प्राचीन कालक्रम को कपोलकल्पित कहें तो क्या आश्चर्य है? इतिहास के अन्वेषण के लिए चतुर्मुखी दूरदृष्टि की आवश्यकता होती है। अंग्रेज़ी पद्धति वाले १५० वर्ष में ही अपनी कितनी मान्यताएँ बदल चुके हैं। सृष्टि की उत्पत्ति को छह हजार वर्ष पूर्व मानने वाले लाखों वर्ष पहले की बनी हुई कैसे मानने लगे। ऋषि-मुनि जो अन्वेषण कर चुके उसके आगे आज का इतिहासज्ञ एक अज्ञ बालक है। सत्य को ग्रहण करना कड़वी औषध के समान होता है, परन्तु अज्ञानरूपी रोग के निवारण हेतु उसका पान करना आवश्यक और हितकारी भी होता है।

आशा है विद्वज्जन सत्य के ग्रहण हेतु विचार-विमर्शपूर्वक अन्वेषण करने की कृपा करेंगे, क्योंकि **'वादे वादे जायते तत्त्वबोधः'** तर्क-वितर्क करने से तत्त्व का ज्ञान होता है।

इस पुस्तक के टंकण और चित्रण में श्री विजयकुमारजी झा, श्री मनोजकुमारजी झा तथा श्री सुदर्शनजी खन्ना ने विशेष यत्न किया है। चित्र बनाने में संजय स्टूडियो झज्जर का योगदान है। इन सभी सज्जनों का हार्दिक धन्यवाद करता हूँ।

इस पुस्तक के प्रकाशन हेतु डॉ० श्री सुधीरकुमार आनन्द, लास एंजेल्स, अमेरिका और श्री देवदत्त त्यागी, प्रधानाचार्य महाराणा प्रताप हाईस्कूल, मुण्डेट (रुड़की) ने आर्थिक सहायता प्रदान की है, एतदर्थ इनका कृतज्ञ होते हुए धन्यवाद व्यक्त करता हूँ।

प्राचीन भारतीय शोध परिषद्
११९, गुरुकुल गौतमनगर, नई दिल्ली-४९
नयागाँव (झज्जर) हरियाणा-१२४१०३

निवेदक
विरजानन्द दैवकरणि
१४.१.२००१

यह ग्रंथ क्यों और कैसे ?
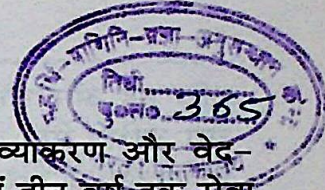
कन्या गुरुकुल नरेला (दिल्ली) में संस्कृत के माध्यम से व्याकरण और वेद-वेदांगों का अध्ययन करते हुए मुझे वहाँ के पुरातत्व संग्रहालय में तीन वर्ष तक सेवा करने का अवसर प्राप्त हुआ। इससे पूर्व भी पुरातत्त्व संग्रहालय गुरुकुल झज्जर के सहनिदेशक श्री विरजानन्द दैवकरणि संग्रहालय संबंधी सामग्री के संग्रह हेतु अहिच्छत्रा जाते आते समय मुरादाबाद में मेरे पूज्य पिताजी के पास रुकते थे, उस समय भी कई बार अहिच्छत्रा की सामग्री देखने समझने को मिली। तदनन्तर पिताजी ने कन्या गुरुकुल नरेला में अध्ययन करने के लिए प्रविष्ट करा दिया। उसी समय से अहिच्छत्रा के इतिहास और पुरातत्व की ओर मेरी अभिरुचि बढ़ती चली गई।

गुरुकुल कांगड़ी में इतिहास से एम०ए० करते हुए इस ओर विशेष रुचि जागृत हुई, इसीलिए उसी समय एम०ए० श्रेणी में एक विशेष निबंध का प्रश्नपत्र लेते समय अहिच्छत्रा विषय ही मैंने चुना और एक लघुशोध निबंध लिखकर दिया। उसी से प्रेरणा पाकर आगे शोध विषयक जिज्ञासा जागृत हुई तो पंचाल प्रदेश को शोध का विषय बनाया, प्रस्तुत इतिहास इसी का परिणाम है।

इस कार्य के लिए मैंने पंचाल क्षेत्र के अनेक प्राचीन ग्राम और नगरों में अनेक बार मीलों तक पैदल जाकर ऐतिहासिक महत्व की सामग्री को देखने, चित्र लेने तथा हो सका तो संग्रह करने का भी यत्न किया है। इसीलिए मैं यह कह सकती हूँ कि इस ग्रंथ में अधिकतर पुरावशेष इतिहास जगत् के लिए प्रथम वार मेरे द्वारा ही प्रकाश में लाये गये हैं। क्योंकि मैंने इस कार्य में किसी की प्रतिलिपि करने की चेष्टा नहीं की है। यह मेरा नितांत मौलिक कार्य है। प्राचीन भारतीय इतिहास शोध परिषद् के संग्रह से भी मैंने पूरा सहयोग पाया है।

इस कार्य हेतु हरयाणा प्रांतीय पुरातत्व संग्रहालय गुरुकुल झज्जर, पुरातत्व विभाग गुरुकुल कांगड़ी, पुरातत्व विभाग हरियाणा सरकार चण्डीगढ़, पुरातत्व विभाग पंजाब सरकार चण्डीगढ़, राष्ट्रीय संग्रहालय दिल्ली, राज्य संग्रहालय लखनऊ, चंदौसी संग्रहालय एवं राजकीय संग्रहालय मथुरा की यात्राएं भी की हैं तथा इतिहास विषयक सामग्री का गहन अध्ययन भी किया है।

आभार प्रदर्शन

सर्वप्रथम मैं जगन्नियंता परमपिता परमेश्वर की कृतज्ञा हूँ जिसकी अपार कृपा से मैं इस दुस्तर कार्य को पूरा करने में समर्थ हो सकी हूँ।

तदनंतर मैं अपने वत्सगोत्रीय जनक पिता श्री पंडित सेवाराम जी आर्य के लिए हृदय से आभार व्यक्त करती हूँ कि जिनकी छत्रच्छाया में सुखपूर्वक रहकर उनसे भरण-पोषण, आच्छादन आदि सभी प्रकार की सुविधायें मिली हैं, साथ ही इन्होंने कई बार पंचाल प्रदेश के अनेक ग्रामों में स्वयं साथ जाकर मेरे कार्य में बड़ी सहायता पहुँचाई है।

हरयाणा प्रान्तीय पुरातत्त्व संग्रहालय गुरुकुल झज्जर के पूर्व सहनिदेशक श्री विरजानंद दैवकरणि की मैं विशेष ऋणी हूँ जिनके कारण मुझे इतिहास-पुरातत्व की ओर

रुचि हुई और जो कुछ मैं आज हूँ, वह सब इन्हीं के सत्प्रयत्नों का परिणाम है। मेरी अभिन्न मित्र कुमारी शैलजा (पूर्व शिक्षा राज्य मंत्री, भारत सरकार) ने मेरा सदा विशेषरूप से उत्साहवर्द्धन किया है और इस विषय में आगे बढ़ने के लिए प्रेरित किया है।

स्वर्गीय डॉ० श्री सत्यकेतु जी विद्यालंकार, डॉ० विनोदचंद्र सिन्हा, स्वर्गीय डॉ० कृष्णदत्त जी वाजपेयी, स्वर्गीय डॉ० जबरसिंह सेंगर पुरातत्व संग्रहालय और इतिहास विभागाध्यक्ष गुरुकुल कांगड़ी विश्वविद्यालय, डॉ० श्यामनारायण सिंह, गुरुकुल कांगड़ी विश्वविद्यालय, श्री धर्मवीर जी शर्मा अधीक्षण पुरातत्त्वविद्, भारतीय पुरातत्त्व सर्वेक्षण विभाग तथा डॉक्टर मनमोहन कुमार शर्मा इतिहास विभाग, महर्षि दयानन्द विश्वविद्यालय रोहतक, स्वर्गीय आचार्य रामप्रसाद जी वेदालंकार, उपकुलपति, गुरुकुल कांगड़ी विश्वविद्यालय तथा इनके पूरे परिवार का भी मैं हृदय से आभार व्यक्त करती हूँ जिन्होंने मुझे समय-समय पर उत्साहित करके धैर्य प्रदान किया है।

जिन ग्रंथों से मैंने इस शोध कार्य में सहायता ली है उनके लेखकों और प्रकाशकों का भी मैं धन्यवाद करती हूँ।

भाई रामदाससिंह एवं भाई दलपतसिंह आनंदपुर (अहिच्छत्रा) तथा उनके सुपुत्र श्री सत्यपालसिंह एवं पंचाल क्षेत्र के उन सभी ग्रामवासियों के लिए भी मैं कृतज्ञता ज्ञापन करती हूँ जिनके निश्छल प्रेम और सहज स्वाभाविक स्नेह के कारण ऐतिहासिक सामग्री तथा उसके चित्रादि संग्रह करने में सहायता मिली है।

मेरे इस कार्य की तुलना इतिहास पुरातत्व के विद्वानों के ग्रंथों से न करके एक शोधछात्रा की दृष्टि से ही विचारना चाहिए। मैं अपने इस प्रथम प्रयास को प्रथम सीढ़ी कह सकती हूँ। प्रथम सीढ़ी पर चढ़कर मैं जितना दृष्टिपात कर सकी हूँ उतना ही इसमें वर्णित कर दिया है। यदि मेरे इस तुच्छ प्रयास से इतिहास पुरातत्व जगत् को एक भी नई उपलब्धि हुई तो मैं स्वयं को गौरवान्वित समझूँगी और अपने प्रयास को सफल हुआ जानूँगी। प्राचीन भारतीय इतिहास के अन्वेषण हेतु महर्षि दयानंद सरस्वती ने एक सुझाव दिया है, वह यह कि यदि ऐसे ही हमारे आर्य सज्जन लोग इतिहास और विद्या पुस्तकों का खोजकर प्रकाश करेंगे तो देश को बड़ा ही लाभ पहुँचेगा। यह कार्य करते हुए मेरे हृदय में उक्त धारणा भी विद्यमान रही है।

इस ग्रन्थ में जो त्रुटियाँ हैं वे सब मेरी हैं तथा जो कुछ श्रेष्ठता है वह सब मेरे गुरुजनों और शिक्षकों की है। मैं तो केवल अभिव्यक्ति की माध्यममात्र हूँ। अतः यदि मेरे इस कार्य में कोई त्रुटि रह गई हो तो विद्वान् लोगों से क्षमा याचना करती हूँ।

गच्छतः स्खलनं क्वापि भवत्येव प्रमादतः।
हसन्ति दुर्जनास्तत्र समादधति सज्जनाः॥

मुण्डेट (मंगलौर)
हरिद्वार (उत्तरप्रदेश)

निवेदिका
सुषमा आर्या
२० दिसम्बर, १९९९

विषय प्रवेश

यद्यपि प्राचीन भारत में गणतन्त्रात्मक प्रणाली के साथ-साथ एकराजतंत्र प्रणाली भी प्रचलित रही है, पुनरपि उन एकतंत्र शासकों ने अपने विशाल राज्य को सुचारु रूप से चलाने तथा सुदृढ़ और संगठित रखने के अभिप्राय से प्रांतों अथवा छोटे राज्यों के रूप में विभक्त किया हुआ था। उन्हें स्थानीय शासक कहा जाता था।

कालांतर में प्रमुख राजशासक के प्रभाव से मुक्त होकर माण्डलिक राजा अपने राज्य के स्वतंत्र शासक बन बैठते थे। इसी प्रकार के राज्यों में प्राचीन भारत में पंचाल नामक एक राज्य था। आर्यावर्त्त के अंतर्गत ब्रह्मर्षि देश के एक भाग का नाम पंचाल था। महाभारत काल में पंचाल प्रदेश उत्तर और दक्षिण पंचाल इन दो भागों में विभक्त हो गया था।

वर्त्तमान उत्तर प्रदेश के मेरठ, मुजफ्फरनगर, सहारनपुर, बिजनौर, मुरादाबाद, रामपुर, पीलीभीत, बरेली, शाहजहाँपुर, बदायूँ, फर्रुखाबाद, हरदोई, इटावा, मैनपुरी, एटा, अलीगढ़ और बुलंदशहर इनसे घिरी हुई सीमा वाला प्रदेश प्राचीन काल में पंचाल राज्य कहाता था। उत्तर और दक्षिण पंचाल के बीच की सीमा गंगा नदी थी। उत्तर पंचाल की उत्तरी सीमा क्या थी, इसका निश्चित कथन महाभारत में नहीं मिलता। कुछ विद्वानों का अनुमान है कि हिमालय पर्वत उत्तरी सीमा का निर्माण करता था। महाभारत के अनुसार दक्षिण पंचाल की दक्षिणी सीमा चर्मण्वती (चंबल) नदी थी। सर कनिंघम का अनुमान है कि पूरा पंचाल राज्य किसी समय उत्तर में हिमालय से लेकर दक्षिण में चंबल नदी तक फैला हुआ था।

उत्तर पंचाल की राजधानी अहिच्छत्रा नामक नगरी थी तथा दक्षिण पंचाल की राजधानी का नाम कांपिल्य था। भारत के पुरातत्व सर्वेक्षण विभाग ने कांपिल्य की अपेक्षा अहिच्छत्रा की खुदाई अधिक कराई है, इसीलिए अहिच्छत्रा के प्राचीन इतिहास की जानकारी अधिक मिलती है। वैदिक साहित्य, पुराण आदि संस्कृत साहित्य तथा पुरातत्व के अन्वेषणों के अनुसार उत्तर पंचाल के निम्नलिखित शासकों के नाम ज्ञात किये जा चुके हैं—नील, सुशांति पुरुजानु, ऋक्ष, भृम्यश्व, मुद्गल, वध्र्यश्व, दिवोदास, मित्रायु, सृंजय, च्यवन पिजवन, सुदास, सहदेव, सोमक, जंतु, क्रैव्य, शोण सात्रासाह, दुर्मुख, प्रवाहण जैबलि, पृषत, द्रोणाचार्य, वृषभमित्र, दामभूति, शोनकायन, वंगपाल, भागवत, आषाढसेन, वसुसेन, युगसेन, पुष्यसेन, यज्ञपाल, यज्ञबल, भद्रघोष, रुद्रघोष, इंद्रमित्र, वरुणमित्र, अग्निमित्र, भानुमित्र, सूर्यमित्र, फाल्गुनीमित्र, प्रजापतिमित्र, जयमित्र, विजयमित्र, विष्णुमित्र, भूमिमित्र, वसुमित्र, ध्रुवमित्र, रुद्रगुप्त, जयगुप्त, अणुमित्र, शिवमित्र, भद्रमित्र, पृथिवीमित्र, अच्युत, श्रीनंदि, शिवनंदि, नंदिगुप्त, महेश्वर आदि।

इसी प्रकार दक्षिण पंचाल के समर, पृथु, ब्रह्मदत्त, हरिषेण, विश्वक्सेन, उदक्सेन, जनमेजय, द्रुपद आदि शासकों के नाम ज्ञात हैं।

सन् 1833, 1862 से 63, 1891 से 92, 1905, 1940 से 1944 में उत्तर पंचाल की राजधानी अहिच्छत्रा की पाँच वार खुदाई हो चुकी है। इस उत्खनन में शिव

मंदिर, पार्श्वनाथ मंदिर, बौद्ध मंदिर (स्तूप), सहस्त्रों मृन्मूर्तियाँ, प्रस्तर-मूर्तियाँ, मोहरें, मुद्रायें, शिलालेख, मणके तथा विविध कलात्मक सामग्री प्राप्त हुई थी। यह सामग्री ब्रिटिश म्यूजियम लंदन, दिल्ली, लखनऊ तथा उज्जैन आदि संग्रहालयों में है। इससे अतिरिक्त समय-समय पर जो सामग्री उपलब्ध होती रही है वह गुरुकुल झज्जर, कन्या गुरुकुल नरेला (दिल्ली) एवं चंदौसी के संग्रहालयों तथा बरेली, आँवला, इलाहाबाद, सागर एवं जौनपुर के कुछ व्यक्तिगत संग्रहों में भी विद्यमान है।

पंचाल में पांचाल राजाओं से अतिरिक्त मौर्य, शुंग, कुषाण, गुप्त, हर्ष, प्रतिहार राष्ट्रकूट तथा रुहेला शासकों का भी राज्य रहा है। शतपथ, ऐतरेय, तैत्तिरीय ब्राह्मण, आरण्यक, उपनिषद्, जैन और बौद्ध संप्रदायों के पालिग्रंथ, महाभारत, पुराण आदि ग्रंथों में बहुलता से पंचाल राज्य का वर्णन मिलता है। भारत के षोडश महाजनपदों में भी पंचाल की गणना की जाती थी। पंचाल राज्य में उद्दालक आरुणि, श्वेतकेतु सदृश ब्रह्मज्ञानी भी हुए हैं। इनसे अतिरिक्त चंड, प्रवाहण जैबलि, शिलक शालावत्य, चैकितायन दाल्भ्य, द्रोण, बाभ्रव्य, प्रभृति आदि वेद, व्याकरण और कामशास्त्र आदि के महान् ज्ञाता भी इसी प्रदेश में उत्पन्न हुए।

इसी प्रकार के विद्वानों के संसर्ग से पंचाल राज्य के लोगों की प्रतिष्ठा बहुत बढ़ी चढ़ी थी। इनके भाषा सौष्ठव की चर्चा वैदिक साहित्य में मिलती है। पंचाल लोग धार्मिक एवं सत्यनिष्ठ थे। यह प्रदेश बहुत समृद्ध तथा धन धान्य से परिपूर्ण था। आज भी इस प्रदेश में कृषि आदि की उपज पर्याप्त मात्रा में होती है। क्योंकि गंगा, राम गंगा, काली नदी, सेंगर नदी, कामी नदी, अरिल नदी आदि अनेक छोटी-बड़ी नदियाँ पूर्व काल की भाँति आज भी इस प्रदेश को शस्य-श्यामल रखने में विशेष सहायक हैं। इन्हीं के कारण गेंहू, चावल (धान), गन्ना, सभी प्रकार की दालें तथा अफीम आदि की कृषि बहुलता से होती है। वन-संपदा के कारण फल-फूलों की भी न्यूनता नहीं रहती तथा भवन निर्माण हेतु आम, शीशम आदि की लकड़ी भी पर्याप्त मात्रा में मिलती है। आज के इस जलवायु को दृष्टिगत रखते हुए अनुमान लगाया जा सकता है कि प्राचीन पंचाल राज्य में भी इसी प्रकार के धान्य की कृषि होती होगी।

पंचाल राज्य के ऐतिहासिक महत्व के जो विशेष स्थल हैं, उनमें कुछ इस प्रकार है, अहिच्छत्रा, रहटोइया (आँवला), राजगीर, संकिसा=सांकश्य, कंपिल=कांपिल्य (फर्रुखाबाद), अतरंजी खेड़ा (एटा), कठघरा (कालीनदी), पाढम (मैनपुरी), गुमथल (चंदौसी), बिसौली (बदायूँ) आदि। इन स्थलों में दो-चार स्थानों का ही सामान्य सर्वेक्षण किया गया है। शेष स्थल पुरातत्वविदों की प्रतीक्षा करते हुए ग्रामीण लोगों की अज्ञानता का शिकार होकर नष्ट होते जा रहे हैं। इनका संरक्षण होना चाहिए। अन्यथा हम अपनी ऐतिहासिक धरोहर से वंचित हो जायेंगे।

इस इतिहास ग्रंथ में साहित्यिक साक्ष्यों को पुरातत्व के प्रमाणों से पुष्ट किया गया है। जिन साहित्यिक लेखों के पुरातत्वीय साक्ष्य नहीं मिलते, उनको शब्द प्रमाण के अंतर्गत प्रमाण माना गया है। श्री के०के० श्रीमाली ने "हिस्ट्री ऑफ पंचाल"

में वंगपाल से शिवनंदि तक 24 पांचाल राजाओं की वंशावली बनाकर प्रकाशित की है। उनका समय 150 ई० पूर्व से लेकर 125 ई० तक निश्चित किया है। इस सूची के पूर्वापर नामों का कोई हेतु भी नहीं दिया। यदि इस सूची के समय विभाग को अंतिम मान लिया जाये तो इस सूची से अतिरिक्त श्री विरजानंद दैवकरणि को जो 15 नये पांचाल शासकों की मुद्रायें और मोहरें मिली हैं, उनको कहाँ स्थान मिल पायेगा। इसलिए ऐसी कल्पना प्रसूत सूची की भी इस ग्रंथ में सप्रमाण विवेचना की गई है।

पंचाल प्रदेश के शासक शुंग वंशीय थे अथवा इनसे भिन्न? इस विषय में भी इतिहास के विद्वानों में मतैक्य नहीं है। केवल अग्निमित्र आदि तीन नामों की साम्यता से दो राजवंशों को एक मानकर सभी पंचाल शासकों को शुंगवंशीय कह देने मात्र से इतिहास के साथ न्याय नहीं हो सकेगा। इस प्रकार तो कौशांबी के अग्निमित्र को भी शुंगवंशीय अग्निमित्र अथवा पांचाल नरेश अग्निमित्र मानने में कोई आपत्ति नहीं होनी चाहिए। इस सबकी विवेचना भी यहाँ की गई है।

पिछले 32 वर्षों से श्री विरजानन्द दैवकरणि पांचाल क्षेत्र में शताधिक बार जा चुके हैं। इनके ज्ञान का भी पर्याप्त भाग इस इतिहास में समाविष्ट किया गया है। विगत 15 वर्षों से पंचाल प्रदेश की प्राचीन ऐतिहासिक सामग्री के अन्वेषण हेतु मैं भी अहिच्छत्रा आदि में भ्रमण करती रही हूँ। इन यात्राओं में मुझे भी अनेक नूतन उपलब्धियाँ हुई हैं। इन उपलब्धियों में अनेक नये पांचाल शासकों की मुद्राओं और मोहरों के अतिरिक्त विविध प्रकार की प्रस्तर और मृन्मूर्तियाँ देखने को मिली हैं। उनसे तत्कालीन वेशभूषा, शृंगार-सज्जा, केश-विन्यास तथा अन्य अनेक प्रकार के चरित्र-चित्रण की जानकारी मिलती है। बच्चों के खिलौने, देवी-देवता और महापुरुषों की प्रतिमायें एवं भवन निर्माण के भी कुछ चिह्न देखने में आये हैं। इस सामग्री के शोध और अध्ययन से जो कुछ परिणाम निकल पाये हैं उन्हीं को इस ग्रंथ के माध्यम से इतिहास प्रेमियों के सम्मुख रख रही हूँ। संपूर्ण पंचाल प्रदेश में यत्र तत्र बिखरी तथा भूमि में दबी पड़ी ऐतिहासिक संपदा को देखते हुए मेरा यह प्रयास समुद्र के समक्ष बिंदुवत् है। आवश्यकता इस बात की है कि भारतीय पुरातत्व सर्वेक्षण विभाग इन प्राचीन ऐतिहासिक स्थलों का विधिवत् और पूर्ण उत्खनन कराये, जिससे प्राचीन भारतीय इतिहास की अमूल्य धरोहर जनता के सम्मुख आ सके और उनके आधार पर इतिहास जगत् को अनेक नई देनें दी जा सकें।

इस पुस्तक के प्रथम अध्याय में यह दर्शाया गया है कि पंचाल जनपद की चर्चा प्राचीन साहित्य में कहाँ-कहाँ, किस-किस रूप में मिलती है। उन सभी प्रमाणों को एकत्र कर पुरातत्व साक्ष्य से भी पंचाल शब्द की ऐतिहासिकता सिद्ध की गई है।

द्वितीय अध्याय में पंचाल जनपद का भौगोलिक्र विस्तार दिखाते हुए इसके प्राचीन इतिहास का वर्णन किया गया है। अब तक ज्ञात सभी शासकों की नामावलि भी यहाँ प्रदर्शित की गई है। इससे पंचाल जनपद के इतिहास पर नूतन प्रकाश डाला जा सका है।

तृतीय अध्याय में पंचाल जनपद का सांस्कृतिक इतिहास दिखाया गया है।

संस्कृति का अर्थ है विचार। मानसिक विचारों के आधार पर संसार में परस्पर के जो आचार-व्यवहार निश्चित किये जाते हैं वे संस्कृति के भीतर समाविष्ट होते हैं। पांचालों का धर्म, दर्शन, रीति, नीति, साहित्य आदि का क्या रूप था, यह इस अध्याय में दिखाया है।

चतुर्थ अध्याय में पंचाल प्रदेश की मूर्तिकला और वास्तुकला का वर्णन किया है। इसमें प्राङ्मौर्यकाल से लेकर गुप्त काल तक की मृन्मूर्तियों, प्रस्तर मूर्तियों तथा अन्य कलात्मक वस्तुओं का सामान्य वर्णन किया है।

पंचम अध्याय में पंचाल क्षेत्र की पुरातत्वीय ऐतिहासिक सामग्री का वर्णन किया है। इस प्रदेश से प्राप्त सिक्के, मोहर, आदि का विस्तार से अध्ययन करके इतिहास जगत् को नये तथ्य प्रदान किये गये हैं। वस्तुतः इस ग्रंथ रूपी शरीर में यह अध्याय आत्मा का स्थान रखता है। इसमें वर्णित नवीन ऐतिहासिक जानकारियों एवं इसके विस्तृत कलेवर से ही यह स्वतः सिद्ध है।

षष्ठ अध्याय में यह विवेचना की गई है कि पांचाल शासक शुंग-वंशीय नरेश थे अथवा स्वतंत्र शासक थे। हमने सप्रमाण सिद्ध किया है कि शुंग-वंशीय शासक तथा पांचाल नरेश दो पृथक्-पृथक् स्वतंत्र राजसत्तायें थीं। इनको एक मानना युक्तिसंगत नहीं है।

इसके आगे इसी अध्याय में पांचाल शासकों के कालक्रम पर विचार किया गया है।

पांचाल शासकों ने पंचाल प्रदेश पर किस युग में शासन किया , यह बताना सरल नहीं है, पुनरपि उपलब्ध साक्ष्यों का परीक्षण करने से यह निश्चय किया गया है कि मौर्य काल और कुषाण काल के मध्य लगभग 450 वर्ष तक पांचाल राजाओं ने पंचाल प्रदेश पर शासन किया। भारतीय पुराणों में वर्णित कालक्रम के अनुसार यह समय विक्रम संवत् से लगभग तीन सौ वर्ष पूर्व से लेकर सौ विक्रम संवत् तक निश्चित होता है।

अंत में उपसंहार में सारे ग्रंथ का अति संक्षिप्त सार भी दे दिया है।

यह इतिहास पुस्तक मेरी सामान्य बुद्धि से निकाले गये परिणामों का प्रयास है। प्राचीन इतिहास अन्वेषण का विषय है। इसमें अंतिम मान्यता कठिनता से ही निश्चित हो पाया करती है। अतः मेरा यह प्रथम प्रयास एक मार्गदर्शक का रूप ही लेने योग्य है। आगे के अन्वेषणों से इस प्रयास को भी नई दिशा मिल सकती है।

आशा है इतिहास प्रेमी विद्वज्जन मेरे इस प्रथम प्रयत्न को यथायोग्य सम्मान देकर मेरा उत्साह वद्र्धन करेंगे, जिससे मैं भविष्यत् में और भी उत्साहित होकर इस विषय का अधिकाधिक अन्वेषण कर सकूँ।

—सुषमा आर्या

□◆□

प्रथम अध्याय

पंचाल इतिहास की स्त्रोत सामग्री

किसी भी वर्ण्य विषय का प्रतिपादन करने के लिए यह आवश्यक है कि तत्संबंधी सामग्री का अन्वेषण करके उसे एकत्र किया जाये। साथ ही यह भी देखा जाये कि हम जिस ऐतिंहासिक विषय का अन्वेषण करना चाहते हैं, उसका वर्णन किसी सम-सामयिक साहित्य में है अथवा नहीं? यहाँ हमारा अभिप्राय पंचाल जनपद के इतिहास-विषय से है। सो हमें पहले तो संस्कृत-साहित्य तथा पुरातत्व के माध्यम से पंचाल शब्द का मूल और प्रयोग स्थल अन्वेषण करना है।

1. **वेद**—विश्व के साहित्य में वेद प्राचीनतम ग्रंथ हैं। वैदिक इंडेक्स[1] के अनुसार यजुर्वेद[2] में ''कांपीलवासिनी पद आया है, और यह पद पंचाल प्रदेश निवासिनी किसी स्त्री के लिए प्रयुक्त हुआ है।''

प्राचीन भारतीय आर्ष परम्परा के अनुयायी वैदिकों के अनुसार चारों वेदों की मूल-संहितायें अपौरुषेय (ईश्वरकृत) हैं और इनमें किसी व्यक्ति, जाति और देशविशेष की चर्चा नहीं है। वेद में प्रयुक्त सभी पद धातुज हैं। इन नामों को किसी ऐतिहासिक व्यक्ति के साथ संगत करना वेद के साथ अन्याय करना है। यजुर्वेद के इसी मंत्र में अंबे, अंबिके और अंबालिके पद भी लिखे हुए हैं। इन नामों को देखकर कोई भी साधारण व्यक्ति महाभारत में वर्णित काशीराज की उक्त नामवाली तीनों पुत्रियों का ग्रहण भी करने लगेगा तो अर्थ का अनर्थ ही हो जायेगा।

वेद सार्वभौमिक और सार्वकालिक ग्रंथ हैं। इनमें ज्ञान, कर्म, उपासना और विज्ञान विषयों का प्रमुखतया वर्णन है। प्रत्येक मानव के लिए जन्म से मरण पर्यन्त जो-जो सत्यविद्यायें ग्रहण करनी आवश्यक हैं उन सब विद्याओं का मूलरूप से वेदों में वर्णन है।

वैदिक व्याकरण, ब्राह्मणग्रंथ, आरण्यकग्रंथ, दर्शन, उपनिषद् तथा सभी ऋषि-मुनि इस विषय में एकमत हैं कि वेद के सभी पद यौगिक हैं और उनका अर्थ भी व्याकरणानुसार धातु-प्रकृति-प्रत्यय के संयोजन पूर्वक ही लगाया जाना चाहिए, रूढी पदों की भाँति नहीं।

इसी प्रकार ऋग्वेद[3] में क्रिवि पद आया है, इसे पांचालों का पर्याय माना जाता

---

1. मैकडांनल और कीथकृत वैदिक इण्डेक्स
2. प्राणाय स्वाहा.......ससस्त्यश्वकः सुभद्रिकां काम्पीलवासिनीम्॥
—यजुर्वेद, अध्याय 23, मंत्र 18॥
3. ऋग्वेद, मण्डल 5, सूक्त 44, मंत्र 4॥

है, क्योंकि शतपथ ब्राह्मण[4] के अनुसार पंचाल क्षेत्र के लोगों का पूर्व नाम "क्रिवि" था। ब्राह्मण ग्रंथ यद्यपि वेद के व्याख्यान ग्रंथ हैं, न कि वेदभाष्य। इसलिए व्याख्यान करते-करते उस-उस पद का समसामयिक लोक प्रसिद्ध अर्थ भी बताते जाते हैं, इससे वेदों में इतिहास होने का भ्रम सामान्य लोगों को हो जाता है। किंतु जो विद्वान् ब्राह्मणग्रंथों की शैली से परिचित होता है, वह कभी भ्रम में नहीं पड़ सकता।

महर्षि दयानंद सरस्वती ने यजुर्वेद भाष्य[5] में व्याकरण के अनुसार "कांपीलवासिनीम्" का अर्थ इस प्रकार किया है—सुख को ग्रहण करने का जिसका स्वभाव है ऐसी लक्ष्मी "कंपीलवासिनी" कहाती है। क्रिवि का अर्थ है—प्रजापालन कर्त्ता सूर्य।[6]

2. **ब्राह्मणग्रंथ**—शतपथ ब्राह्मण[7] के अनेक स्थलों में पांचालों की चर्चा आई है।

इन वर्णनों में पांचाल राजाओं द्वारा युद्धों के लिए की गई विजययात्राओं, अश्वमेध यज्ञों तथा यज्ञ में आए ब्राह्मणों को दी गई दक्षिणा आदि का विस्तार से वर्णन है। ब्राह्मण ग्रंथकार अपने समय के तथा अपने से पूर्ववर्ती पांचाल शासकों का वर्णन कर रहे हैं।

3. इसी प्रकार तैत्तिरीय ब्राह्मण[8] में भी कुरु पांचाल शासकों द्वारा अलग-अलग ऋतुओं में पृथक्-पृथक् दिशाओं में की गई विजय यात्राओं का वर्णन है।

4. ऐतरेय ब्राह्मण[9] में भी कुरु और पांचालों का एक ही साथ वर्णन आया है।

---

4. शतपथ ब्राह्मण कांड 13, अध्याय 5, ब्राह्मण 4, कंडिका 7 एत एव पूर्वे अहनी। अप्तोमर्यामोऽतिरात्रस्तेन हैतेन क्रैव्य ईजे पञ्चालो राजा, क्रिवय इति ह वै पुरा पञ्चालानाचक्षते, तदेतद् गाथयाभिगीतम्—अश्वमेध्यमालभत क्रिवीणामतिपुरुषः पाञ्चालः परिवक्रायां सहस्रशतदक्षिणमिति। अथ द्वितीयया—सहस्रामासन्नयुता शता च पञ्चविंशति दिक्तोदिक्तः पञ्चालानां ब्राह्मणा या विभेजिरे इति॥
5. यजुर्वेदभाष्यम् 23.18—कं सुखं पीलति=बध्नाति=गृह्णातीति कम्पीलः स्वार्थेऽण् तं वासयितुं शीलमस्यास्तां लक्ष्मीम्॥
6. ऋग्वेदभाष्यम् 5.44.4: महर्षि दयानंद सरस्वती।
7. शतपथ ब्राह्मण 13-5-4-16,18 शोणः सात्रासाह ईजे पाञ्चालो राजा, तदेतद् गाथयाभिगीतं सात्रासाहे यजमानेऽश्वमेधेन तौर्वशा उदीरते...... ॥ 16 ॥
   सात्रासाहे यजमाने पाञ्चाले राज्ञि सुस्रजि-अमाद्यदिन्द्रः सोमेनातृप्यन् ब्राह्मणा धनैरिति ॥1 8 ॥
8. तैत्तिरीय ब्राह्मण 1.8.4.1-2.....तस्माच्छिशिरे कुरुपञ्चालाः प्राञ्चो यान्ति,......तस्माज्जघन्ये नैदाघे प्रत्यञ्चः कुरुपञ्चाला यान्ति.... ॥
9. ऐतरेय ब्राह्मण 8.3.14—उदीच्यां दिशि ये के च परेण हिमवन्तं जनपदा उत्तरकुरुपञ्चालानां राजानः स वशोशी :राणां राज्याय... ॥

वहाँ उत्तर कुरु, उत्तर मद्रदेश, कुरु, पांचाल और उशीनरों के राज्यों की सीमाओं का वर्णन किया गया है।

ब्राह्मण ग्रंथ के इस प्रकरण में पांचालों को "मध्यमादिक्" के निवासी बताया गया है। कुरु पंचालों का साहचर्य से वर्णन होने से ज्ञात होता है कि इन दोनों राज्यों ने परस्पर मैत्री संधि कर ली थी। जैसे क्षुद्रक और मालवगण ने संयुक्त रूप से एक संघ बनाकर सिकंदर के विरुद्ध युद्ध किया था। कुरु पंचाल की भाँति क्षुद्रक मालवों की चर्चा भी संस्कृत साहित्य में एक साथ ही मिलती है। इसी ब्राह्मण[10] ग्रन्थ में पंचाल प्रदेश के धर्मात्मा तथा बलवान् शासक दुर्मुख की चर्चा है।

5. गोपथ ब्राह्मण[11] में कुरुपंचालों का वर्णन एक साथ पाया जाता है।

6-7. ऐतरेय आरण्यक और शांखायन आरण्यक में भी कुरुपंचालों का साथ-साथ वर्णन प्राप्त होता है।

8. काठकसंहिता[12] में कुरु पंचालों की चर्चा एक साथ ही की गई है। इस प्रसंग में पंचाल के निवासी केशिदाल्भ्य का वर्णन आया है।

श्री कृष्णदत्त वाजपेयी ने काठकसंहिता के इस सन्दर्भ का अर्थ करते हुए लिखा है[13]—"काठकसंहिता में पांचालों को केशिन् दाल्भ्य के निवासी कहा है।" वस्तुतः यहाँ केशिन् दाल्भ्य व्यक्ति विशेष का वाचक है न कि प्रदेश विशेष का। भाव यह है कि दल्भ का पुत्र केशी पंचाल का निवासी था। पंचालाः और पांचालाः इन दोनों पदों से पंचाल देश तथा उस के निवासी दोनों का ही ग्रहण होता है।

इसी प्रकार काठकसंहिता में अन्यत्र भी केशिन् दाल्भ्य, लुशाकपि खार्गलि आदि की चर्चा है।[14]

9. जैमिनीय ब्राह्मण में पंचाल प्रदेश के शासक शतानीक के पुत्र दर्भ का वर्णन मिलता है।[15] इसी संदर्भ में पंचाल क्षेत्र के निवासी उदभर के पुत्र खंडिक और दर्भ के पुत्र केशी को पंचाल देश में स्पर्द्धा करते हुए बताया गया है।[16]

---

10. ऐतरेय ब्राह्मण 8.23॥
11. गोपथ ब्राह्मण 3.6, उद्दालको ह वा अयमायाति कौरुपञ्चालो ब्रह्मा ब्रह्मपुत्र इति स्वैदायन...॥
12. काठकसंहिता 10.6.9, नैमिष्या वै सत्रमासत। त उत्थाय सप्तविंशतिं कुरुपञ्चालेषु वत्सतरानवन्वत। तान् बको दाल्भिरब्रवीत्, यूयमेवैतान् विभजध्वमिममहं धृतराष्ट्रं वैचित्र्यवीर्यं गमिष्यामि, स मह्यं गृहान् करिष्यतीति। काठकसंहिता 10.6.9.
13. अहिच्छत्रा-कृष्णदत्त वाजपेयी, पृष्ठ 2।
14. एवं ह वै केशिनो दाल्भ्यस्य वंशव्रश्चने गृहाज्जगृहुः। स होवाच लुशाकपिः खार्गलिः कथं गृहानगृहीष्टेतीत्थमित्थमिति हास्मा ऊचु...तत...पञ्चालास्त्रेधाऽभवन्...। काठकसंहिता 30.2.11
15. दर्भमु ह वै शातानीकिं पाञ्चाला राजानं सन्तं नापाञ्चायाञ्चक्रुः। —जैमिनीय ब्राह्मण 2.100.11
16. खण्डिकश्च हौदभारिः केशी च दार्भ्यः पञ्चालेषु पस्पृधाते। स ह खण्डिकः केशिनमभिप्रजिघाय। —जैमिनीय ब्राह्मण 2.122.11

10. छांदोग्योपनिषद् में कहा है कि आरुणि ऋषि का पुत्र श्वेतकेतु पंचाल देश की राजसभा में आया। उस ऋषिकुमार से राजा प्रवाहण जैबलि ने प्रश्न किया[17] था।

11. इसी भाँति बृहदारण्यकोपनिषद् में भी श्वेतकेतु का पांचालों की परिषद् में पधारने का वर्णन मिलता है।[18] उपनिषदों के इन समानार्थक संदर्भों से ज्ञात होता है कि पंचाल प्रदेश का एक शासक प्रवाहण जैबलि था। इसी की राजपरिषद् में आरुणि का पुत्र श्वेतकेतु विद्या समाप्ति के पश्चात् विद्वत्ता के प्रदर्शन हेतु गया था, वहाँ राजा प्रवाहण के द्वारा प्रश्न पूछे जाने पर निरुत्तर और लज्जित होकर अपने पिता के पास समाधान हेतु लौट आया था।

12. **संस्कृतसाहित्य**—भारत के प्राचीनतम और आदि संविधान ग्रंथ मनुस्मृति में पंचाल प्रदेश को ब्रह्मर्षि देश का एक भाग बताया गया है।[19] इस श्लोक के अनुसार कुरुक्षेत्र, मत्स्यदेश (अलवर का क्षेत्र), पंचाल देश (बरेली रुहेलखंड का क्षेत्र) तथा शूरसेन (मथुरा क्षेत्र) इन चारों प्रदेशों को मिलाकर ब्रह्मर्षि देश कहलाता था, यह ब्रह्मर्षि देश आर्यावर्त्त का एक भाग था। आधुनिक विद्वान् मनुस्मृति को 500 वर्ष ईसा पूर्व की बनी मानते हैं।*

13. वाल्मीकीय रामायण में कांपिल्य नगरी के शासक ब्रह्मदत्त का वर्णन मिलता है।[20] कांपिल्यनगरी दक्षिण पंचाल की राजधानी के रूप में कभी अति प्रसिद्ध रही है।

14. प्रसिद्ध महाकाव्य महाभारत में अनेक स्थानों पर पंचाल जनपद और उसके निवासी पंचालों का वर्णन मिलता है। जैसे द्रोणाचार्य को गुरुदक्षिणा रूप में आधे पंचाल राज्य को देने के प्रसंग में तथा द्रौपदी के स्वयंवर प्रकरण में पांचालों का वर्णन देखा जा सकता है।

पंचाल देश का वर्णन करते हुए महाभारतकार महर्षि व्यास कहते हैं कि पंचाल

---

17. श्वेतकेतुर्हारुणेयः पञ्चालानां समितिमेयाय। तं ह प्रवाहणो जैबलिरुवाच कुमार....।
—छान्दोग्योपनिषद् 5.3.10.11

18. श्वेतकेतुर्ह वा आरुणेयः पञ्चालानां परिषदमाजगाम।
स आजगाम जैबलिप्रवाहणं परिचारयमाणम्....। —बृहदारण्यकोपनिषद् 6.2.1.11

19. कुरुक्षेत्रं च मत्स्याश्च पञ्चालाः शूरसेनकाः।
एष ब्रह्मर्षि देशो वा आर्यावर्त्तादनन्तरः॥ —मनुस्मृति 2.19.11

* भारत की प्राचीन परम्परा के अनुसार वर्त्तमान मनुस्मृति आदि स्वायंभव मनुप्रोक्त कही जाती है। कुछ विद्वान् इसे सप्तम मनु वैवस्वत प्रोक्ता भी बताते हैं। यदि वैवस्वत मनुप्रोक्त यह स्मृति हो तो भी आज विक्रमसंवत् 2056 तक 12,05,33100 (बारह करोड़, पाँच लाख, तैंतीस सहस्र, एक सौ) वर्ष मनुस्मृति के रचयिता को हो जाते हैं। इस मत के अनुसार पंचाल प्रदेश इतने वर्ष पहले भी अति प्रसिद्ध था। —सम्पादक

20. स राजा ब्रह्मदत्तस्तु पुरीमध्येऽवसत्तदा।
काम्पिल्यां परया लक्ष्म्या देवराजो यथादिवम्॥ —रामायण, बालकाण्ड, सर्ग 33, श्लोक

प्रदेश सुभिक्ष है। इसमें भोजनादि की सुविधा प्रत्येक मनुष्य को प्राप्त है। यहाँ का राजा यज्ञसेन ब्रह्मविद्या का ज्ञाता है।[21] उन्होंने आगे कहा है—महात्मा द्रुपद की सुन्दर नगरी (कांपिल्य) के लिए प्रस्थान किया।[22]

वे आगे लिखते हैं—हे महाबली पांडवो! पांचाल देश के नगर (कांपिल्य) में निवास करो।[23]

संस्कृत साहित्य के अन्य ग्रंथों में भी पंचाल प्रदेश और उससे संबंधित लोगों काव्य शैली आदि का विस्तार से वर्णन देखने में आता है। जैसे—

15. वात्स्यायनमुनिकृत कामशास्त्र में लिखा है पंचाल देशवासी बाभ्रव्य ने पहले कामशास्त्र को सात अधिकरणों में संक्षिप्त किया था।[24]

16. महर्षि यास्काचार्य प्रणीत काव्यालंकारसूत्र नामक ग्रंथ में विदर्भ, गौड और पंचाल देशों में प्रचलित काव्यों की रीतिविशेष की चर्चा है।[25] इससे ज्ञात होता है कि पंचाल देशवासी काव्य प्रतिभा में भी विशेष रुचि के कारण ही अपना शिष्ट स्थान रखते थे।

17. मनुस्मृति के भाष्यकार श्री मेधातिथि ने किसी ब्राह्मणग्रंथ का उद्धरण दिया है। आजकल यह ब्राह्मणग्रंथ अनुपलब्ध है। इसमें भी श्वेतकेतु आरुणि के साथ ही पंचाल देशवासी उसके किसी क्षत्रिय मित्र की चर्चा भी की गई है।[26]

18. महर्षि पतञ्जलि मुनि द्वारा विरचित व्याकरण महाभाष्य में **पूर्वपंचालाः, उत्तरपंचालाः**[27] की चर्चा आई है। इसी ग्रंथ में पंचाल शासक ब्रह्मदत्त का वर्णन भी मिलता है।[28]

आचार्य विष्णगुप्त चाणक्य द्वारा प्रणीत कौटलीय अर्थशास्त्र के अनुसार पंचाल जनपद का शासन संघ द्वारा किया जाता था।[29]

19-20. भागवतपुराण तथा विष्णुपुराण में भी पंचाल देश का वर्णन है। विष्णुपुराण के अनुसार राजा भृम्यश्व ने मुद्गल, सृंजय, बृहदिषु, प्रवीर और कांपिल्य इन पाँचों पुत्रों में अपना राज्य बाँट दिया था।[30]

---

21. सुभिक्षाश्चैव पञ्चालाः श्रूयन्ते शत्रुकर्षण।
    यज्ञसेनश्च राजासौ ब्रह्मण्य इति शुश्रुमः ॥ 7 ॥
22. प्रतस्थे नगरीं रम्यां द्रुपदस्य महात्मनः ॥ 11 ॥
23. पाञ्चालनगरे तस्मान्निवसध्वं महाबलाः ॥ 15 ॥
24. .....सप्तभिरधिकरणैर्बाभ्रव्यः पञ्चालः सञ्चिक्षेप ॥ —कामशास्त्र 1.1.11
25. सा त्रिधा, वैदर्भी गौडीया पाञ्चाली चेति ॥ —काव्यालङ्कारसूत्राणि 2.9.11
26. श्वेतकेतुर्ह वा आरुणेयः। अस्ति मे पञ्चालेषु क्षत्रियो मित्रमिति।
    —मनुस्मृति की मेधातिथि टीका 3.140
27. महाभाष्य 4.3.155 । 4.1.79 । 1.2.52. ॥
28. महाभाष्य 1.4.74 ॥
29. अर्थशास्त्र
30. विष्णुपुराण, अध्याय 19, श्लोक 4 ॥

21. गार्गीसंहिता के युगपुराण अध्याय में पंचाल देश पर हुए यवन आक्रमण का वर्णन किया गया है। इसी के विश्वजित्खंड में यादवों द्वारा पंचाल देश को विजित किया जाना भी कहा है।[31]

22. कवि राजशेखर ने काव्यमीमांसा में नाट्य, काव्य और नेपथ्य आदि के वर्णन में पांचाली शैली की प्रमुखता दर्शायी है।[32]

23. बाल रामायण के अनुसार पांचाल कवियों की रचनायें ग्राम्य-प्रभाव से मुक्त होती थीं। वे अपने वर्ण्य विषय वस्तु को साहित्यिक एवं ललित उक्तियों से पुष्ट करके वर्णित करते थे।[33]

24. कश्मीरी पंडित कल्हण ने राजतरंगिणी में पांचाल शब्द का प्रयोग किया है।[34] इसी ग्रंथ में द्रौपदी के लिए पांचाली शब्द का विशेषण प्रयुक्त हुआ है।[35]

25. **बौद्धसाहित्य**—बौद्धमत के ग्रंथों में पंचाल प्रदेश की चर्चा है। पालिसाहित्य के अनुसार महात्मा बुद्ध पंचाल प्रदेश में अनेक वार पधारे थे।

26-27. बौद्धग्रंथ महावस्तु और अंगुत्तरनिकाय में वर्णित सोलह महाजनपदों में पंचाल का नाम भी गिनाया है। महावस्तु में लिखा है कि पंचाल राज्य के कांपिल्य नगर में राजा ब्रह्मदत्त शासन करता था। इस ग्रंथ में इस राजा को बहुत धर्मात्मा तथा उदार स्वभाव वाला बताया है।

28. कुंभकार जातक के अनुसार पंचाल के कांपिल्य नगर में राजा दुर्मुख का राज्य था।

29. उत्तराध्ययनसूत्र में इसी शासक को द्विमुख नाम से वर्णित किया है।

30. चेतिय जातक में पंचाल राज्य की स्थापना की चर्चा है। इसके अनुसार चेदिवंश के राजकुमार ने अपने पुरोहित की प्रेरणा से पंचाल राज्य की स्थापना की थी।

31. गण्डतिण्डु जातक के अनुसार कांपिल्य का पंचाल शासक अत्यन्त क्रूर और अत्याचारी था। इसने प्रजा पर बहुत अधिक कर लगाया हुआ था। राज्य कर्मचारियों द्वारा प्रजा का पीड़न होता रहता था। राज्य व्यवस्था इतनी दूषित थी कि राजा अपनी प्रजा की रक्षा डाकुओं से भी नहीं कर सकता था।

32. महा उम्मग जातक में पंचाल के राजा ब्रह्मदत्त चूलनी का वर्णन है।

33. उत्तराध्ययनसूत्र ग्रंथ में ब्रह्मदत्त को सार्वभौम चक्रवर्ति सम्राट् लिखा है। राजा द्विमुख तथा संजय का भी इस सूत्रग्रंथ में वर्णन आया है।[36]

---

31. गर्गसंहिताः युगपुराण विश्वजित् खंड 3.19, 18.14॥
ततः साकेतमाक्रम्य पञ्चालान् मथुरां तथा। यवना दुष्टविक्रान्ताः प्राप्स्यन्ति कुसुमध्वंजम्॥
ततः पुष्पपुरे प्राप्ते कर्दमप्रस्थिते हिते। आकुला विषयाः सर्वे भविष्यन्ति न संशयः॥
32. काव्यमीमांसा, अध्याय 3, 7 और 10॥
33. बालरामायण, अध्याय 10, श्लोक 8॥
34. राजतरंगिणी, तरंग 8, श्लोक 1095॥
35. राजतरंगिणी, तरंग 8, श्लोक 2306॥
36. आँवलाः गिरिराज नंदन

34. जैनमत के ग्रंथ विविधतीर्थकल्प में पंचाल सम्राट् हरिषेण तथा ब्रह्मदत्त का वर्णन है। इसी ग्रंथ में कहा है कि पंचाल की राजधानी कांपिल्य थी। कांपिल्य को गंगा नदी के तट पर स्थित बताया है।

35. नामलिंगानुशासन में अमरसिंह ने लिखा है कि पांचाल देश में हस्तिदंत की मूर्तियाँ बनती थीं।

पुरातत्वसाक्ष्य

पुरातत्व साक्ष्यों में मुद्रायें, मोहरें, शिलालेख, ताम्रलेख आदि उत्कीर्ण लेख सामग्री का बहुत महत्व होता है। मेरी जानकारी के अनुसार अभी तक एक ही ऐसा शिलालेख मिला है,[37] जिसमें प्रत्यक्ष रूप से पंचाल जनपद का नाम खुदा हुआ है। यह शिलालेख अहिच्छत्रा से प्राप्त हुआ था। (देखिये शिलालेख का चित्र)।

जिस प्रस्तर खंड पर यह लेख खुदा है, वह दोनों ओर से टूटा हुआ है, इसलिए लेख का पूर्णाभिप्राय ज्ञात नहीं हो सकता। इस शिलालेख की आठवीं पंक्ति में पंचाल शब्द खुदा हुआ है। किसी मित्रांत नामधारी शासक ने अपने प्रथम राज्य वर्ष में यह लेख उत्कीर्ण कराया था।

उत्तर पंचाल की राजधानी अहिच्छत्रा का नाम तो अनेक पुरावशेषों में लिखा पाया गया है। जैसे—पभोसा (कौशांबी) का लेख, अहिच्छत्रा से मिली यक्ष-प्रतिमा, कुमारामात्य प्रकार वाली मोहरों का लेख तथा सम्राट् हर्षवद्र्धन के बांसखेड़ा से प्राप्त ताम्रपत्र का लेख तथा महाराज नागभट्टदेव के मुरादाबाद वाले ताम्रपत्र का लेख आदि।

पंचाल जनपद से प्राप्त मुद्रा, मोहर तथा शिलालेख आदि का विशद वर्णन आगे यथास्थान किया जायेगा। यहाँ तो इतना ही अभिप्रेत है कि पंचाल नाम पुरातत्वसाक्ष्य से भी सिद्ध है।
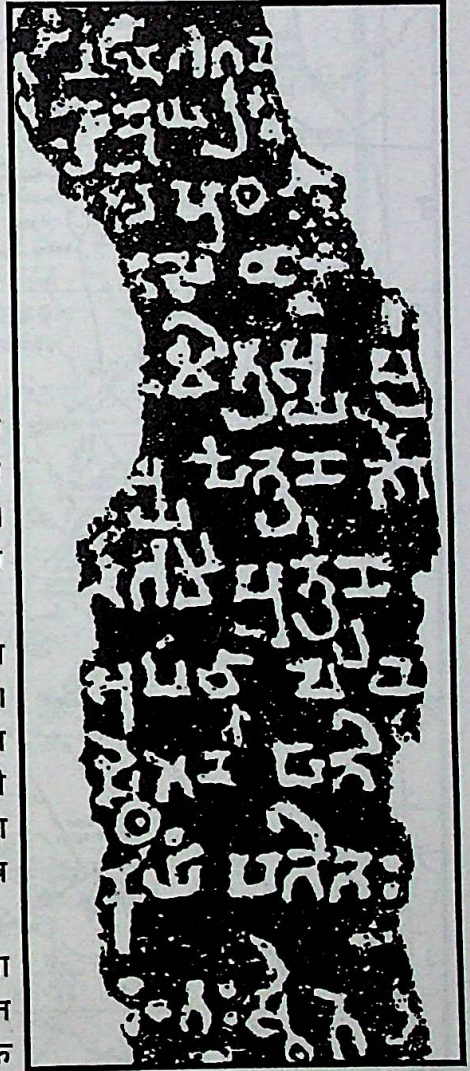
प्रथम अध्याय समाप्त॥ १ ॥

37. ऐप्पिग्राफिका इंडिका, भाग 10, सन् 1909-10, पृष्ठ 107-8, आर०डी० बनर्जी॥
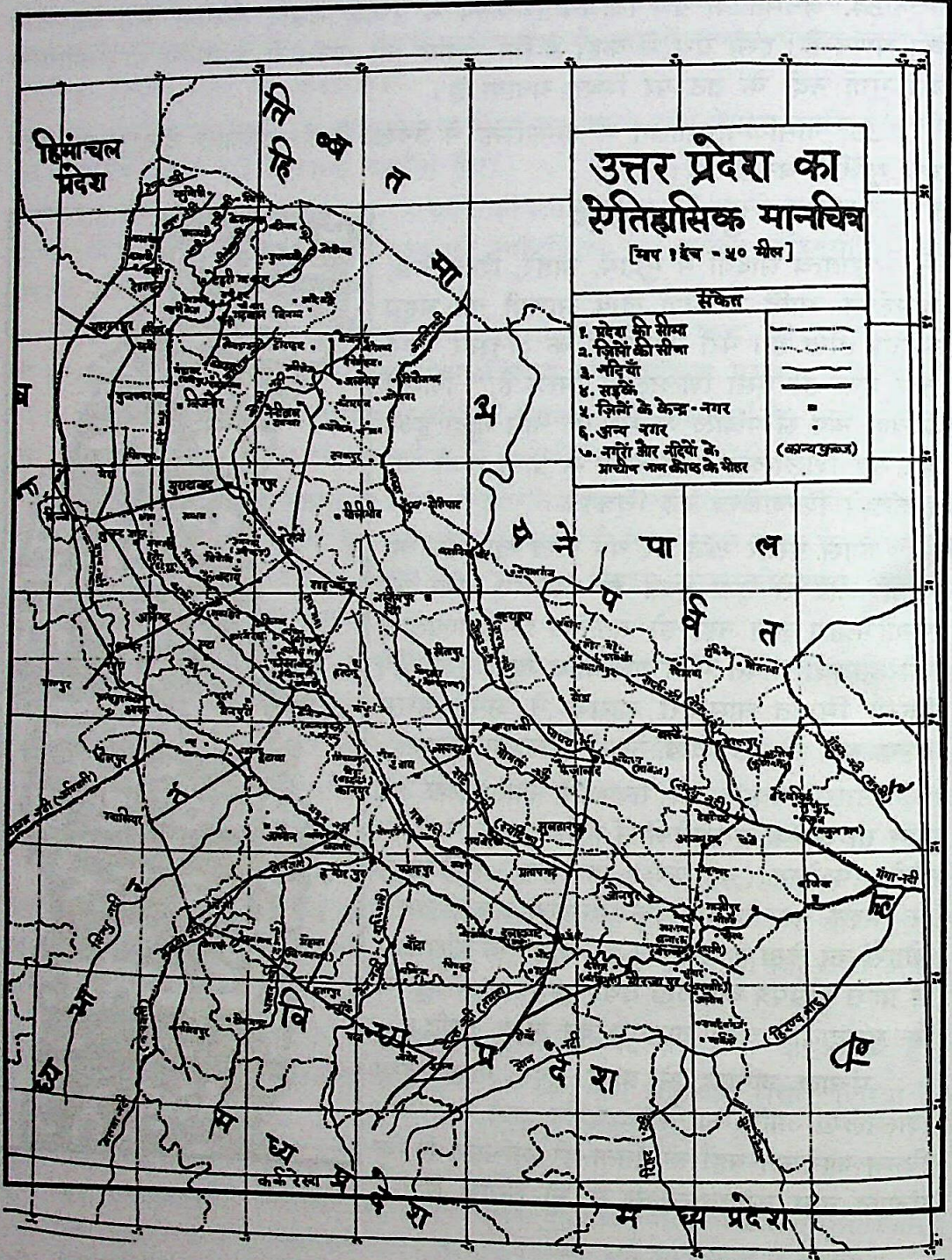
उत्तर प्रदेश का ऐतिहासिक मानचित्र
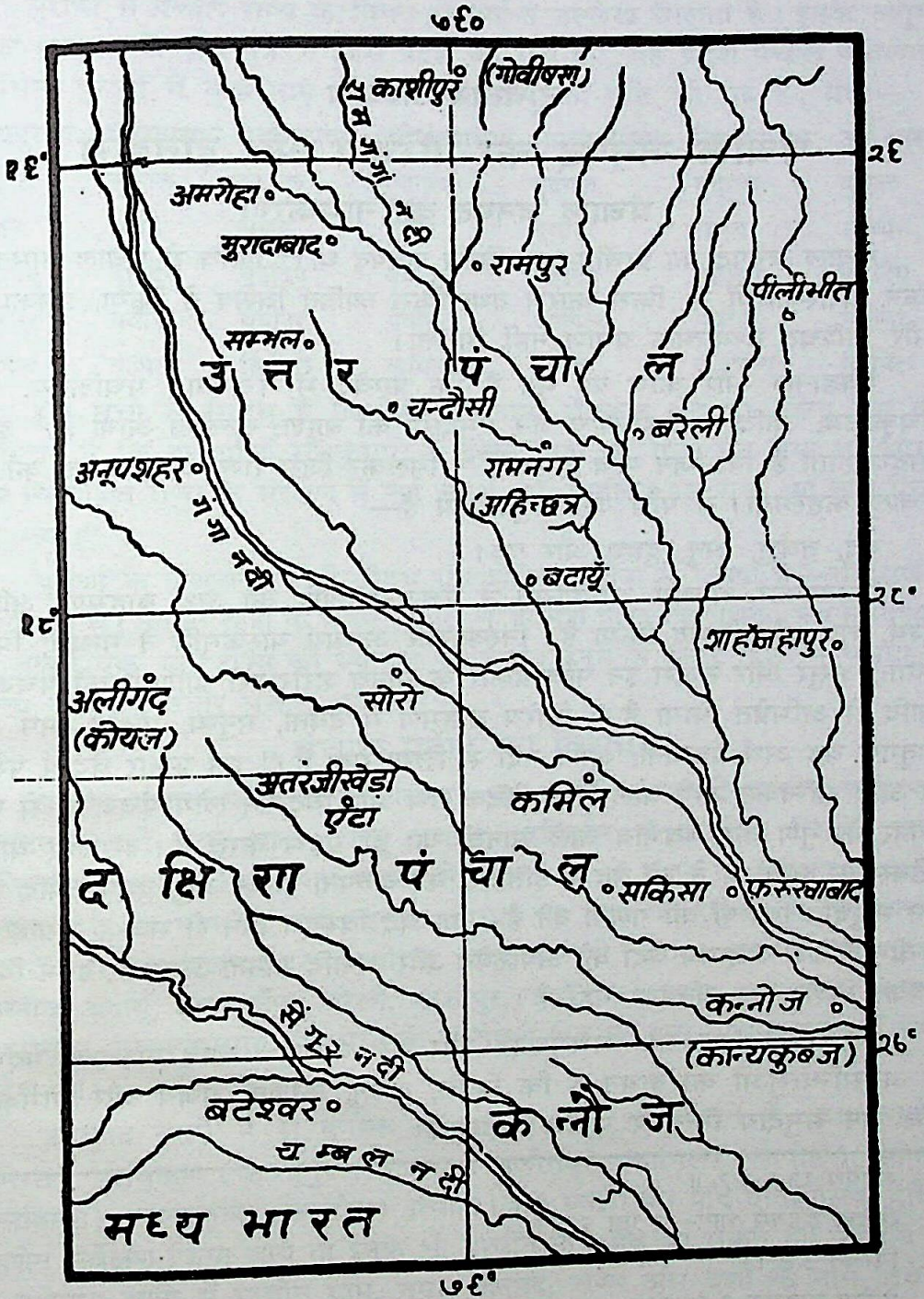
पंचाल प्रदेश का मानचित्र

द्वितीय अध्याय

पंचाल जनपद का परिचय और इतिहास

पंचाल जनपद का नामकरण

पंचाल जनपद का प्राचीन नाम क्रिवि जनपद था।[38] क्रिवि से पंचाल नामकरण किन परिस्थितियों में, किस कारण तथा किस व्यक्ति विशेष ने किया, इसका पुष्ट और निश्चित तथ्यात्मक प्रमाण नहीं मिलता।

मैक्डानल और कीथ का मत है कि ऋग्वेद में पंचजनाः, पंचक्षितयः और पंचकृष्ट्यः आदि नामों से पाँच जन समुदायों का बहुशः उल्लेख आया है,[39] इससे सिद्ध होता है कि जिन पाँच समुदायों ने मिलकर जिस राज्य की स्थापना की वह पंचाल कहलाया। वे पाँच जन समुदाय ये हैं—

यदु, तुर्वशु, अनु, द्रुह्यु और पुरु।

निरुक्तकार आचार्य औपमन्यव ने पंचजना आदि का अर्थ ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र और निषाद किया है। निरुक्तकार आचार्य यास्कमुनि ने गन्धर्व, पितर, देवता, असुर और राक्षस इन पाँच प्रकार के मानव शरीरधारी प्राणियों को पंचजनाः आदि से अभिप्रेत किया है।[40] ऐतरेय ब्राह्मण में देवता, मनुष्य, गन्धर्व, सर्प और पितृगण यह अर्थ पंचजनाः आदि पदों से लिया गया है।[41] इस प्रकार वेदार्थ परंपरा के अति सन्निकट रहने वाले सभी वैदिक ग्रंथ और विद्वान् लोग पंचजनाः से पाँच प्रकार के गुण कर्म स्वभाव वाले मानवों का ही ग्रहण करते हैं। इसलिए वैदिक इंडेक्स के कर्त्ताओं ने जो वेद में इतिहास की कल्पना करके अनु, द्रुह्यु आदि पाँच जन समुदाय विशेषों की गणना की है—वह वेद विरुद्ध होने से सर्वथा अग्राह्य है। प्राचीन वैदिक वाङ्मय वेदों को अपौरुषेय और अनादि मानता आया है, इनमें किसी व्यक्ति विशेष का इतिहास नहीं है।

इसी प्रकार आर०सी० मजमूदार[42] और राय चौधरी[43] आदि पाश्चात्य पद्धति के अनुसन्धित्सुओं का कथन है कि क्रिवि, तुर्वशु, केशिन, सृंजय और सोमक ये पाँच जन समुदाय मिलकर पंचाल कहलाये।

---

38. शतपथ 13.5.4.7. ॥
39. वैदिक इंडेक्स भाग—1 पृष्ठ 528 ॥
40. निरुक्त 3.8.11
41. ऐतरेय ब्राह्मण 3.31.11
42. एन एडवांस हिस्ट्री ऑफ इण्डिया, भाग 1, पृष्ठ 41
43. पोलिटिकल हिस्ट्री ऑफ ऐनशियेंट इण्डिया, पृष्ठ 61

पुराणों में पंचाल राज्य के विषय में पर्याप्त उल्लेख मिलता है। इनके अनुसार राजा भृम्यश्व के पाँच पुत्रों ने जिस प्रदेश की रक्षा की, वह प्रदेश पंचाल कहलाया। विभिन्न पुराणों में कुछ नाम भेद से इसी तथ्य की पुष्टि की गई है। यथा—

वायुपुराण	मत्स्यपुराण	ब्रह्मपुराण	हरिवंशपुराण	भागवतपुराण	विष्णुपुराण	अग्निपुराण
मुद्गल	मुद्गल	मुद्गल	मुद्गल	मुद्गल	मुद्गल	मुकुल
संजय	संजय	सृंजय	सृंजय	यवीनर	संजय	सृंजय
बृहदिषु	बृहदिषु	बृहदिषु	बृहदिषु	बृहदिषु	बृहदिषु	बृहदिषु
यवीनर	यवीनर	यवीनर	यवीनर	कांपिल्य	यवीनर	यवीनर
कपिल	कपिल	क्रिमिल	कृमिलाश्व	संजय	कांपिल्य	क्रिमिल

इस सूची से सिद्ध है कि भले ही नामों में कुछ भेद हो, किंतु यह तथ्य निश्चित है कि इन पाँचों राजकुमारों में इनके पिता का राज्य बँट गया था और वे इस विभाजित राज्य के संरक्षण में पूर्ण समर्थ हुए, इसलिए इस राज्य का नाम पंचाल हो गया।[44]

पुराणों के कथनानुरूप ही बौद्ध ग्रंथ चेतिय जातक में लिखा है—चेदिराज के पाँच पुत्र थे। उनको राजा के मन्त्री कपिल ने परामर्श दिया कि पृथक्-पृथक् दिशाओं में जाकर एक-एक राज्य की स्थापना की जाये। उनमें से उत्तर दिशा में बसाये गये राज्य का नाम उत्तर पंचाल हुआ।

पंचाल प्रदेश का विस्तार

प्राचीन पंचाल प्रदेश कितना विस्तृत था, इसकी जानकारी प्राचीन साहित्य से स्पष्टतया नहीं मिल पाती। परंतु पंचाल इतिहास से संबंधित जितनी प्राचीन ऐतिहासिक सामग्री जिन-जिन स्थानों से मिलती है, वे स्थान तो अवश्य ही प्राचीन पंचाल देश के भाग रहे होंगे। इसके आधार पर कहा जा सकता है कि वर्त्तमान उत्तर प्रदेश के बुलन्दशहर, अलीगढ़, एटा, मैनपुरी, इटावा, हरदोई, फर्रुखाबाद, कन्नौज, बदायूँ, शाहजहाँपुर, बरेली, काशीपुर, पीलीभीत, रामपुर, मुरादाबाद, बिजनौर, सहारनपुर, मुजफ्फरनगर और मेरठ के मध्यवर्ती क्षेत्र का नाम प्राचीन काल में पंचाल प्रदेश था।

उपर्युक्त नगरों में से कुछेक के प्राचीन नाम भी मिलते हैं, यथा मयराष्ट्र (मेरठ), गोविषाण (काशीपुर), कोयल (अलीगढ़), कांपिल्य (कंपील), सांकाश्य (संकिसा), कान्यकुब्ज (कन्नौज) इत्यादि। शेष स्थलों का यदि ऐतिहासिक दृष्टि से विशेष सर्वेक्षण किया जाये तो इनके भी प्राचीन नाम ढूँढे जा सकते हैं। पाणिनि मुनि ने गणपाठ आदि में प्राचीन ग्राम, नगर, जनपद, राज्य और देशों के नाम दिये हुये हैं, नये नामों के साथ उनके समीकरण से प्राचीन नामों का पता लगाया जा सकता है।

44. विष्णु पुराण 19.4.59

पंचाल राज्य का इतिहास

महाभारत युद्ध से पूर्व ही पंचाल प्रदेश के दो भाग हो चुके थे। एक उत्तरी पंचाल, इसकी राजधानी अहिच्छत्रा थी तथा दूसरा दक्षिणी पंचाल, इसकी राजधानी कांपिल्य थी। इस प्रदेश के विभाजन की कथा महाभारत में इस प्रकार दी गई है—

पंचाल नरेश पृषत के पुत्र द्रुपद तथा ब्राह्मण पुत्र द्रोण ने बाल्यकाल में एक ही गुरु से शस्त्र-अस्त्र की विद्या ग्रहण की थी। परस्पर मैत्री भाव के कारण द्रुपद ने द्रोण से कभी यह कह दिया कि यदि मुझे राजपद मिल जायेगा तो वह राज्य आपका ही होगा। द्रोण निर्धन परंतु विद्वान् ब्राह्मण थे। एक वार अपनी विपन्नावस्था से दुःखी होकर अपने बाल-सखा राजा द्रुपद के पास जाकर अपनी दुर्दशा का वर्णन किया और कुछ साहाय्य की आशा की। परंतु राजमद में चूर द्रुपद ने द्रोण का अपमान कर दिया। उस समय तो द्रोण लौट आये, परंतु द्रुपद के प्रति प्रतिशोध की भावना ने उनके मन में उग्र रूप धारण कर लिया। वे आजीविका की खोज में हस्तिनापुर पधारे। वहाँ भीष्म के आग्रह पर कौरव-पाण्डवों को शस्त्रास्त्र की शिक्षा देना स्वीकार कर लिया। दीक्षान्त के समय कौरव-पाण्डवों को द्रोणाचार्य ने गुरुदक्षिणा के रूप में पंचाल नरेश द्रुपद को पकड़कर लाने का आदेश दिया। कुरु पाण्डु राजकुमारों ने आदेश का पालन किया और युद्ध में द्रुपद को परास्त करके, आचार्य द्रोण के सम्मुख उपस्थित कर दिया।

द्रोणाचार्य ने अपने तिरस्कार का बदला लेते हुए गंगा से उत्तर दिशा का पंचाल प्रदेश अपने पास रखकर, दक्षिण पंचाल का राज्य द्रुपद को लेने का प्रस्ताव रखा। विवश होकर द्रुपद ने इसे स्वीकार कर लिया।[45]

वैदिक साहित्य में वर्णित पांचाल शासक

वैदिक साहित्य में जिन पांचाल राजाओं का वर्णन मिलता है उनके नाम इस प्रकार हैं—क्रैव्य, शोण सात्रासाह, दुर्मुख, प्रवाहण जैबलि, दर्भ शातनीकि और ब्रह्मदत्त।

शतपथ ब्राह्मण में पंचाल राजा क्रैव्य के द्वारा अश्वमेध यज्ञ करने का वर्णन मिलता है।[46] क्रैव्य से अभिप्राय है क्रिवि का पुत्र, पंचाल का शासक। शतपथ के इस वर्णन तक यद्यपि क्रिवि प्रदेश का नाम पंचाल हो चुका था, पुनरपि जनपद के निवासियों को क्रिवि नाम से भी जाना जाता था, इसलिए उनका शासक पांचाल के साथ-साथ क्रिवि लोगों से संबंधित अथवा क्रिवि का पुत्र भी कहलाता था। इसी प्रकार सात्रासाह का वर्णन भी शतपथ ब्राह्मण में है।[47] इस राजा ने भी अश्वमेध

45. महाभारत आदि पर्व 137 सर्ग
46. शतपथ 13.5.4.7.
47. शतपथ 13.5.4.16-18

यज्ञ किया था। उस यज्ञ में यह पंचाल राजा यजमान था। उस यज्ञ में इन्द्र ने सोमपान किया था और ब्राह्मण लोग दक्षिणा आदि के धन से तृप्त हो गये थे।

ऐतरेय ब्राह्मण[48] के अनुसार पंचाल राजा दुर्मुख सब विद्याओं में पारंगत था। उसने अपने भुजबल से सारी पृथ्वी को जीत लिया था। उसके पुरोहित का नाम बृहदुक्थ था। कुंभकार जातक में[49] भी पंचाल के राजा दुर्मुख का वर्णन है। इसने वासनाओं को दुःखमूलक जानकर सांसारिक बंधनों का परित्याग कर दिया था। जैन ग्रंथ उत्तराध्ययन सूत्र में द्विमुख नाम से इसी शासक की चर्चा है। महाभारत युद्ध में दुर्मुख का पुत्र जनमेजय पाण्डवों की ओर से युद्ध कर रहा था। संभवतः उस समय तक दुर्मुख सोमक की मृत्यु हो गई थी, अथवा वह अत्यन्त वृद्ध हो गया था, इसीलिए उसके द्वारा युद्ध में भाग लेने की चर्चा नहीं मिलती।

शतपथ ब्राह्मण और छांदोग्योपनिषद् में लिखा है कि पंचालाधिपति प्रवाहण जैबलि के पास श्वेतकेतु आरुणेय गया था[50]। जनक वैदेह भी इसी का समकालिक शासक था। बृहदारण्यकोपनिषद् में भी इसी आशय का वर्णन है। जैमिनीय ब्राह्मण में पांचालों के राजा दर्भ शातानीकि का नाम दिया हुआ है।[51] वाल्मीकि रामायण[52] में कांपिल नगरी के शासक ब्रह्मदत्त चूली की चर्चा आई है। चूली नामक महातेजस्वी ऊर्ध्वरेता ब्रह्मर्षि तपस्यारत थे। उस समय ऊर्मिला की पुत्री सोमदा नामक गन्धर्वी उस ऋषिवर की सेवा करती थी। सेवा से प्रसन्न होकर ऋषि ने सोमदा से वर माँगने को कहा। उसने ब्राह्मतेज से युक्त तपस्वी पुत्र की प्राप्ति की कामना की। उस कन्या से मानसपुत्र हुआ, उसका नाम चूली ब्रह्मदत्त रक्खा। समयानुसार वह युवा हुआ और कांपिल्यपुरी का शासक हुआ। कुश नाम की अनेक कुब्जा कन्याओं से उसका विवाह हो गया। ब्रह्मदत्त का ऐसा तेज और प्रभाव था कि हाथ के स्पर्श मात्र से ही वे कन्यायें कुब्जत्व रूप वायुरोग से मुक्त हो गईं। इस सारे वर्णन में कुछ अतिशयोक्ति भी हो सकती है। मानसपुत्र शिष्य को कह सकते हैं। केंवल आशीर्वाद और विचारमात्र से पुत्रोत्पत्ति असंभव है। औषधयुक्त हाथ के स्पर्श से तो रोग दूर हो सकता है, केवल हाथ के स्पर्श से कुब्जत्व दूर नहीं हो सकता।

महाउम्मग्ग जातक में उत्तर पंचाल के एक शासक का नाम चूलनी ब्रह्मदत्त लिखा है। इस राजा ने संपूर्ण जंबू द्वीप में अपना प्रभुत्व स्थापित कर लिया था। यह राजा वैदिक धर्मानुयायी था, इसीलिए बौद्ध-साहित्य में कहीं-कहीं ब्रह्मदत्त

48. ऐतरेय ब्राह्मण 8.4.9.
49. कुम्भकार जातक भाग—3, पृष्ठ-230
50. छान्दोग्योपनिषद् 5,3.1., शतपथ 14.9.1.1.
51. जैमिनीय ब्राह्मण 2.100
52. वाल्मीकिरामायणम् बालकाण्ड, सर्ग 33

को बुरा शासक बताया गया है। जैन ग्रंथ विविधतीर्थ-कल्प में भी सार्वभौम राजा ब्रह्मदत्त का वर्णन किया है। महर्षि पाणिनि-विरचित व्याकरण-ग्रंथ अष्टाध्यायी के व्याख्या ग्रंथ महर्षि पतञ्जलिकृत महाभाष्य (२.३.९) तथा वामनजयादित्यकृत-काशिका में भी पंचाल-राज ब्रह्मदत्त की चर्चा है।[53]

दोनों पंचालों में से उत्तर पंचाल के कुछ राजा भारतीय इतिहास में बहुत प्रसिद्ध हुये। भृम्यश्व और मुद्गल का वंश विस्तार आगे दिखाया जायेगा। निरुक्त[54] के अनुसार भृम्यश्व का पुत्र मुद्गल था। महाभारत[55] के अनुसार मुद्गल त्रेतायुग के अन्त में था। ज्योतिष परम्परा के अनुसार त्रेतायुग को समाप्त हुए आठ लाख उनहत्तर हजार वर्ष बीत गए हैं। मुद्गल के वंश में वध्र्यश्व और दिवोदास बहुत प्रसिद्ध हुए। शाकल्य के एक शिष्य का नाम भी मुद्गल मिलता है। मुद्गल का पुत्र ब्रह्मिष्ठ वध्र्यश्व था। मेनका नामक अप्सरा इसकी पत्नी थी। इनसे दिवोदास और अहल्या उत्पन्न हुए। राम ने इसी अहल्या का उद्धार किया था।

अहल्या का भाई दिवोदास बहुत प्रसिद्ध हुआ। जैमिनीय ब्राह्मण के अनुसार वध्र्यश्व का पुत्र दिवोदास एक ही काल में राजा और ऋषि बन गया था।[56] हरिवंश के अनुसार भी मुद्गल त्रेतायुग के अन्त में हुआ था।[57] दिवोदास का पुत्र प्रतर्दन था। प्रतर्दन की माता का नाम दृषद्वती था।[58] मानुष मैत्रायणी संहिता में भी प्रतर्दन को दिवोदास का पुत्र बताया गया है।[59] यह प्रतर्दन ऋषि होकर मन्त्रार्थद्रष्टा भी बन गया था।[60]

भृम्यश्व का पुत्र और मुद्गल का भाई सृंजय था। यह बहुत विद्वान् था। सृंजय का पुत्र पिजवन हुआ। पिजवन पिता की भाँति विद्वान् तो था ही, साथ ही अप्रतिरथ भी था। पिजवन का पुत्र सुदास था। वसिष्ठ ऋषि सुदास का पुरोहित था[61]। मनुस्मृति 8-110 में लिखा है कि पैजवन की सभा में वसिष्ठ ने शपथ ग्रहण की थी। पिजवन-पुत्र सुदास को मनु ने यवन लिखा है। संभव है इसने अपना निवास यवनदेश में बना लिया हो। सुदास अति दानी था। गोभिलगृह्यसूत्र के अनुसार पैजवन सुदास ने ऐन्द्रावनस्थाली पाक के द्वारा यज्ञ करके एक लाख मुद्रायें दान में दीं। सुदास का पुत्र सहदेव हुआ। सहदेव के यज्ञ की महिमा महाभारत आरण्यक पर्व 88.6 में वर्णित

---

53. अधि ब्रह्मदत्ते पञ्चालाः। अधि ब्रह्मदत्तः पञ्चालेषु 1.4.97.
54. निरुक्त 9-23 मुद्गलो भार्म्यश्व ऋषिः।
55. महाभारत उद्योगपर्व 72.17।
56. जैमिनीय ब्राह्मण 1-222—दिवोदास वै वाध्र्यश्विरकामयत। उभयं ब्रह्म च क्षत्रं चावरुन्धीय राजा सन् ऋषिस्स्यामिति। स...राजा सन्नृषिरभवत्।
57. हरिवंश 29-22
58. वायुपुराण—92-64—दिवोदासाद् दृषद्वत्यां वीरो जज्ञे प्रतर्दनः॥
59. तेन वै भारद्वाजः प्रतर्दन दैवोदासिं समनह्यत्। 3.3.7.॥
60. ऋग्० 9.96 सूक्त का ऋषि
61. वसिष्ठः सुदासः पैजवनस्य पुरोहितो बभूव। —शांखायनश्रौतसूत्र 16.11.14

है। ऐतरेय और शतपथ ब्राह्मण में सुदास पिजवन और सांर्जय सहदेव का वर्णन मिलता है। सहदेव का एक नाम सुप्ला भी था। शिविक्नियों का राजा प्रतीदर्श सुप्ला सहदेव का समकालीन था। सहदेव के पुत्र का नाम सोमक था। ऐतरेय ब्राह्मण में लिखा है कि सोमक को ऋषि पर्वत और नारद ने उपदेश दिया था। सोमक का पुत्र जन्तु हुआ। जन्तु का पुत्र नीप तथा नीप का पुत्र पृषत था। कीर्ति उग्रायुध ने पृषत के पिता नीप को मार दिया था।[62] उग्रायुध ने भीष्म से भी युद्ध किया था।

महाराज शान्तुन को दिवंगत हुये कुछ ही दिन हुये थे कि अभिमानी उग्रायुध ने भीष्म के पास दूत भेजा और दूत से कहलवाया कि हे भीष्म! अपनी माता काली=सत्यवती का विवाह उग्रायुध से कर दो, अन्यथा तुम्हारे देश पर आक्रमण कर दिया जायेगा। मन्त्रिपरिषद् तथा पुरोहित वर्ग के परामर्श से आशौच के दिनों तक भीष्म ने चुप रहकर साम-दाम आदि उपायों से उग्रायुध को कुछ दिनों तक रोके रक्खा। आशौच के अनन्तर भीष्म ने तीन दिन घोर संग्राम करके उग्रायुध को मार गिराया।

उत्तर पंचाल पाँच भागों में बँट गया था। भृम्यश्व के पाँच पुत्रों ने इन पाँचों भागों पर शासन किया। इन पाँचों के कुल अपने-अपने भाग के चिरकाल तक राजा बने रहे। अन्त में उग्रायुध ने इन सबको नष्ट कर दिया। दक्षिण पंचाल के नीप वंशी शासकों का भी उसने नाश कर दिया। भीष्म द्वारा उग्रायुध के मारे जाने पर पंचालों के कुल में पृषत बच गया था। भीष्म की अनुमति से पृषत ने उत्तर और दक्षिण पंचाल का राज्य सम्भाला। पृषत के साथ सोमक और सृंजय कुल के कुछ राजकुमार भी बच गये थे। वे पृषत के अनुयायी के रूप में रहते रहे। शतपथ ब्राह्मण में सृंजय कुल के पुंस और दुष्टरीतु इन दो राजाओं के नाम मिलते हैं। यह दुष्टरीतु कुरुराज बाह्लिक का समकालीन था।

उपर्युक्त उत्तरपांचाल नरेश पृषत का पुत्र यज्ञसेन द्रुपद था। महाभारत युद्ध के समय यज्ञसेन बहुत वृद्ध था। श्रीकृष्ण ने महाराज विराट की सभा में वक्तृता करते हुये यज्ञसेन के विषय में कहा था कि आप सभी राजाओं में सबसे वृद्ध और विद्वान् हैं, इस सभा में हम सभी आपके शिष्यवत् हैं, इसमें कोई संदेह नहीं है। द्रुपद और द्रोण सहपाठी थे, इनके गुरु अग्निवेश थे। द्रुपद पुत्री कृष्णा द्रौपदी के स्वयंवर के समय द्रुपद के सात पुत्र धृतराष्ट्र के पुत्रों से युद्ध कर रहे थे। उनके नाम थे—1. धृष्टद्युम्न, 2. शिखंडी, 3. सुमित्र, 4. प्रियदर्शन, 5. चित्रकेतु, 6. सुकेतु, 7. ध्वजकेतु=ध्वजसेन, इनके अतिरिक्त महाभारत द्रोणपर्व में अन्य द्रुपदपुत्रों के नाम लिखे हैं। जैसे—8. वीरकेतु, 9. सुधन्वा, 10. चित्रवर्मा, 11. चित्ररथ, 12. सुरथ और 13. शत्रुभंज। उद्योगपर्व में द्रुपदपुत्र 14. सत्यजित् का नाम लिखा है। इस प्रकार पांचालराज द्रुपद के इन चौदह पुत्रों के नाम मिलते हैं। इनमें से दो पुत्र

62. बभूव येन विक्रम्य पृषतस्य पिता हतः। नीपो नाम महातेजाः पाञ्चालाधिपतिर्वशी॥
—वायुपुराण 99.192; मत्स्यपुराण 49.77-78; हरिवंशपुराण 1.20.45॥

द्रौपदी के स्वयंवर के समय युद्ध में मारे गये थे। महाभारत युद्ध में द्रुपद दस पुत्रों से घिरा हुआ एक अक्षौहिणी सेनासहित युद्ध कर रहा था। धृष्टद्युम्न और शिखंडी सेनानायक थे। पांचालों के दो मामा महारथ उत्तमौजा और युधामन्यु थे। ये पांडवों की ओर थे। उत्तमौजा को सार्जय=सृंजयकुल का लिखा है। युधामन्यु इसी का भाई था। केशी दार्भ्य के पश्चात् सुत्वा याज्ञसेन पांचालों का राजा हुआ। जैमिनीय ब्राह्मण 2.53 में केशी और सुत्वा का संवाद लिखा है।

द्रौपदेयों का एक मामा जनमेजय था, संभवतः यह दुर्मुख जनमेजय ही था। प्रतीत होता है कि दुर्मुख पांचाल, यज्ञसेन द्रुपद का भाई था। एक पांचाल कुमार सुचित्र था। जयंत और अमितौजा ये दो पांचाल महारथ थे। द्रुत, भानुदेव, चित्रसेन, सेनाबिंदु, पतन, शूरसेन, गोपति तथा उसका पुत्र सिंहसेन और वृक इन पांचाल वीरों का वर्णन महाभारत में आया है।

यज्ञसेन द्रुपद का प्रसिद्ध पुत्र धृष्टद्युम्न था। इसका एक पुत्र क्षत्रवर्मा महाभारत युद्ध में द्रोणाचार्य के द्वारा मारा गया था। विष्णुपुराण में धृष्टद्युम्न के पुत्र धृष्टकेतु का नाम मिलता है, संभव है महाभारत युद्ध के पश्चात् यही पांचाल शासक बना होगा। इसी यज्ञसेन द्रुपद की पुत्री पांचाली द्रौपदी से युधिष्ठिर का विवाह हुआ था। स्वयंवर की शर्त को यद्यपि अर्जुन ने पूरा किया था, पुनरपि लोकाचार की दृष्टि से बड़े भाई युधिष्ठिर के साथ ही विवाह विधि संपन्न हुई थी। महाभारत युद्ध में द्रुपद के पुत्र धृष्टद्युम्न को पांडव सेना का सेनापति बनाया गया था। द्वितीय पुत्र शिखंडी ने भी अनुपम वीरता प्रदर्शित की थी और अपने तीक्ष्णवाणों से भीष्मपितामह को पराजित किया था। शिखंडी-पांचाल के क्षत्रदेव और ऋक्षदेव नामक दो पुत्रों की चर्चा भी महाभारत में है। इस प्रकार द्रुपद तथा उसके दोनों पुत्रों ने महाभारत युद्ध में पांडवों का साथ दिया था। इसके दो कारण प्रतीत होते हैं। प्रथम यह कि द्रुपद से द्रोणाचार्य ने उसका आधा राज्य छीन लिया था और वे द्रोणाचार्य से अपने अपमान का बदला लेना चाहते थे। दूसरा यह कि द्रुपद की पुत्री द्रौपदी पांडुपुत्र से ब्याही गई थी, इसलिए संबंधी होने के कारण भी पांडवों का साथ पांचाल राजा ने दिया होगा। इस युद्ध में आचार्य द्रोण, द्रुपद और धृष्टद्युम्न भी मारे गये। आचार्य द्रोण का पुत्र अश्वत्थामा जीवित रहा था। उसने युद्ध के पश्चात् रात्रि को द्रौपदी के सोये हुए पाँचों पुत्रों का वध कर दिया। इस कुकृत्य के करने पर अश्वत्थामा पकड़ा गया परन्तु गुरुपुत्र होने के कारण अपमानित करके छोड़ दिया गया। इस के पश्चात् वह कहीं चला गया और उसका पता नहीं लगा। अहिच्छत्रा में आज भी जनश्रुति है कि अश्वत्थामा किले पर कभी-कभी घूमता दिखाई देता है। इन जनश्रुति के आधार पर एक ही सच्चाई सिद्ध हो सकती है कि कुरुक्षेत्र युद्ध के पश्चात् अश्वत्थामा संभवतः अपने पिता द्रोणाचार्य के राज्य अहिच्छत्रा में आ गया होगा। वहीं से कहीं अज्ञात स्थान को चला गया होगा। अथवा जननिंदा से दुःखी होकर आत्महत्या कर ली होगी।

वायुपुराण, मत्स्यपुराण, ब्रह्मपुराण, अग्निपुराण, विष्णुपुराण, भागवत पुराण,

गरुड़पुराण तथा हरिवंशपुराण में भारतीय प्राचीन इतिहास की महत्वपूर्ण सामग्री संगृहीत की हुई है। इनमें राजकुलों की वंशावली भी लिखी है। इनमें कहीं-कहीं नामभेद भी मिलते हैं। इसका कारण है कि कुछ तो समय के अन्तराल से भूल हुई है। दूसरे, अनेक आचार्यों की शिष्य परम्परा में अनेक पुराण रचे गये, उनमें प्रवचन भेद से, कुल के किसी व्यक्तिविशेष को महत्त्व दिये जाने से, किसी को सामान्य मानकर उसका नाम छोड़ दिये जाने से अथवा पर्यायवाची नाम भेद से भी पाठों की भिन्नता हो सकती है।

पुराण साहित्य में वर्णित पांचाल शासक

पुराणों में महाभारत से पूर्व के अनेक पांचाल शासकों की पीढ़ियाँ दी गई हैं। इन सबके यथावत् विश्लेषण से जो राजावली बनती है, वह इस प्रकार है—

अजमीढ + (धूमिनी केशिनी पत्नी)

1. बृहद्वसु (दक्षिण पंचाल का प्रथम शासक)
2. बृहद्धनु
3. बृहत्कर्मा
4. जयद्रथ
5. विश्वजित्
6. सेनजित्

दृढहनु | 7. रुचिराश्व | काश्य | वत्स

8. पृथुषेण
9. पार (प्रथम)
10. नीप
11. समर
12. पार (द्वितीय)
13. पृथु
14. सुकृति
15. विभ्राज
16. अणुह
17. ब्रह्मदत्त+योगीगवि
18. विष्वक्सेन
19. उदकसेन
20. झल्लाट
21. जनमेजय

जनमेजय को द्विमीढवंशीय उग्रायुध ने मार दिया, इसके पश्चात् यह राज्य द्रुपद के अधीन हो गया।

इस सूची में वर्णित नामों से यह निष्कर्ष निकालना उचित नहीं रहेगा कि ये सब राजा पिता-पुत्र आदि क्रमशः पीढ़ी के हैं। प्राचीन शैली यह रही है कि केवल प्रसिद्ध व्यक्तियों के नामों का ही वर्णन कर दिया जाता था, साधारण और अप्रसिद्ध व्यक्ति को वंशावलि में स्थान नहीं भी मिलता था। यह परिपाटी आज भी है जैसे मुगल साम्राज्य में बाबर, हुमायूं, अकबर, जहाँगीर, शाहजहान् और औरंगज़ेब इन छः बादशाहों को ही प्रायः गिनते हैं। कामबख्श, मुरादाबख्श, कामरान, रफ्यूदरजात, इब्राहिम आदि की गणना नहीं के बराबर होती है अथवा होती ही नहीं।

पांचालों की उपर्युक्त वंशावलि के अनेक नामों को इतिहासकार वेद से मिलान करके दिखाते हैं। सो पुराकाल में वेद से ही सभी नाम लेकर लोक में नाम रखने की प्रथा थी। मनुस्मृति में कहा है—

सर्वेषां तु स नामानि कर्माणि च पृथक्-पृथक्।
वेदशब्देभ्य एवादौ पृथक् संस्थाश्च निर्ममे॥

इसलिए यदि ये नाम वेद में मिल भी जाते हैं तो इसका अभिप्राय यह तो नहीं हो जाता कि ये लौकिक व्यक्ति विशेषों के ही नाम हैं। ये सभी नाम यौगिक हैं, धातु प्रकृति-प्रत्यय के आधार पर इन सबके प्रसंगानुसार अर्थ भी हैं। इसलिये इनको लौकिक ऐतिहासिक व्यक्तियों के नामों के परिप्रेक्ष्य में देखना अनुचित है।

इस वंशावली को देखने से ज्ञात होता है कि महाभारत युद्ध से बहुत पहले ही पंचाल राज्य राजसंचालन सुविधा की दृष्टि से दो भागों में विभक्त था, किंतु इसका कोई साक्ष्य नहीं मिलता। सम्भव है शासन की सुविधा हेतु अहिच्छत्रा और कांपिल्य दोनों ही स्थान शासनकेन्द्र बना लिये हों, इनमें से एक शासक दूसरे की अधीनता में रहता होगा। इसलिये जब उग्रायुध ने जनमेजय को मार दिया तो यह राज्य उग्रायुध के पास न जाकर उत्तर पंचाल के शासक द्रुपद के अधीन हो गया। इसके अनन्तर ही द्रोणाचार्य और द्रुपद के मध्य यह दो भागों में बँट गया। यदि पहले से ही इसके दो भाग होते तो जनमेजय के पश्चात् उसका पुत्र शासक बनता अथवा उग्रायुध के कुल को यह राज्य मिलता। इसलिये द्रोणाचार्य से पूर्व पंचाल राज्य दो भागों में होता हुआ भी एक ही शासक के अधीन रहता था।

महाभारत युद्ध के कारण प्रायः सभी राज्य, गणराज्य और संघराज्य नष्ट हो गये, ऐसी अवस्था में पंचाल आदि राज्य भी पाण्डवों के अधीन हो गये। युधिष्ठिर के राज्य त्याग के पश्चात् परीक्षित ने शासनभार सम्भाला। परीक्षित के समय पश्चिमोत्तर दिशा में नागवंश उभरकर सत्ता में आया। नागों ने परीक्षित के राज्य पर आक्रमण कर दिया और नाग नेता तक्षक ने परीक्षित को युद्ध में पराजित करके मार दिया। किंतु नागलोग भी अधिक समय तक राज्य सुख का उपभोग नहीं कर

सके, क्योंकि परीक्षित के पुत्र जनमेजय ने अपनी शक्ति प्रबल करके नागों पर आक्रमण कर दिया और चुन-चुनकर उनको नष्ट कर दिया। इसी पारस्परिक कलह में ही अवसर पाकर पंचाल का राजवंश पुनः सत्ता में आ गया और नन्दवंशी महापद्मनन्द तक पंचालों का शासन निरन्तर चलता रहा। महाभारत युद्ध से लेकर नन्दवंश तक पंचालों के 27 राजा हुये। पुराणों में इनकी संख्या ही लिखी है, नाम अथवा इनके कार्यों की कोई चर्चा नहीं मिलती।

जैनमत के ग्रंथ विविधतीर्थ कल्प के अनुसार महाभारत युद्ध के पश्चात् पंचाल में एक हरिषेण नामक राजा हुआ। उसे पंचाल का दसवाँ चक्रवर्त्ति राजा लिखा है।

नन्दवंश के पश्चात् पंचाल भी मौर्य-शासन के अन्तर्गत मगध के अधीन हो गया और इस राज्य की स्वतंत्र गतिविधियाँ बन्द हो गई, क्योंकि उस समय के साहित्य इत्यादि में पंचाल की कोई चर्चा नहीं मिलती। अशोक के पश्चात् यह राज्य पुनः स्वतंत्र हो गया और लम्बे समय तक अर्थात् कुषाण राजा वासुदेव तक स्वतंत्र रहा।

पुरातात्विक प्राप्त साक्ष्यों से यह सम्भावना व्यक्त की जा सकती है कि यहाँ कुणिन्दगण का भी शासन रहा है, क्योंकि अमोघभूति कुणिंद की मुद्रायें भी पंचाल-प्रदेश से मिलती रहती हैं। इसके लिये यह भी कहा जा सकता है कि किसी व्यापारिक-सन्धि के अन्तर्गत एक दूसरे की मुद्राओं से परस्पर वस्तुओं का क्रय होता रहा हो।

इण्डोग्रीक और इण्डोशसेनियन मुद्रायें भी पंचाल प्रदेश से मिलती हैं, लगता है यवन आक्रमणकारी इस प्रदेश पर कुछ समय तक प्रभावी रहे होंगे। गर्गसंहिता में दुष्ट और दुर्दान्त यवनों के आक्रमण की चर्चा है। शुंगवंशीय पुष्यमित्र और अग्निमित्र के समय होने वाले यवन आक्रमण की चर्चा महाभाष्यकार पतंजलि ने भी की है। **अरुणद् यवनः साकेतम्, अरुणद् यवनो माध्यमिकाम्**[63]। साकेत (अयोध्या) और माध्यमिका (चित्तौड़ के पास नगरी नामक स्थान) को यवनराज ने घेर लिया यह आक्रमण महर्षि पतंजलि के जीवनकाल में ही हुआ था, परंतु इस घटना को वे स्वयं अपनी आँखों से नहीं देख पाये थे।

पंचाल पर मौर्यों के शासन का यद्यपि प्रत्यक्ष प्रमाण नहीं मिलता, पुनरपि कुछ ऐसे तथ्य हैं, जिनके आधार पर यह सिद्ध हो जाता है कि पंचाल प्रदेश में मौर्य कुल के राजाओं का राज्य रहा है। मौर्य काल में चलने वाली आहत (कार्षापण) मुद्रायें पंचाल प्रदेश से पर्याप्त मिलती हैं। इनसे अतिरिक्त ताम्र की ढली मुद्रायें (जिन पर मौर्य-कालीन हाथी, पेड़ और शस्त्रास्त्र चिह्नित मिलते हैं) भी प्राप्त होती हैं। मौर्य सम्राट् अशोक के काल में बौद्धधर्म का बहुत प्रचार हुआ। अहिच्छत्रा की खुदाई में मिलने वाले अनेक बौद्धस्तूप और विहार मौर्य शासन के प्रबल प्रमाण

63. महाभाष्यम् 3.2.119 ''अपरोक्षे च'' सूत्र पर भाष्य।

हैं। बौद्ध मूर्तियों का मिलना भी यही सिद्ध करता है। रहटोइया से मिले हरनकर नामक बौद्ध विहार के मुद्रांक से भी मौर्य शासन की पुष्टि होती है। अहिच्छत्रा के स्तूप, विहार और संघारामों की चर्चा चीनी यात्री ह्वेन्त्सांग ने भी की है। इनका निर्माण अशोक के बौद्धमत में दीक्षित होने के पश्चात् ही हुआ होगा। क्योंकि चन्द्रगुप्त तो मुनिवर चाणक्य के प्रभाव में आकर शुद्ध वैदिक धर्मी हो गया था। उस समय बौद्धों के प्रभाव की कल्पना नहीं की जा सकती। मौर्यवंश में 12 शासक हुये, इनका शासनकाल लगभग 300 वर्ष तक रहा। वायुपुराण, मत्स्यपुराण, कलियुग-राजवृत्तांत तथा अवंति-सुन्दरी-कथा आदि ग्रंथों में जिन मौर्य राजाओं के नाम दिये हैं, वे इस प्रकार हैं—चन्द्रगुप्त, भद्रसार, अशोक, कुणाल, दशरथ, इन्द्रपालित, हर्षवद्र्धन, संप्रति, शालिशूक, सोमशर्मा, शतधन्वा और बृहद्रथ। इनमें से प्रतापी शासकों के राज्य काल में तो पंचाल इनके आधीन रहा ही होगा।

अन्तिम मौर्य राजा बृहद्रथ तक मौर्य राज्य अति क्षीण हो गया था। राजा भी 87 वर्ष का हो चुका था। इसके सेनानी पुष्यमित्र शुंग ने राजा को सेना का निरीक्षण कराने के मिष से मार दिया और शुंग वंश का प्रथम प्रतापी शासक बन गया। हर्षचरित में भी लिखा है—**प्रतिज्ञादुर्बलं च बलदर्शनव्यपदेशदर्शिताशेषसैन्यः सेनानीरनार्यो मौर्यं बृहद्रथं पिपेष पुष्यमित्रः स्वामिनम्।** पूर्वी भारत के एक प्रदेश का नाम शुंग था, संभवतः पुष्यमित्र इसी प्रदेश का रहने वाला था, इसीलिये शुंग कहलाया। यह कश्यपगोत्रीय वैदिक धर्मानुयायी ब्राह्मण था। इसने कलियुग में अश्वमेध-परंपरा का पुनरुद्धार किया और स्वयं दो वार अश्वमेध यज्ञ किया।[64] यह राजा प्रमुखतया पाटलिपुत्र और विदिशा से शासनसूत्र का संचालन करता था।

इसने मध्य देश से लेकर जालन्धर (पंजाब) तक सभी बौद्ध मठ और संघाराम भस्मसात् करके बौद्ध भिक्षुओं को मार दिया। तिब्बत के श्री तारानाथ बौद्ध ने लिखा है—बौद्धमत के अत्यधिक प्रभाव के कारण भारत से क्षत्रियत्व नष्ट हो चला था। अहिंसा की विपरीत व्याख्या ने क्षत्रियों के कर्त्तव्य को भुला दिया था। इसी के परिणामस्वरूप भारत के पश्चिमी क्षेत्रों पर यवनों ने आधिपत्य कर लिया। उसी के

---

64. कोसलाधिपेन द्विरश्वमेधयाजिनः सेनापतेः पुष्यमित्रस्य षष्ठेन कौशिकीपुत्रेण धन...धर्मराज्ञा पितुः फल्गुदेवस्य केतनं कारितं॥ (अयोध्यानगर के रानोपाली स्थान में स्थित ऋषि आश्रम के देवालय की देहली (धेल) चौखट के निचले भाग पर उत्कीर्ण लेख)।

कारण दुस्साहस करके यवन लोग पुष्यमित्र के शासन पर भी आक्रमण कर बैठे, किंतु पुष्यमित्र की वीरता के सम्मुख वे न टिक सके और उनको तुरन्त लौटना पड़ा। गर्गसंहिता के युगपुराण खंड में इस यवन आक्रमण की चर्चा की गई है—

ततः साकेतमाक्रम्य पञ्चालान् मथुरां तथा।

यवना दुष्टविक्रान्ताः प्राप्स्यन्ति कुसुमध्वजम्॥

ततः पुष्पपुरे प्राप्ते कर्दमप्रथिते हिते।

आकुला विषयाः सर्वे भविष्यन्ति न संशयः॥

दुर्दांत पराक्रमी यवनों ने साकेत (अयोध्या) पर आक्रमण करके पंचाल प्रदेश और मथुरा को विजित करते हुये कुसुमध्वज (पाटलिपुत्र) पर आक्रमण किया।

पतंजलिमुनि के महाभाष्य में भी यवनों की चर्चा है। वे लिखते हैं—**अरुणद् यवनः साकेतम्। अरुणद् यवनो माध्यमिकाम्।** अर्थात् यवनराज ने साकेत (अयोध्या) और माध्यमिका नगरी पर घेरा डाल दिया।

कालिदासकृत मालविकाग्निमित्र में भी यवनों के आक्रमण का वर्णन है। इसके अनुसार सेनापति पुष्यमित्र के यज्ञ का अश्व वसुमित्र की रक्षा में विचर रहा था। वसुमित्र के साथ सौ राजपुत्र थे। वसुमित्र श्रेष्ठ धन्वी था। सिन्धु नदी के दक्षिणी तट पर यवनों ने यज्ञ के अश्व को रोका। दोनों सेनाओं में महान् युद्ध हुआ। वसुमित्र विजयी हुआ। पुष्यमित्र ने 60 वर्ष अथवा 36 वर्ष शासन किया। संभवतः 24 वर्ष सेनानी के रूप में तथा 36 वर्ष स्वयं राजा के रूप में शासन भार सम्भाला होगा। पुष्यमित्र के काल में जिस यवन आक्रान्ता ने आक्रमण किया था, उसका स्पष्ट नाम निर्देश कहीं नहीं मिलता। विद्वानों ने कल्पना की है कि वह डिमिट्रियस अथवा मिनेण्डर होगा। यह भी संभव है कि प्रथम आक्रान्ता डिमिट्रियस होगा और दूसरा मिनेंडर। क्योंकि पुष्यमित्र ने दो वार अश्वमेध यज्ञ इसीलिये किया कि दो वार ही उसने यवनों को पराजित किया होगा।

पुष्यमित्र के पश्चात् उसका पुत्र अग्निमित्र शासक बना। अग्निमित्र के पश्चात् शुंगों में 8 शासक और हुये। उनके नाम पुराणों में इस प्रकार दिये हैं—वसुज्येष्ठ, वसुमित्र, पृथुक, पुलिंदक, घोष, वज्रमित्र, भागवत और देवभूति।

शुंगवंश का अन्तिम शासक देवभूति था। यह अति व्यसनी और स्त्रीलोलुप था। इस राजा ने अपने मन्त्री वसुदेव की कन्या से ही बलात्कार करने का यत्न किया। इससे क्षुब्ध होकर वसुदेव ने देवभूति को उसकी दासी कन्या के द्वारा मरवा दिया। देवभूति को मरवाकर भी इसके कुल को नष्ट नहीं किया। इसके पश्चात् अमात्य वसुदेव स्वयं पाटलिपुत्र का शासक बन गया। यह कण्ववंशीय ब्राह्मण था। इसकी चार पीढ़ियों ने शासन किया। वे थे वसुदेव, भूमिमित्र, नारायण और सुशर्मा। इन चारों ने 45 वा 85 वर्ष राज्य किया।

पुरातत्वसाक्ष्यों से ज्ञात पांचाल शासक

मौर्यकाल के पश्चात् पंचाल शासकों की जानकारी हमें पंचाल प्रदेश से मिलने वाली पुरातत्वीय सामग्री से होती है। अशोक के पश्चात् पंचाल प्रदेश को स्थानीय राजवंश ने अपने अधिकार में कर लिया था।

जैसा पहले बताया जा चुका है कि वसुदेव ने केवल अपने राजा देवभूति को ही मरवाया था, उसके कुल को नष्ट नहीं किया था, इसलिये हमारा विचार है कि वसुदेव के राजा बनने पर देवभूति का पुत्र वहाँ से छोड़कर अन्यत्र चला गया। मुद्राओं से ज्ञात अहिच्छत्रा के सबसे पुराने शासक का नाम दामभूति मिलता है। संभवतः यह दामभूति देवभूति का पुत्र रहा हो। इसने जोड़-तोड़ करके अहिच्छत्रा में राज्य स्थापित कर लिया और अपने नाम की अनेक प्रकार की मुद्राएँ प्रचलित कराईं। कालान्तर में इसको वहीं के स्थानीय शासक वंगपाल ने पराजित कर दिया और स्वयं राज्य करने लग गया।

अशोक-कालीन ब्राह्मी-लिपि में लिखी एक मुद्रा श्री विरजानन्द दैवकरणि को रहटोइया (बरेली) से मिली है, उस पर **दामभूति** लिखा है। अहिच्छत्रा से मिली कुछ अन्य मुद्राओं पर दामभूति नाम के ऊपर वंगपाल ने अपने नाम का ठप्पा लगाया हुआ है। इससे सिद्ध है कि पंचाल के शासक दामभूति को पराजित करके वंगपाल ने राज्य प्राप्त कर लिया। उसे अपने नाम की मुद्रा चलाने की इतनी तीव्र आकांक्षा थी कि तुरन्त नई मुद्रायें बनवाने की अपेक्षा पूर्ववर्ती शासक दामभूति की मुद्राओं पर ही शीघ्रता वश अपने नाम का ठप्पा लगवा दिया। कहीं यह ठप्पा दामभूति की मुद्रा पर पृष्ठ भाग में है तो कहीं दामभूति नाम आधा ही रह गया है, आधा नाम वंगपाल नाम ने दबा लिया है। इस कार्य के अनन्तर वंगपाल ने अपनी स्वतंत्र मुद्रायें भी बनवाईं।

कौशांबी के पास स्थित पभोसा के गुहालेख से वंगपाल के पूर्ववर्ती और परवर्ती शासकों की जानकारी मिलती है। उसके अनुसार वंगपाल के पिता का नाम शोनकायन था। वंगपाल का पुत्र भागवत और भागवत का पुत्र आषाढ़सेन था। वंगपाल को छोड़कर इन तीनों की मुद्रायें अभी तक नहीं मिल पाई हैं। इनके पश्चात् वृषभमित्र पंचाल राज्य का शासक बना। इसकी मुद्राओं पर वंगपाल की भाँति अशोककालीन लिपि में नाम लिखा है। इसके अनन्तर भद्रघोष और रुद्रघोष पंचाल के शासक हुए। लिपि के आधार पर ही इनका स्थान वृषभमित्र के पश्चात् रखना उचित जान पड़ता है।

इनके परवर्ती अनेक शासकों के नाम मुद्राओं एवं मुद्रांकों (मोहरों) से ज्ञात हुये हैं। इनको कालक्रमानुसार उचित रूप से आगे-पीछे रखना अतिकठिन कार्य है। इसलिये लिपि के आधार पर तथा एक पात्र में मुद्रा प्राप्ति के आधार पर यहाँ सभी शासकों के नाम दिये जा रहे हैं—

1. दामभूति
2. वंगपाल
3. विश्वपाल
4. वृषभमित्र
5. भद्रघोष
6. रुद्रघोष
7. रेवतीमित्र
8. पुष्यसेन
9. युगसेन
10. वसुसेन
11. यज्ञसेन
12. वसुमित्र
13. सूर्यमित्र
14. पृथिवीमित्र
15. अच्युत
16. भूमिमित्र
17. शिवमित्र
18. यज्ञबल
19. यज्ञपाल
20. अग्निमित्र
21. भद्रमित्र
22. भानुमित्र
23. फल्गुनीमित्र
24. यज्ञमित्र
25. विजयमित्र
26. वरुणमित्र
27. अणुमित्र
28. जयगुप्त
29. इन्द्रमित्र
30. विष्णुमित्र
31. जयमित्र
32. प्रजापतिमित्र
33. ध्रुवमित्र
34. रुद्रगुप्त
35. श्रीनंदि
36. शिवनंदि
37. नंदिगुप्त
38. महेश्वर

इन नामों से यह तो निश्चित है कि ये सब शासक पंचाल प्रदेश पर शासन करते रहे हैं। मुद्राओं में प्रयुक्त लिपि के आधार पर सिद्ध होता है कि ये पांचाल राजा मौर्य युग से लेकर गुप्त सम्राट् समुद्रगुप्त के समय तक पंचाल पर अपना प्रभुत्व स्थापित किये रहे।

पांचाल शासकों के परंपरागत चलने वाले राज्य को मौर्यों के पश्चात् कुषाण सम्राट् हुविष्क और वासुदेव द्वारा धक्का लगा। इन कुषाण राजाओं के समय में पंचाल प्रदेश पर ध्रुवमित्र और रुद्रगुप्त का शासन था। क्योंकि वासुदेव की मुद्राओं के साथ ध्रुवमित्र और रुद्रगुप्त की मुद्रायें एक ही पात्र में अनेक वार मिल चुकी हैं। तत्कालीन प्रजाजनों ने परंपरा से चले आ रहे पांचाल शासकों की मुद्राओं के साथ वासुदेव की मुद्राओं को भी संगृहीत करके घरों में दबाकर रख लिया था, ये अभी तक कहीं-कहीं भूमि में दबी हुई मिलती हैं। प्रतीत होता है कि वासुदेव कुषाण ने इनकी शक्ति को क्षीण कर दिया और रही सही शक्ति समुद्रगुप्त ने नष्ट कर दी।

समुद्रगुप्त की प्रयाग प्रशस्ति में आर्यावर्त्त के शासक अच्युत को पराजित करने की बात लिखी है। सो पंचाल प्रदेश में मिलने वाली ''अच्यु'' की मुद्राओं का समीकरण विद्वान् लोग प्रयाग-प्रशस्ति के अच्युत के साथ करते हैं। प्राचीन भारतीय इतिहास शोध परिषद् के निदेशक श्री विरजानंद दैवकरणि को दो मुद्रायें ऐसी भी मिली हैं जिन पर 'अच्युत' लेख पूरा लिखा मिला है। गुप्तों के समय पंचाल प्रदेश पर समुद्रगुप्त, चंद्रगुप्त द्वितीय, कुमारगुप्त और हरिगुप्त का शासन रहा। इस प्रदेश से मिलने वाली गुप्त मुद्रायें इसका प्रत्यक्ष प्रमाण हैं।

गुप्तकाल के पश्चात् पांचालों का विशेष वर्णन नहीं मिलता। हर्षवर्द्धन के राज्य में पंचाल प्रदेश हर्ष के अधीन था। हर्ष के समय चीनी यात्री ह्वेंत्सांग भारत में आया था। वह पंचाल प्रदेश की राजधानी अहिच्छत्रा भी गया था। उसने पंचाल

अथवा अहिच्छत्रप्रदेश का विस्तार 3000 ली (लगभग 60 योजन=600 किलोमीटर) लिखा है। चीनी यात्री के अनुसार पंचाल प्रदेश का जलवायु उत्तम है तथा यहाँ के निवासी सत्यनिष्ठ हैं और धर्म एवं विद्याभ्यास के प्रति इनका बड़ा प्रेम है। चीनी यात्री के अनुसार पंचाल में उस समय बौद्धमत का प्रभाव था।

महाराज हर्ष के पश्चात् किन राजाओं का राज्य रहा, इसका पता नहीं लगता। विक्रम की नवीं शती के प्रारंभ में कन्नौज पर प्रतीहार वंश के राजाओं का राज्य आरंभ हुआ। उस समय देश में प्रतीहार, पाल तथा राष्ट्रकूटों में अपने-अपने प्रभुत्व के लिये संघर्ष चल रहा था। प्रतीहार लोग उस समय उत्तर भारत पर अपना प्रभाव जमाये रहे। उनके विस्तृत साम्राज्य में पंजाब, मध्य देश (पांचाल) तथा मालवा भी संमिलित हो गये थे। इस कुल में मिहिरभोज आदिवराह, विग्रहपाल, महेन्द्रपाल तथा महीपाल बड़े प्रतापी शासक हुये। पांचाल देश से आदिवराहमिहिरभोज और विग्रहपाल की मुद्रायें मिलती रहती हैं। विक्रम की ग्यारहवीं शती के आरंभ में राष्ट्रकूट राजाओं ने उत्तर की ओर बढ़कर प्रतीहारों के राज्य का बहुत बड़ा भाग जीत लिया। उसी समय कुछ प्रदेशों के सामंत लोग स्वतंत्र हो गये और प्रतीहारों के साम्राज्य का अन्त दिखाई देने लगा।

कुछ समय पश्चात् मुस्लिम आक्रमणकारियों के लगातार आक्रमण से यह पंचाल प्रदेश स्थानीय शासकों के हाथों से जाता रहा और इसके अहिच्छत्रा, कांपिल्य तथा सांकाश्य आदि प्रसिद्ध नगर नष्ट होकर खंडहरों के रूप में परिणत हो गये। मुस्लिम काल में इस प्रदेश पर कोई स्वतंत्र शासक न रहने से इसका प्राचीन वैभव और इतिहास भी काल के कराल गाल में सिमटकर रह गया।

पंचाल राज्य के प्राचीन नगर

अति प्राचीन काल में पंचाल प्रदेश का नाम क्रैव्य देश था। यहाँ के निवासी क्रिवि थे, इसीलिये इनका अध्युषित प्रदेश क्रैव्य देश कहलाया। त्रेतायुग के अंत में राजा भृम्यश्व के पाँच पुत्रों के कारण क्रैव्य देश पंचाल प्रदेश बन गया। भारतीय परम्परा को मानने वालों के अनुसार यह घटना आज विक्रम संवत् 2056=सन् 2000 ईसवी से 8 लाख 69 हजार वर्ष पूर्व की है। आधुनिक इतिहासकार सतयुग, त्रेतायुग, द्वापरयुग और कलियुग के कालों को ही काल्पनिक मानते हैं। इनके अनुसार यह समय 1400 से 3100 वर्ष ईसापूर्व है। क्रैव्य देश के किसी प्राचीन नगर का नाम ज्ञात नहीं हो सका है। पंचाल नाम परिवर्तित होने के पर्याप्त समय पश्चात् के अनेक नगरों की चर्चा प्राचीन साहित्य में मिलती है।

1. **कांपिल्य**—वाल्मीकीय रामायण में कांपिल्य नगर और उसके शासक ब्रह्मदत्त का वर्णन मिलता है। कांपिल्य की चर्चा वाजसनेयी संहिता (33.18) में भी पाई जाती है। पाणिनि मुनि ने अष्टाध्यायी के संकाशादिगण (4.2.80) में कांपिल्य शब्द पढ़ा है। आजकल कांपिल्य एक खंडहर के रूप में भूमि में दबा पड़ा है। इसका नाम कंपिल है। यह फर्रुखाबाद जनपद के अंतर्गत गंगा के किनारे बसा हुआ था।

राजा भृम्यश्व के एक पुत्र का नाम कांपिल्य था, उसके नाम पर ही इसका नाम कांपिल्य प्रसिद्ध हुआ। द्रुपद की पुत्री द्रौपदी का स्वयंवर इसी स्थान पर हुआ था। वहाँ के लोगों में अभी तक यह जनश्रुति चली आ रही है। स्वयंवर के समय धृतराष्ट्र के पुत्रों के साथ हुये युद्ध में द्रुपद के दो पुत्र इसी स्थान पर वीरगति को प्राप्त हुये थे। जनश्रुति है कि इस प्राचीन खंडहर में राजा द्रुपद के दुर्ग और द्रौपदी के कुंड के चिह्न अभी तक विद्यमान हैं। इस महत्वपूर्ण दुर्ग की खुदाई पुरातत्व विभाग की ओर से होनी चाहिए।

2. सांकाश्य—कांपिल्य नगर से लगभग 30 मील=48 किलोमीटर दक्षिण में और फर्रुखाबाद के पखना स्टेशन से 7 मील=11 किलोमीटर दक्षिण पश्चिम में काली नदी के तट पर संकिसा नामक ग्राम स्थित है।* अष्टाध्यायी के 4.2.80 के गणपाठ में सांकाश्य का नाम लिखा है। पतंजलिमुनि के महाभाष्य (**अपादाने पञ्चमी 2.3.28**) में भी सांकाश्य की चर्चा है। वहाँ लिखा है—**गवीधुमतः सांकाश्यं चत्वारि योजनानि।** अर्थात् गवीधुमान् नगर से सांकाश्य चार योजन=16 कोश=40 किलोमीटर है। इस प्राचीन खंडहर के पास अब एक बसन्तपुर नामक छोटा सा ग्राम बसा हुआ है। चीनी यात्री ह्वेंत्सांग ने सांकाश्य का नाम ''सेंगकियसे'' लिखा है। इस यात्री ने इसका कपित्थ नाम भी लिखा है। बौद्ध ग्रंथों में सांकाश्य की बहुत चर्चा है। उनके अनुसार भगवान् बुद्ध ब्रह्म और इंद्र के साथ इसी स्थान पर त्रयस्त्रिंश स्वर्ग से उतरे थे।

आजकल संकिसा के टीले पर ''बिषहरी'' देवी का मंदिर है। इसी के पास अशोक के स्तंभ का शीर्ष भाग पड़ा हुआ है, इस पर हाथी की मूर्ति बनी है। इसकी सूँड टूट गई है। चीनी यात्री ने इसे सिंह की मूर्ति कहा है। इस शीर्ष पर ऐसी ही चमकदार पालिश है जैसी दीदारगंज की यक्षिणी पर है। यहाँ शुंगकाल से लेकर गुप्तकाल तक की मृन्मूर्तियाँ बहुत मिली हैं। मिट्टी के मुद्रांक भी मिले हैं। एक ईंट पर ब्राह्मीलिपि में यह लेख लिखा मिला है—

भदसमस सवजीवलोके पुठगोरथस
भटिकपुतस जेठस भागविपुतस

इसमें भटिक और भार्गवी के पुत्र ज्येष्ठ का नाम लिखा है। संकिशा के चारों ओर मिट्टी की विशाल दीवार के चिह्न अभी तक भी दिखाई पड़ते हैं। यह चारदीवारी 4 मील=6 किलोमीटर के घेरे में थी।

3. नोहखेड़ा—एटा से लगभग 20 मील=32 किलोमीटर दक्षिण में जलेसर

* विद्वानों ने संकिसा नामक दो ग्राम माने हैं, एक फर्रुखाबाद जिले में कुण्डरकोट से उत्तर दिशा में 36 मील=58 किलोमीटर तथा अलीगंज से 11 मील=18 किलोमीटर दक्षिण पूर्व दिशा में है। दूसरा कन्नौज से 45 मील=72 किलोमीटर उत्तर पश्चिम तथा फतहगढ से 23 मील=37 किलोमीटर इटावा जिले में कालिन्दी नदी के बीच है। —सम्पादक

तहसील में नूहखेड़ा (नोहवा) नामक ग्राम है। गुप्तकालीन अवशेष यहाँ पर्याप्त मिले हैं। यहाँ एक स्त्रीमूर्ति है, जिसे रुक्मिणी कहा जाता है। इस मूर्ति के अंगों का विन्यास तथा अलंकरण अत्यंत कलात्मक है। यह शिरोरहित है। जनश्रुति के अनुसार इसके निकट कुंडल या कुंडिनपुर स्थान था, यहीं से श्रीकृष्ण रुक्मिणी को लेकर गये थे। नूह से तीन मील=5 किलोमीटर दूर नरौली नामक स्थान में प्राचीन मंदिरों के अनेक भग्नावशेष हैं।

4. **बिलसड**—एटा से 37 मील=59 किलोमीटर उत्तर पूर्व में अलीगंज तहसील में यह ग्राम है। यहाँ गुप्तकालीन अवशेष निकलते हैं। यहाँ से कुमारगुप्त का 96 गुप्त संवत् का एक लेख निकला है। इसमें स्वामी महासेन कार्तिकेय के मंदिर में ध्रुवशर्मा नामक व्यक्ति द्वारा प्रतोली (द्वार) तथा धर्मसत्र बनवाने की चर्चा है।

5. **कठघरा** (कटिंघरा)—एटा से 27 किलोमीटर पूर्व में काली नदी के किनारे कठघरा नामक ग्राम स्थित है। इसके निकट 5 छोटे-छोटे टीले नुमा प्राचीन खंडहर हैं। संभवतः ये मंदिर थे। एक टीले से रामायण के दृश्यों से युक्त पर्याप्त मृत्फलक प्राप्त हुये हैं। इन पर गुप्तक़ालीन लिपि में लेख खुदे मिले हैं। राम द्वारा बाली वध, रावण द्वारा सीताहरण, वानरों द्वारा सीता की खोज के लिये विचार विमर्श करना आदि दृश्यों से युक्त दर्जनों मृन्मूर्तियाँ यहाँ से मिली थीं। वहाँ जाने पर ज्ञात हुआ कि दिल्ली, मथुरा और एटा के लोगों ने इनको खरीदकर स्थानांतरित कर दिया। इन सब टीलों में इसी प्रकार के मंदिर पाये जाने का अनुमान है। मुद्रायें भी कुछ लोगों को मिली थीं, उनका पता नहीं लग पाया कि वे किस काल की थीं, क्योंकि वे हमारे देखने में नहीं आईं।

6. **अतरंजीखेड़ा**—यह एटा से 10 मील=16 किलोमीटर उत्तर में काली नदी के किनारे स्थित है। इतने विस्तृत और ऊँचे टीले उत्तर प्रदेश में अन्यत्र बहुत कम हैं। इस टीले की लंबाई 3960 फीट और चौड़ाई 1500 फीट है। इसकी ऊँचाई 65 फीट है। यहाँ से शुंग, कुषाण और गुप्तकालीन मृन्मूर्तियाँ, प्रस्तरमूर्तियाँ, सिक्के आदि बहुत मिलते हैं। कुषाण सम्राट् हुविष्क की ताम्र मुद्रायें ढालने के ठप्पे (साँचे) भी इस खंडहर से मिले हैं। इस टीले पर एक शिव मंदिर बना हुआ है, यहाँ से अनेक प्राचीन शिवलिंग भी प्राप्त हुए हैं।

7. **कन्नौज**—इस नगर और इसके जनपद का प्राचीन नाम कान्यकुब्ज था। इसके नाम गाधिपुर, कुशस्थल, कुसुमपुर आदि भी प्राचीन साहित्य में मिलते हैं। गर्गसंहिता में भी कान्यकुब्ज की चर्चा मिलती है। अमावसु के पुत्र पुरुरवा यहाँ के प्रथम शासक थे। इसके पश्चात् भीम, कांचनप्रभ, सुहोतृ, जह्नु और कुश आदि शासक हुये हैं। महात्मा बुद्ध भी कान्यकुब्ज नगर में पधारे थे। चीनी यात्री ह्वेंत्सांग भी यहाँ आया था। यहाँ अशोक ने 200 फीट ऊँचा एक स्तूप भी बनवाया था। मौर्यवंश के पश्चात् शुंग, पांचाल, कुषाण और गुप्तों का राज्य यहाँ रहा। महाराज हर्ष के समय कन्नौज की बहुत उन्नति हुई। मौखरी, प्रतीहार, गहडवाल और गुर्जर-

प्रतीहारों का भी शासन रहा। यहाँ नागभट्ट द्वितीय, मिहिरभोज, महेंद्रपाल और महीपाल आदि प्रतापीशासक हुये हैं। इस खंडहर से विष्णु, महाविष्णु, शिव, सूर्य, गणेश, दुर्गा और महिषासुरमर्दिनी की प्रतिमायें उपलब्ध हुई हैं। शिव-पार्वती-परिणय दृश्य की एक विशाल मूर्ति भी यहाँ से मिली है। चतुर्भुज विष्णु, एकमुखलिंग, चतुर्मुख शिवलिंग, ब्रह्मा, इन्द्र, कार्तिकेय, सूर्य आदि की मूर्तियाँ भी प्राप्त हुई हैं। बुद्ध की प्रतिमायें और काले पत्थर (कसौटी) से बनी विष्णु की मूर्ति भी यहीं से मिली हैं। कला की दृष्टि से यह विष्णुप्रतिमा अप्रतिम है। यह कन्नौज के एक मंदिर में स्थापित है। सुना जाता है कि महामना श्री मदनमोहन मालवीय ने काशी हिन्दू विश्वविद्यालय में रखने के लिए इस प्रतिमा को लेना चाहा था और इसके लिए एक लाख रुपये देने को भी तत्पर थे, परन्तु मंदिर के स्वामियों ने यह प्रस्ताव अस्वीकार कर दिया।

8. **अहिच्छत्रा**—वर्तमान बरेली नगर से सोलह मील=25 किलोमीटर दक्षिण पश्चिम में रामनगर के पास प्राचीन अहिच्छत्रा नगर खंडहरों के रूप में भूमिसात् हुआ पड़ा है। इसके चारों ओर रामनगर, आलमपुर, कठौती, नसरतगंज, आनंदपुर और गाँवटिया ग्राम बसे हुये हैं। इसे आदिकोट के नाम से भी जाना जाता है। जैन मतावलंबियों के प्रसिद्ध तीर्थ के रूप में भी यह स्थान प्रसिद्ध है। (चित्र 1-4)।

(1) नाम का उल्लेख—प्राचीन उत्तर पंचाल की राजधानी का नाम अहिच्छत्रा था। शतपथ ब्राह्मण में इसका नाम परिचक्रा और परिवक्रा दिया है।

(2) कौशांबी के पास पभोसा नामक स्थान से प्राप्त गुहालेख में अहिच्छत्रा का नाम अधिच्छत्रा लिखा है। जैसे—
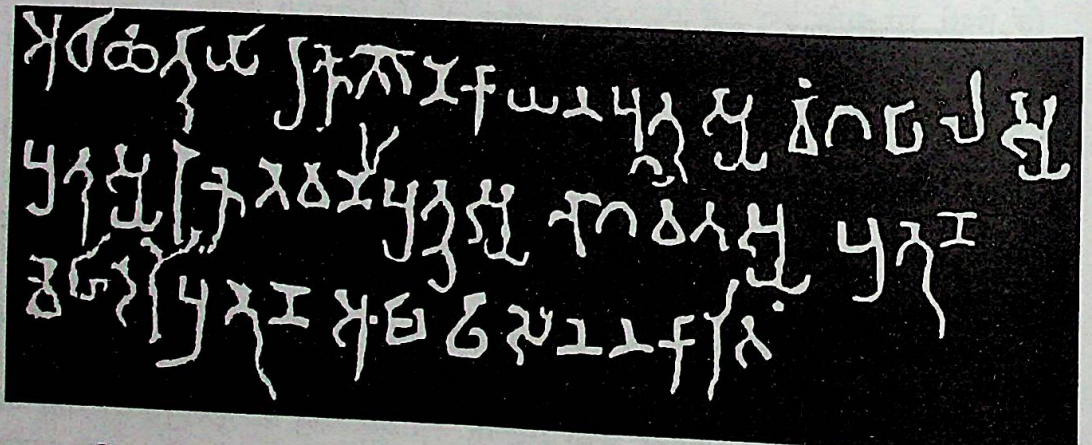
अधिच्छत्राया राज्ञो शोनकायनपुत्रस्य वंगपालस्य पुत्रस्य राज्ञः तेवणीपुत्रस्य भागवतस्य पुत्रेण वैहिदरीपुत्रेण आषाढसेनेन कारितं।

(3) अहिच्छत्रा के खंडहर से यक्ष की एक अभिलिखित प्रतिमा प्राप्त हुई थी, उस पर भी अहिच्छत्रा नाम खुदा हुआ है—

भिक्षुस्य धर्मघोषस्य फरगुल विहार अहिच्छत्राया।

(4) श्री अहिच्छत्राभुक्तौ कुमारामात्याधिकरणस्य।

भारत सरकार के पुरातत्व विभाग को अहिच्छत्रा की खुदाई में मिट्टी का बना गुप्तकालीन-लिपि में लिखा एक मुद्रांक (मोहर) मिला है, उस पर लिखा है—

(5) सम्राट् हर्षवर्द्धन के बाँसखेड़ा से प्राप्त ताम्रपत्र में भी अहिच्छत्रा नाम मिलता है—

सर्वसत्वानुकम्पी परमभट्टारकमहाराजाधिराजश्रीहर्षः
अहिच्छत्राभुक्तौ वंगदीयवैषयिकपश्चिमपथकसम्बद्धमर्कटसागरे....

(6) मुरादाबाद जनपद से प्राप्त श्री महाराज नागभटदेव के ताम्र पत्र में भी अहिच्छत्र का नाम आया है। वहां लिखा है—**श्रीसुन्दरीदेव्यामुत्पन्नः परमभगवतीभक्तो महाराजश्रीनागभटदेवः। अहिच्छत्रभुक्तौ गुणपुरमण्डलविषयसम्बद्धशम्भु-पल्लिकाग्रहारसमुपगतान्....।**

(7) महाभारत में एकचक्रा, अहिच्छत्रा तथा छत्रवती नाम लिखे है।[65]

(8) चीनी यात्री ह्वेंत्सांग ने अपने यात्रा विवरण में भी अहिच्छत्रा का नाम लिखा है। इसके अनुसार अहिच्छत्रा नगर लगभगं दो कोश के फैलाव में बसा था। इस नगर में बौद्धों के दस संघाराम थे। उनमें संमित्तीय संस्था के हीनयानी संप्रदाय के एक हजार भिक्षु निवास करते थे। नौ देव मंदिर थे, इन मंदिरों में पाशुपतमतावलंबी तीन सौ साधु रहते थे। ये लोग ईश्वर के लिये बलि प्रदान करते थे। अहिच्छत्रा के बाहर एक नाग झील भी ह्वेंत्सांग ने देखी थी। उसके किनारे मौर्य-सम्राट् अशोक द्वारा बनवाया हुआ एक स्तूप भी था। जनश्रुति है कि इसी स्थान पर महात्मा बुद्ध ने नागराज को सात दिन तक धर्म का उपदेश दिया था। इसी बड़े स्तूप के निकट चार छोटे स्तूप भी थे। इन स्तूपों के अवशेष अहिच्छत्रा की खुदाइयों में मिले हैं। स्तूपों के अतिरिक्त शिव-मंदिर के चिह्न भी मिले हैं। एक शैव मंदिर में चतुर्मुख शिवलिंग की एक अति सुंदर मृन्मूर्ति स्थापित की हुई थी। किसी युद्ध के समय इस मंदिर को तोड़ डाला गया और मूर्ति को कुयें में फेंक दिया गया। (चित्र 59-62 (क))।

(9) पद्म-पुराण के पातालखंड में राम के अश्वमेध का वर्णन है, उसमें अहिच्छत्रा की सुंदरता की चर्चा आई है।

इसी का भाषानुवाद रामाश्वमेध नाम से प्रकाशित हुआ है उसमें अहिच्छत्रा नगरी

65. अहिच्छत्रं च विषयं द्रोणः समभिपद्यत। आदि-पर्व 137.176 ॥
एवं राजन्नहिच्छत्रा पुरी जनपदायुता। आदि-पर्व 137.177 ॥
पार्षतो द्रुपदो नामच्छत्रवत्यां नरेश्वरः। आदि-पर्व 165.21 ॥
एकचक्रां गतास्ते तु कुन्तीपुत्रा महारथाः। आदिपर्व 156.1 ॥

का वर्णन इस प्रकार है।[66]

अहिच्छत्राक पुरी अति पावन, जन संकुल सुठि सुखद सुहावन।
चारि वर्ण निजधर्म विराजै, ललना लखि रति रम्भा लाजै।
मणिमय रुचिर प्रसाद सुहाए, ऋद्धि सिद्धि नव निधि छवि छाये।
करत भोग सब लोक सुखारी, यज्ञ धर्म व्रत सुख अधिकारी।
वीर धीर सामंत सुजाना, धनुर्वेद ज्ञाता बलवाना।
नीति रीति मति विद्यावंता, विप्र वेदमय गुणिगण संता।
तहाँ भूपवर सुमदभिधाना, करहि राज बलकोश निधाना।
तेहि पुर निकट रुचिर उद्याना, देवालय विरचि मणि नाना।
शोभा तासु वरणि नहीं जाई, तरु अनेक सुरतरु सम छाई।
कुसुमित फलित विविध तरु बेली, ललित लोल जपु काम सहेली।
ऋतु बसंत सोहत सब काला, जनुजन जुवगण करत निहाला।
राजहंस कोकिल खग पुंजहि, रवहि मधुर मधुकर गण गुंजहि।
मणि सोपान सोह नव सरसी, विकच चित्र पंकज मधु वरसी।
मणिमय बैठक कंचन भीती, सोहत मनहुँ काम जग जीती।
यह विधि नगरवाटिका सोहै, देखत सुर नर के मन मोहै।
निरखि द्वार ते पुर के शोभा, राम भ्रात सेनप मनलोभा।
देखत सुखद वाटिका आई, वाजिराज प्रविशे तहं धाई॥

इस कविता के अनुसार महाराज रामचन्द्र के समय में अहिच्छत्रा के शासक का नाम सुमत् था।

अहिच्छत्रा का नामकरण—अहिच्छत्रा नगरी का नामकरण किस कारण से हुआ, इसका अभी तक स्पष्ट प्रमाण नहीं मिल पाया है। पुनरपि जो-जो मत प्रचलित हैं, उनका विवरण दिया जाता है—

1. इस अहिच्छत्रा ध्वस्त नगर को वहाँ के निवासी आदि-कोट नाम से पुकारते हैं। इसके विषय में जनश्रुति है कि इसे राजा आदि ने बनवाया था। यह राजा अहीर बताया जाता है। एक दिन जब वह किले की भूमि पर सोया हुआ था, तो उसके ऊपर एक नाग ने फण से छाया कर दी। पांडवों के गुरु द्रोणाचार्य ने उसे इस प्रकार सोया हुआ देखकर भविष्यवाणी की कि एक दिन यह व्यक्ति इस प्रदेश का राजा बनेगा। सुनने में आता है कि यह भविष्यवाणी सत्य हुई, वह राजा बना तथा एक दुर्ग=कोट बनवाया उसका नाम आदिकोट रक्खा। बाद में यह नाम बदलता हुआ अहिच्छत्रा हो गया। किंतु महाभारत को पढ़ने से यह घटना कल्पित जान पड़ती है। महाभारत के अनुसार अहिच्छत्रा द्रोणाचार्य से पहले ही विद्यमान थी। द्रोणाचार्य के बाल्यकाल में द्रुपद का पिता पृषत अहिच्छत्रा पर शासन कर रहा था।

66. रेवाराम कृत रामाश्वमेधभाषा—अध्याय 10, पृष्ठ 99.

2. द्वितीय जनश्रुति यह है कि इस नगर का प्राचीन नाम संख्यावती था। यह कुरुजांगल देश की राजधानी थी। एक बार जैनतीर्थंकर पार्श्वनाथ इस नगर में ठहरे हुए थे, तब कमठ नामक एक दानव ने उनके ऊपर वर्षा की झड़ी लगा दी। उससे रक्षा करने के लिये नागराज और उसकी पत्नी ने छत्राकार होकर वर्षा से पार्श्वनाथ को बचाया। इसीलिये नाग (अहि) से छत्र बन जाने के कारण संख्यावती से अहिच्छत्रा हो गया। परंतु इस किंवदंती में भी कोई सार नहीं, क्योंकि पार्श्वनाथ तीर्थंकर से पूर्ववर्त्ती साहित्य में अहिच्छत्रा नाम का वर्णन आया है।

महाभारत में नागसाह्वय नाम लिखा है, इसे अहिच्छत्रा का पर्याय ही कहा जा सकता है। यह भी संभावना है कि जिस नगर के मंदिरों में स्थान-स्थान पर अहि= साँप के फण के आकार वाले छत्र बने हों, उस नगर का नाम अहिच्छत्रा हो सकता है। इस प्रकार के छत्र जैनतीर्थंकरों की मूर्तियों पर भी देखे जा सकते हैं।

अहिच्छत्रा के शासक—महाभारत युद्ध के पूर्व अहिच्छत्रा पर पृषत पुत्रद्रुपद का राज्य था। द्रुपद और द्रोण सहपाठी थे। बाल्यकाल में द्रुपद द्वारा दिये वचन की पूर्त्ति न करने के कारण अपमानित द्रोण ने गुरुदक्षिणा के रूप में कौरव पांडवों को द्रुपद को पकड़कर लाने का आदेश दिया। इसलिए पाण्डवों ने द्रुपद को पकड़कर द्रोण के सम्मुख उपस्थित कर दिया। द्रोण के सामने बाल्यकाल की स्मृतियाँ साकार होने लगीं तो दया करके द्रोण ने द्रुपद का आधा राज्य लेकर छोड़ दिया। इस प्रकार द्रोणाचार्य का अहिच्छत्रा पर अधिकार हो गया।

महाभारत युद्ध में प्रायः सभी राजा-महाराजा मारे गये। उनके राजवंश पांडुपुत्रों के अधिकार में आ गये। मौर्यकाल तक यहाँ सत्ताईस राजाओं ने राज्य किया। तदनंतर यह प्रदेश मौर्यों के अधीन हो गया। इस समय अहिच्छत्र-राज्य सभी दृष्टियों से प्रसिद्ध हो गया था। यहाँ मोतियों का व्यापार होता था। मौर्यों के पश्चात् अहिच्छत्र-राज्य पुनः स्वतंत्र और स्थानीय शासकों के स्वायत्त हो गया। इस स्थल से मिलने वाली मुद्राओं और मोहरों से इन शासकों की जानकारी मिलती है। इन राजाओं के नाम इस प्रकार हैं—दामभूति, वंगपाल, वृषभमित्र, यज्ञबल, यज्ञसेन, पुष्यसेन, युगसेन, वसुसेन, भद्रघोष, रुद्रघोष, अणुमित्र, अग्निमित्र, इंद्रमित्र, विजयमित्र, विष्णुमित्र, प्रजापतिमित्र, वसुमित्र, शिवमित्र, जयमित्र, भद्रमित्र, जयगुप्त, ध्रुवमित्र, रुद्रगुप्त, शिवनंदि, श्रीनंदि, अच्युत, महेश्वर, यज्ञमित्र, रेवतीमित्र, सूर्यमित्र, भूमिमित्र, भानुमित्र, फल्गुनीमित्र, पृथिवीमित्र, विश्वपाल, वरुणमित्र, नन्दिगुप्त।

इन पांचाल राजाओं की मुद्राओं से अतिरिक्त कार्षापण, सुमेरु पर्वत तथा हाथी के चित्र वाली ताम्र की मुद्रायें, अमोघभूति कुणिंद, कनिष्क, हुविष्क, वासुदेव आदि कुषाण मुद्रायें, समुद्रगुप्त, चंद्रगुप्त द्वितीय, कुमारगुप्त, हरिगुप्त आदि की स्वर्ण, रजत, ताम्र मुद्रायें, आदिवराह मिहिरभोज और विग्रहपाल की रजत मुद्रायें, इंडोशसेनियन और इंडोग्रीक ताम्र मुद्रायें भी अहिच्छत्रा से मिलती रहती हैं। इससे सिद्ध है कि उक्त राजाओं का भी शासन यहाँ रहा है। यौधेयों की बहुधान्यक और जय प्रकार

की तीन मुद्रायें मिली हैं।

मिट्टी और ताम्र की मोहरें, मृन्मूर्तियाँ, प्रस्तरमूर्तियाँ मणके तथा अन्य कलात्मक ऐतिहासिक सामग्री समय-समय पर अहिच्छत्रा से मिलती रहती है।

अहिच्छत्रा की खुदाइयाँ

अहिच्छत्रा के खंडहर से सैकड़ों वर्षों से पुरातत्वीय सामग्री लगातार मिल रही है। अधिकतर सामग्री विधिवत् संरक्षण न होने से इधर-उधर बिखरकर नष्ट हो गई। अंग्रेजी शासनकाल में भारतीय पुरातत्व सर्वेक्षण विभाग की स्थापना के अनंतर ऐतिहासिक पुरावशेषों का संरक्षण तथा अन्वेषण होने लगा। अंग्रेजी राज्य में भारत का विशेष महत्व का पुरातत्वीय सामान विदेशों में भी चला गया। नये पुरावशेषों के अन्वेषण हेतु प्राचीन खंडहरों के खुदाई कार्य की आवश्यकता अनुभव हुई। इसी उत्खनन योजना के अंतर्गत इसकी भी खुदाई हुई। सबसे प्रथम उत्खनन कार्य सन् 1833 ईसवी में हेडग्रान ने करवाया। उस समय एक स्तूप के चारों ओर खुदाई हुई थी। उसके क्या परिणाम रहे, इसकी विशेष जानकारी नहीं मिल सकी। सर कनिंघम का मत है कि यह अशोक द्वारा निर्मित वही स्तूप है, जिसका वर्णन चीनी यात्री ह्वेंत्सांग ने अपने यात्रा विवरण में किया है। इसे स्थानीय लोग "पिनसारी का चक्कर" नाम से पुकारते हैं। यह मुख्य दुर्ग से बाहर है।

द्वितीय उत्खनन सन् 1862-63 ईसवी में अलक्जेण्डर सर कनिंघम ने कराया था। इसमें दुर्ग के भीतरी भाग के तीन टीलों की खुदाई कराई गई जिनमें सबसे ऊँचा मंदिर दुर्ग के बाहर की समतल भूमि से 165 फीट ऊँचा था। इस मंदिर के ऊपर 8 फीट ऊँचा तथा साढ़े तीन फीट मोटा टूटा हुआ एक विशाल शिवलिंग रक्खा हुआ है। दूसरा मंदिर इसी बड़े मन्दिर से पश्चिम में 35 फीट ऊँचा बना है तथा तीसरा मन्दिर 30 फीट ऊँचा है। इन पर चढ़ने के लिये सीढ़ियाँ बनी हुई है। सबसे बड़े और ऊँचे मंदिर पर रखे पत्थर को स्थानीय लोग भीमगदा के नाम से जानते हैं। (चित्र 5)।

मुख्य दुर्ग के पश्चिमी द्वार से लगभग 1000 फीट दूर दुर्ग से बाहर तीस फीट ऊँचे एक टीले की खुदाई कराई गई। दुर्ग से बाहर उत्तर पूर्व दिशा में स्थित दो टीलों की खुदाई में शिव प्रतिमायें प्राप्त हुईं। अनुमान है कि ये दोनों शिव मंदिर रहे होंगे। सर कनिंघम का मत है कि इन मंदिरों और मूर्तियों को मुस्लिम आक्रांताओं ने ध्वस्त कर दिया था।

ग्राम नसरतगंज के पश्चिम में स्थित कटारी खेड़ा नामक टीले की खुदाई भी कराई गई। यहाँ बौद्ध मंदिर के अवशेषों के साथ महात्मा बुद्ध की मूर्ति भी मिली थी। इसके निकटस्थ टीले की खुदाई में अनेक नग्न जैन मूर्तियाँ प्राप्त हुई थीं। एक प्रस्तर-शिला पर गुप्तकालीन लिपि में खुदा लेख भी प्राप्त हुआ था। इस खुदाई से मिली विशेष पुरातत्वीय सामग्री ब्रिटिश म्यूजियम लंदन में सुरक्षित है। सर कनिंघम के पश्चात् 1888 ईसवी में रामनगर के एक जमींदार ने अहिच्छत्रा की कुछ खुदाई

कराई थी, इसमें प्रस्तर मूर्तियाँ और कलात्मक ईंटें मिली थीं, वे अब राजकीय संग्रहालय लखनऊ में रखी हैं।

तृतीय खुदाई सन् 1891-92 ईसवी में डॉ० फुहरर ने कराई। इस उत्खनन में शिव मंदिर मिले थे। इसी समय कटारीखेड़ा भी पूर्णतया खोदा गया। इस खुदाई से पता चला कि कुषाणकाल में यहाँ पार्श्वनाथ मंदिर का निर्माण हुआ था। यहाँ से जैनमतावलंबियों की अनेक नग्नमूर्तियाँ मिली थीं। साहब बुर्ज के निकटवर्ती टीले की खुदाई में बौद्ध मंदिर मिला था। (चित्र 6-8)।

अन्य खुदाइयाँ

सन् 1905 में भारत सरकार ने पुरातत्व विभाग की विधिवत् स्थापना की। उसके निर्देशन में 1940-1944 में अहिच्छत्रा में उत्खनन कार्य किया था। इसमें सोने, चांदी, तांबे की मुद्रायें, प्रस्तर और मिट्टी की मूर्तियाँ आदि विविध सामग्री प्राप्त हुई थी। स्वतंत्र भारत की सरकार ने भी सन् 1964-65 में सामान्य खुदाई करवाई थी। किंतु उसका विशेष परिणाम नहीं निकला। उस समय दुर्ग के पूर्वी भाग की चारदीवारी के दोनों ओर खुदाई कराकर देखी गई थी। यह चारदीवारी 16 फीट 8 इंच मोटी है। भवनों की दीवारें 50 फीट तक ऊँची मिली हैं।

इन खुदाइयों के अतिरिक्त भी अहिच्छत्रा से वर्षाकाल विशेषकर में तथा सामान्यतया वर्षभर कुछ न कुछ सामग्री मिलती ही रहती है। इसके दो प्रकार हैं— प्रथम तो जो चरवाहे गाय, भैंस, बकरियों को खंडहर पर चराते हैं, दिनभर खंडहर पर आंखें गड़ाये घूमते रहते हैं, इसी चेष्टा में उनको कुछ न कुछ मिलता रहता है, उसे वे सहेजकर घरों में रख लेते हैं। वर्षाकाल में जब पानी के साथ रेत बह जाता है तो ठोस वस्तु सिक्के, मूर्ति आदि वस्तुयें स्पष्ट दिखाई देने लगती हैं, उन्हीं दिनों सामान अधिक मिलता है। सामग्री के संग्राहक इतिहास पुरातत्वविद् तथा व्यापारी इन चरवाहों से सम्पर्क करके ऐसा सामान खरीदते रहते हैं।

दूसरा प्रकार यह है कि किसान लोग जब हल चलाते हैं तब भी कुछ सामान खेतों में से मिल जाता है। इन दोनों प्रकारों से प्राप्त बहुत सी सामग्री गुरुकुल झज्जर के पुरातत्व संग्रहालय में सुरक्षित की हुई है। कुछ सामग्री प्रयाग के व्यापारियों ने भी एकत्र की थी। लखनऊ, प्रयाग, दिल्ली और चंदौसी के संग्रहालयों में भी अहिच्छत्रा की पर्याप्त सामग्री रक्खी हुई है। जितनी सामग्री आज तक अहिच्छत्रा से मिल चुकी है, इससे सहस्रों गुणा अधिक सामग्री अभी भी इसके खंडहरों में दबी पड़ी है।

9. **रहटोइया**—अहिच्छत्रा से एक योजन (चार कोश=10 किलोमीटर) दक्षिण पूर्व दिशा में आंवला रेलवे स्टेशन के पास रहटोइया नामक ग्राम से लगता हुआ मौर्य-कालीन एक खंडहर है। इस स्थान से पांचाल शासकों की मुद्रायें भी मिलती हैं। दामभूति तथा वृषभमित्र पंचाल की मुद्रा यहीं से मिली है। पंचमार्क मुद्रायें तथा

तांबे की मुद्रायें जिन पर सुमेरु पर्वत और हस्ति चिह्न बना होता है, यहाँ मिलती हैं। मिट्टी के बाट सदृश छोटे बड़े उपकरण सहस्त्रों मिलते हैं। इस स्थान पर एक बौद्ध विहार भी था। उससे संबद्ध एक मिट्टी की मोहर भी मिली है। मालाओं के विभिन्न प्रकार के मणके भी प्राप्त हुये हैं। गुप्त शासकों की स्वर्ण मुद्रायें भी यहाँ से मिली थीं, वे कई वर्ष पूर्व आँवला के एक कपड़ा व्यापारी के पास देखने में आई थीं।

10. **गुमथल**—चंदौसी रेलवे स्टेशन से मुरादाबाद की ओर जाने वाली रेलवे लाइन पर पहला स्टेशन गुमथल आता है। यहाँ एक प्राचीन खंडहर है। इस स्थान से मौर्य, शुंग, कुषाण और गुप्त कालीन मृन्मूर्तियाँ तथा पांचालों की मुद्रायें मिलती हैं। गुमथल से निकली सामग्री चंदौसी के संग्रहालय में है।

11. **रेवती बहोड़ा खेड़ा**—अहिच्छत्रा से तीन कोश=7 किलोमीटर दक्षिण में तथा चंदौसी से बरेली रेलवे लाइन पर आंवला से पश्चिम में रेवती ग्राम स्थित है। यहाँ से सूअर की एक मृन्मूर्ति मिली थी। अग्निमित्र आदि पांचाल शासकों की मुद्रायें भी यहाँ मिली हैं।

12. **शाहबाद**—अहिच्छत्रा से 35 किलोमीटर उत्तर पश्चिम दिशा में शाहबाद स्थित है। इसके निकट खंडहर से ताम्रयुगीन शस्त्रास्त्र मिले थे। मानवाकृति सदृश विशेष अस्त्र भी यहाँ से प्राप्त हुआ था, यह आजकल राष्ट्रीय संग्रहालय दिल्ली में सुरक्षित है।

13. **बिसौली**—शाहबाद के निकट ही बिसौली से भी प्राचीन ताम्रयुगीन शस्त्रास्त्र प्राप्त हुए थे। इस स्थान पर विशेष खुदाई की आवश्यकता है।

14. **मदारपुर**—जनवरी 2000 ईसवी में मदारपुर (ठाकुरद्वारा, मुरादाबाद) से 31 लघु मानवाकृति आदि का विशाल भंडार मिला है। इस विशेष प्रकार की तथा इतनी सारी ताम्रयुगीन सामग्री एकसाथ अभी तक कहीं नहीं मिली है। (चित्र 211,212)

15. **काशीपुर**—मुरादाबाद से ठाकुरद्वारा जाते समय काशीपुर नामक स्थान आता है। यहाँ द्रोणाचार्य के नाम से एक द्रोणसागर प्रसिद्ध है। यहाँ का प्राचीन खण्डहर अति विशाल है। इस स्थान पर भारतीय पुरातत्त्व सर्वेक्षण विभाग ने सामान्य खुदाई कराई थी। यहाँ से पांचाल मुद्रायें मिलती हैं। इस खण्डहर की कुछ ईंटें तत्कालीन ईंटों की अपेक्षा बहुत बड़ी बनी हुई मिली हैं। इस खण्डहर का उत्खनन होना चाहिए।

16. **जसमापुर**—बदायूं से 35 किलोमीटर दक्षिण में उसावा के पास जसमापुर ग्राम है। वहाँ के प्राचीनखण्डहर से मौर्य, कुषाण, गुप्तकालीन और दशमी शती तक की सामग्री मिलती रहती है। (चित्र 226-232)

17. **जगतीरा**—चन्दौसी-आँवला रेलवे लाईन के पास जगतीरा (करेंगी) ग्राम में एक प्राचीन टीला है। वहाँ भी पांचाल शासकों की मुद्राएँ आदि मिलती है।

इसी प्रकार उत्तरी पंचाल क्षेत्र में अनेक स्थल ऐसे हैं जो पांचाल शासकों से संबद्ध हैं, परंतु उनका ऐतिहासिक सर्वेक्षण नहीं हो पाया है। केवल अहिच्छत्रा नगर की थोड़-सी खोज-बीन हुई है। शेष स्थल प्रायः अछूते ही पड़े हैं। लोग दीवारों से ईंटें निकालकर उन्हें नष्ट कर रहे हैं।

द्वितीय अध्याय समाप्त॥ २॥

तृतीय अध्याय

पंचाल जनपद का सांस्कृतिक इतिहास

पंचाल जनपद जहाँ राजनैतिक दृष्टि से अति महत्वपूर्ण था, वहीं सांस्कृतिक दृष्टि से भी अत्यन्त गौरवास्पद रहा है। इस प्रदेश के धर्म, दर्शन, साहित्य और कला कौशल अपने युग में उच्चकोटि तक पहुँचे हुये थे।

धर्म—प्राचीन साहित्य के अध्ययन से पता चलता है कि पंचाल प्रदेश में वैदिक धर्मानुयायी लोग निवास करते थे। शतपथ ब्राह्मण के अनुसार पंचाल (क्रिवि) प्रदेश के एक शासक ने परिचक्रा नगर में अश्वमेध यज्ञ किया था। परिचक्रा अहिच्छत्रा का ही पूर्ववर्ती नाम था। शोण सात्रासाह नामक राजा ने भी अश्वमेध यज्ञ का अनुष्ठान किया था, यह भी पंचाल प्रदेश का शासक था। पंचाल प्रदेश के शासकों ने राजसूय तथा नैमिषीय यज्ञ भी किये थे। पांचाल शासकों की राजसभाओं में ऋषि, मुनि, ब्रह्मचारी जाकर उपनिषद्=ब्रह्मज्ञान की चर्चा किया करते थे। तत्कालीन राजा लोग राजर्षित्व और ब्रह्मर्षित्व दोनों में ही योग्य थे। यज्ञ तथा ब्रह्मज्ञान की चर्चा वैदिक मत का ही अंग है। इसीलिए प्राचीन पांचाल शासकों का वैदिक मतानुयायी होना सिद्ध है। जब शासक लोग वैदिक धर्मानुयायी थे तो जनता भी प्रायशः उसी प्रकार की होनी आवश्यक है। इसीलिये इनका आचार विचार भी उत्तम था।

मौर्य काल में पंचाल में बौद्ध मत का प्रभाव हो गया था, इसीलिये इस प्रदेश के अहिच्छत्रा, कांपिल्य, संकिशा और रहटोइया आदि प्राचीन ऐतिहासिक खंडहरों से बौद्ध स्तूप और मूर्तियाँ उपलब्ध हुई हैं। जैन मंदिरों के अवशेष तथा जैन मूर्तियों की प्राप्ति से सिद्ध होता है कि बौद्ध मत के साथ-साथ जैन मत का भी प्रचार-प्रसार था। रामनगर (आंवला) के जैनमन्दिर में चार प्रस्तर जैन प्रतिमाएँ रक्खी हुई हैं। (चित्र 104-107)।

शुंगकाल में पुष्यमित्र ने अश्वमेध यज्ञ करके वैदिक धर्म की पुनः स्थापना की। अयोध्या के शिलालेख से यह स्पष्ट सिद्ध है। (पृष्ठ 37 की टिप्पणी) उसमें लिखा है—**कोसलाधिपेन द्विरश्वमेधयाजिनः सेनापतेः पुष्यमित्रस्य षष्ठेन कौशिकीपुत्रेण धन......धर्मराज्ञा पितुः फल्गुदेवस्य केतनं कारितं**। वैदिकधर्मी शासक ही अश्वमेधयज्ञ किया करता था। इसलिए शुंगकाल में भी पांचाल क्षेत्र में वैदिक मत था।

अहिच्छत्रा आदि से जिन पांचाल शासकों की मुद्रायें मिलती हैं, उनके पृष्ठभाग पर यज्ञवेदी, मन्दिर, अग्निदेव आदि के चित्र बने मिलते हैं, इनसे अनुमान होता है कि ये सभी पांचाल शासक वैदिक धर्म के मानने वाले थे।

गुप्तकाल में यहाँ शैव, वैष्णव और जैन मतानुयायियों की विद्यमानता का पता लगता है। क्योंकि उत्खनन में शैव मंदिर, शिव, विष्णु तथा जैन तीर्थंकरों की प्रतिमायें मिली हैं। इनसे अतिरिक्त गणेश, सूर्य, गंगा और यमुना की मृन्मूर्तियाँ भी

प्राप्त हुई हैं। सम्भवतः इनको देवरूप में मानने वाले कुछ लोग अवश्य रहे होंगे, इसीलिये इनकी मूर्तियाँ मिली हैं। महाराजा हर्ष के समय में वैदिक धर्म तथा बौद्ध धर्म दोनों ही प्रभावी रहे।

वैदिक धर्म के शासकों की बहुलता के कारण जनता में धर्म की भावना घर कर गई थी। अहिच्छत्रा से प्राप्त अकीक से बने एक मुद्रांक (अंगूठी के नग) पर "**धर्मो रक्षति रक्षित**" लिखा मिला है। (चित्र 175) इसका अभिप्राय है—रक्षित किया हुआ धर्म रक्षा करनेवाले की रक्षा करता है। यह मनुस्मृति के श्लोक (8.15) का द्वितीय चरण है।

दर्शन—पंचाल प्रदेश ब्रह्मविद्या एवं दार्शनिक चिंतन का प्रमुख केन्द्र रहा है। ब्राह्मण ग्रंथ और उपनिषद् इसके प्रत्यक्ष प्रमाण हैं। यहाँ के राजा प्रवाहण जैबलि को उपनिषदों में ब्रह्मविद्या का ज्ञाता कहा गया है। इसकी राज-सभा में ब्रह्मज्ञान की चर्चायें होती रहती थीं। इन चर्चाओं में भाग लेने के लिये ऋषि-महर्षि लोग समय-समय पर आते रहते थे। छांदोग्य उपनिषद् में लिखा है कि पांचाल-राजा प्रवाहण जैबलि की राजसभा में महर्षि उद्दालक का पुत्र श्वेतकेतु अपने ज्ञान का प्रदर्शन करने के लिये गया। राजा ने आरुणि के पौत्र श्वेतकेतु से आत्मा और परलोक संबंधी प्रश्न किये। श्वेतकेतु उत्तर नहीं दे पाया। वह स्वयं को अपमानित मानकर अपने पिता के पास लौट आया, वही प्रश्न अपने पिता ऋषि उद्दालक से श्वेतकेतु ने पूछे, पिता भी नहीं बता सके तो वे दोनों निरभिमान होकर ब्राह्मण होते हुये भी राजा की सभा में गये और प्रश्नों का यथावत् उत्तर पाकर सन्तुष्ट हुये। प्रवाहण जैबलि के अतिरिक्त शिलक शालावत्य, चैकितायन दाल्भ्य, बाभ्रव्य, गालव, चण्ड और द्रोण जैसे ब्रह्मविद्याविद् और क्षत्रविद्यावित् विद्वान् भी पंचाल प्रदेश में ही हुये हैं। शिलक शालावत्य और चैकितायन दाल्भ्य उदगीथोपासना में पारंगत थे। प्रवाहण जैबलि से इनका संवाद हुआ था। इनके समकालीन विदेहराज जनक भी ब्रह्मविद्या के विशेष ज्ञाता थे। पंचाल प्रदेश में ब्राह्मणों की अपेक्षा क्षत्रियों में ब्रह्मविद्या का प्रचार-प्रसार अधिक था। वे इस विद्या के अधिकृत विद्वान् थे। इस प्रकार पंचाल प्रदेश में ब्रह्मविद्या तथा दर्शन संबंधी गूढ तत्वों की विवेचना किये जाने से सिद्ध है कि पांचालवासी उस समय वैदिक धर्मानुयायी थे, इसी कारण उनका राज्य सुख, समृद्धि एवं शांति से युक्त था। क्योंकि ऐसे गूढ रहस्यों का उद्घाटन स्थिर और शांत मनोवृत्ति से ही हो सकता है। युद्धोन्माद में ऐसे विषय नहीं सूझते।

साहित्य—पंचाल प्रदेश में साहित्य की रचना अपनी चरमसीमा पर पहुँच गयी थी। गोपथ, शतपथ, ऐतरेय, मैत्रायणी संहिता, काठक-संहिता, शांखायन आरण्यक, छांदोग्योपनिषद्, बृहदारण्यकोपनिषद्, जैमिनीय ब्राह्मण आदि ग्रंथों में पंचाल प्रदेश और उनके शासकों की बहुधा चर्चा मिलती है। इससे प्रतीत होता है कि पंचाल प्रदेश में ही इन महान् ग्रंथों की रचना हुई है। क्योंकि ग्रंथकार अपने समय और निकट स्थान की चर्चा प्रायशः अपने ग्रंथ में किया करता है। इससे अनुमान होता है कि पंचाल प्रदेश के शासकों की छत्रच्छाया में रहकर ही ब्रह्मज्ञान के अमूल्य

ग्रंथ-रत्न इसी प्रदेश में निर्मित हुये हैं। इसी विद्या के कारण भारत महान् और जगद्गुरु कहलाता था। उपर्युक्त सभी ग्रंथ महाभारत युद्ध से पूर्व ही पंचाल प्रदेश में रचे जा चुके थे।

वात्स्यायन के कामसूत्र से ज्ञात होता है कि बाभ्रव्य पंचाल ने एक बृहत् कामशास्त्र की रचना की थी। इसमें 7 अधिकरण और 150 अध्याय थे। यह ग्रंथ साधारण जनता के लिये समझने में कठिन था। इसलिए वात्स्यायन ने बाभ्रव्य के ग्रन्थ के आधार पर अपना नया ग्रन्थ बनाया और उसे सरल बनाने का प्रयत्न किया, जिसे साधारण लोग भी समझ सकें। ऋक्-प्रातिशाख्य में भी बाभ्रव्य चंड पांचाल की चर्चा है। सम्भवतः यही बाभ्रव्य तीनों स्थानों पर उद्धृत किया गया है। इससे ज्ञात होता है कि बाभ्रव्य ने कामशास्त्र, आरण्यक ग्रंथ तथा प्रतिशाख्य पर भी कोई रचना की थी। वेद के आठ प्रकार के पाठ होते हैं। जैसे—संहिता, जटा, माला, घन, क्रम आदि। महाभारत के अनुसार पंचाल के एक विद्वान् बाभ्रव्य-गोत्रीय गालव ने वेद का क्रमपाठ तथा वर्णोच्चारण शिक्षा भी बनाई थी।[67] इसकी वर्णोच्चारणशिक्षा अभी प्राप्त हुई है। पाणिनिमुनि ने एक वैयाकरण गालव की चर्चा अष्टाध्यायी (8.4.99) में की है। यह संकेत इसी बाभ्रव्य गालव की ओर लगता है। ऐसे ही कारणों से पांचाल भूमि को भाषा की जननी कहा गया है।

बौद्ध ग्रंथ महाउम्मग्ग जातक ग्रंथ से ज्ञात होता है कि पंचाल के राजा ब्रह्मदत्त ने अपनी अद्वितीय सुंदरी पुत्री पांचाल चंडी के सौंदर्य का काव्यमय वर्णन करने के लिये राज्य के योग्यतम विद्वान् और कवियों को निमंत्रित किया था। उन्होंने राजकुमारी के विषय में ललित और मधुर भाषायुक्त काव्यों की रचनायें कीं। इन रचनाओं को मिथिला के राजा ने सुना और वह राजकुमारी पांचाल चंडी के अनुपम सौन्दर्य के प्रति आकृष्ट हो गया।

प्रतिहार-वंशी राजा भोज की राज-सभा में विद्यमान राजकवि राजशेखर ने पांचाल कवियों के लिए लिखा है कि उनकी रचनायें ललित, मधुर और कर्णप्रिय हैं तथा ग्रामीणता से अछूती रहती हैं। वे उच्चस्तर के शास्त्रीय एवं लौकिक अर्थों को अद्भुत उक्तियों के माध्यम से वर्णित करते हैं। महाकवि राजशेखर लिखते हैं कि पंचाल देश के कवियों की काव्यपाठ प्रणाली सर्वोत्कृष्ट है। इनका पाठ सुनने से कानों में मधुर-रस घुलता-सा प्रतीत होता है। उनका काव्यपाठ काव्यरीति के अनुसार होता है। राजशेखर कृत काव्यमीमांसा के अनुसार पंचाल क्षेत्र मध्यदेश की शैली में गिना गया है। उनकी नेपथ्य विधि स्त्री-पुरुषों को अति आनन्दायिनी होती है[68]। यास्कमुनि ने भी काव्यालंकार में पांचाल प्रदेश की रीति को तीन रीतियों में

67. वैदिक वाङ्मय का इतिहास भाग-1 : पं० भगवद्दत्त
68. काव्यमीमांसा, अध्याय 3: राजशेखर कवि।
ततश्च स पञ्चालान् प्रत्युच्चचाल यत्र पञ्चाल-शूरसेन-हस्तिनापुर-काश्मीर-वाहीक-बाह्लीक-बाह्लवेयादयो जनपदा....सा पाञ्चाला मध्यमा प्रवृत्तिः।
पाञ्चाल-नेपथ्य-विधिर्नराणां स्त्रीणां पुनर्नन्दतु दक्षिणात्यः।
यज्जल्पितं यच्चरितादिकं तदन्योऽन्यसम्भिन्नमवन्तिदेशे।

स्थान दिया है।[69]

सा त्रिधा वैदर्भी गौडीया पांचाली चेति।

महाकवि राजशेखर ने भी काव्यमीमांसा में पांचाली रीति का वर्णन किया है—

शब्दार्थयोः समो गुम्फः पांचाली रीतिरुच्यते।

जिस काव्य में शब्द और अर्थ का एक स्थान में गुम्फन किया गया हो, वह. पांचाली रीति कही जाती है।

उपर्युक्त कथन से सिद्ध है कि पंचाल प्रदेश कभी सांस्कृति संपदा से भरा पूरा था। वही संपदा आज भी भारत का भाल ऊँचा किये हुये हैं, इसी कारण भारत ब्रह्मविद्या में विश्व का गुरु कहलाया।

संस्कृत साहित्य में चौंसठ कलाएँ प्रसिद्ध हैं। वात्स्यायन मुनि ने इनका वर्णन करते हुए लिखा है—**पाञ्चालिका च चतुःषष्टिकला।** चौंसठीवीं कला पांचालिकी कहलाती है। अनेक जनपदों में प्रचलित कुप्रथाओं का वर्णन करते हुए यहाँ के निवासियों के आचार और चरित्र के विषय में कामसूत्रकार आचार्य वात्स्यायन ने लिखा है—**वेश्याभिरेव न संसृज्यन्ते आहिच्छत्रिकाः** (2.9.5)। अर्थात् अहिच्छत्रिका के लोग वेश्याओं का संसर्ग नहीं करते। इस विषय में जहाँ मानव अत्यन्त लोलुप होता है उसी विषय में अहिच्छत्रावासियों का चरित्र अत्युच्च और उज्ज्वल था। इसी प्रकार की घोषणा एक वार केकयाधिपति अश्वपति ने भी की थी—**न स्वैरी स्वैरिणी कुतः।** मेरे राज्य में कोई दुराचारी पुरुष नहीं है पुनः स्त्रियाँ दुराचारिणी कैसे हो सकती हैं।

अहिच्छत्रा जैन धर्म का भी एक बड़ा केंद्र रहा है। विविध तीर्थकल्प नामक जैन ग्रन्थ में अहिच्छत्रा के संबंध में लिखा है कि कुरुजांगल देश में यह नगर बड़ा समृद्ध था। जब भगवान् पार्श्वनाथ इस नगर में निवास कर रहे थे तब धरणीन्द्र नामक नागराज ने कमठ दैत्य के उपद्रवों से उनकी रक्षा की। उस स्थान पर पार्श्वनाथ के मन्दिरों का निर्माण किया गया। उक्त जैन ग्रन्थ में यह भी लिखा है कि इस मन्दिर के पूर्व में ठण्डे और स्वच्छ जल के सात कुण्ड थे, जिनमें अनेक कछुए रहते थे। इस मन्दिर से थोड़ी दूर सिद्ध क्षेत्र में नागराज धरणीन्द्र और उसकी पत्नी पद्मावती द्वारा सेवित पार्श्व की प्रतिमा और मन्दिर था। यहाँ सिंहारूढ़ा अम्बादेवी तथा नेमिनाथ की भी प्रतिमाएँ थीं।

दूसरे पार्श्व मन्दिर के उत्तर में अत्यन्त निर्मल जल वाला एक सरोवर था, जिसमें स्नान करने से कुष्ठ रोग दूर होता था। उसके समीप धन्वन्तरि कूप, ब्रह्मकुण्ड आदि अनेक जलाशय थे जिनके जल का सेवन करने से लोग नीरोग और सुन्दर होते थे। विविध तीर्थ कल्प से ज्ञात होता है कि अहिच्छत्रा में जयन्ती, नागदमनी, सहदेवी, अपराजिता आदि अनेक देवियों और यक्षिणियों की भी मूर्तियाँ थीं। हिन्दू देवी-देवताओं में अम्बिका के अतिरिक्त हरिहर, हिरण्यगर्भ, चण्डिका आदि के मन्दिर तथा

69. काव्यालंकार, अध्याय 3, सूत्र 9: यास्कमुनि।

तीर्थस्थल थे। इस नगरी को महातपस्वी कृष्ण ऋषि की जन्मभूमि लिखा है। जैसे—
तहा एसा नयरी महातवस्सिस्स सुगिहीयनाम धेअस्स कण्ह रिसिणो जन्मभूमित्ति।

विविध तीर्थंकल्प के उपर्युक्त विवरण की कुछ बातें अतिरंजित कही जा सकती हैं, परन्तु इसमें संशय नहीं कि प्राचीन काल में अहिच्छत्रा एक बड़े जैन तीर्थस्थान के रूप में विख्यात था।

'विविध तीर्थकल्प' से विदित होता है कि इस नगर में एक पवित्र ब्रह्म कुण्ड था। इस कुण्ड के तट पर उगी हुई मण्डूक ब्राह्मी के पत्तों का चूर्ण विशेष वर्ण वाली गाय के दुग्ध के साथ सेवन करने से प्रज्ञा मेधा सम्पन्न नीरोग व किन्नर के सदृश्य स्वर होता था। यहाँ के उपवन से प्राप्त वृक्षों से विविध औषधियों का निर्माण किया जाता था। इस क्षेत्र में प्राप्त होने वाली कुछ औषधियों के नाम इस प्रकार हैं—जैसे जयन्ती, नागदमणी, सहदेवी, अपराजिता, लक्ष्मण, त्रिवणी, नुकली, सकुली, सपीक्षी, स्वर्णशिला, मोहनी आदि।

वात्सयायन रचित कामसूत्र से ज्ञात होता है कि अहिच्छत्रा में विविध कलाओं व काम विज्ञान का विकास हुआ था। सातवीं शती में आये चीनी यात्री ने यहाँ के लोगों की ईमानदारी की प्रशंसा की है। अहिच्छत्रा वासी ब्राह्मण व्यवस्था और दर्शन के अध्ययन में विशेष रुचि लेते थे। जैन, पुराण एवं कथा ग्रन्थों में अहिच्छत्रा (पांचाल) आदि के अत्यधिक उल्लेख उपलब्ध हैं। छठी-सातवीं शती में ब्राह्मण विद्वान् पात्रकेसरी को सम्यक् दृष्टि का ज्ञान हुआ। उन्होंने इससे प्रेरित होकर 'पात्रकेसरी-स्तोत्र' की रचना की थी। ग्यारहवीं शती में इसी सगर में जैन महाकवि वाग्भट ने 'नेमिनिर्वाण-काव्य' की रचना की। 14वीं शती में आचार्य जिन प्रभुसूरी ने अहिच्छत्रा की यात्रा की थी। इस यात्रा का विवरण 'विविध तीर्थकल्प' के अन्तर्गत 'अहिच्छताकल्प' में किया गया है। 1948 ई० में कवि आसाराम ने अहिच्छत्रा-पार्श्वनाथ-स्तोत्र का निर्माण किया। अहिच्छत्रा महातपस्वी कृष्ण ऋषि की जन्मभूमि के रूप में विख्यात है। ये कृष्ण ऋषि श्वेताम्बर सम्प्रदाय के थे। राजशेखर ने अनेक कवियों का उल्लेख किया है, जिनकी रचनायें कर्णप्रिय हुआ करती थीं। इन्होंने अहिच्छत्रा निवासियों के नाट्य कला में प्रवीण होने का भी उल्लेख किया है।

प्राचीन वेश-भूषा, धार्मिक मान्यताओं, आमोद-प्रमोद एवं लोक जीवन का सजीव चित्रण अहिच्छत्रा से प्राप्त बहुसंख्यक कलाकृतियों में उपलब्ध होता है।

उपर्युक्त उल्लेखों से स्पष्ट होता है कि पांचाल क्षेत्र प्राचीन काल में उत्तर भारत का वैभवशाली प्रदेश था। यहाँ पर वैदिक, जैन और बौद्ध धर्मो का साथ-साथ विकास हुआ।

तृतीय अध्याय समाप्त॥ ३ ॥

□◆□

चतुर्थ अध्याय

पंचाल की मूर्तिकला एवं वास्तुकला

वात्स्यायनमुनि ने कामशास्त्र में 64 कलाओं की चर्चा की है। इन कलाओं में 37वीं कला तक्षण-कला है अर्थात् पत्थर को छेणी-हथौड़ी से छील-छीलकर मूर्ति तथा अन्य कलात्मक दृश्य उकेरना।

शतपथ ब्राह्मण (3.2.1.5) में लिखा है—

यद् वै प्रतिरूपं तच्छिल्पम्।

जो प्रतिकृति वास्तविक-वस्तु के सर्वाधिक प्रतिरूप=सदृश, योग्य, अच्छी और उचित हो, उसे शिल्प कहते हैं। यही शिल्प मूर्ति-निर्माण आदि में सर्वाधिक साधकतम है। इसीलिये मूर्तिकला में शिल्प ने अपना शिल्पत्व=ठीक-ठीक सादृश्य प्रकट करना, प्रदर्शित किया है। ऐतरेय ब्राह्मण में भी शिल्प की प्रशंसा की गई है[70]।

शिल्पकला के अनुसार मूर्ति निर्माण का कार्य आदि सृष्टि से ही चला आया है। क्योंकि कला मनुष्य की स्वाभाविक रुचि है। यह रुचि समय, स्थान आदि विशेष कारणों से उत्पन्न परिस्थितिवश इधर-उधर मोड़ खाती रहती है, किंतु नष्ट नहीं होती। इसी परिवर्तनशीलता के कारण विभिन्न समयों में कला के विभिन्न नाम बदलते रहे हैं। जबकि कला का ध्येय सदा एक ही रहा है और वह है श्रेष्ठतम प्रदर्शन के द्वारा आत्मसंतुष्टि। इसी आत्मसंतुष्टि के कारण आज हमें पुराशिल्पशास्त्रियों द्वारा उकेरी गई वस्तुयें मिलती रहती हैं, उन्हें ही हम राष्ट्र की अमूल्य-निधि के रूप में देखते हैं। स्थान और कालक्रमानुसार कला की बनावट में जो परिवर्तन हुआ, उसे भी हमने अपनी सुविधानुसार स्थान भेद से हड़प्पाकला, मथुराकला, गान्धारकला, भरहुतकला, सांचीकला, संघोलकला तथा काल और वंश भेद से मौर्यकला, शुंगकला, यौधेयकला, कुषाणकला, गुप्तकला, प्रतिहारकला, चंदेलकला, मुस्लिमकला आदि नामों से विभक्त कर दिया है।

पंचाल प्रदेश से जो कलात्मक प्रतिकृतियाँ उपलब्ध होती हैं, उन्हें हम मौर्य, शुंग, कुषाण और गुप्तकला के नाम से व्यवहृत कर सकते हैं। वैसे क्षेत्र की दृष्टि से इसे "पांचाल-कला" नाम भी दिया जा सकता है।

इन कलाकृतियों में स्त्री, पुरुष, वानर, हाथी, घोड़ा, बैल, सिंह, सुअर, मृग, भेड़, मोर, चिड़िया, मुर्गा, साँप, मेंढ़क, मछली, कच्छप आदि प्रमुख हैं। ताम्बा,

70. शिल्पानि शंसन्ति दैव-शिल्पम्। एतेषां वै शिल्पानामनुकृतिः शिल्पमधिगम्यते।

—ऐतरेयब्राह्मण 6.5.1॥

पत्थर, मिट्टी और रत्नोपरत्नों तक की मूर्तियाँ मिलती हैं। पूजापात्र, कलात्मक सुराही, कपड़े छापने के ठप्पे, खेल उपकरण, विविध प्रकार एवं तौल के तुलामान और रंग-बिरंगे मणके आदि सब वस्तुयें कला के अन्तर्गत समा जाती हैं।

मौर्यकाल से पूर्व की कला—

अभी तक के अन्वेषण से मौर्यकाल से पूर्व की कलात्मक कृतियाँ यद्यपि उतनी नहीं मिल पाई हैं जितनी मौर्यों के पश्चात् की मिलती हैं।

मुरादाबाद, मदारपुर (ठाकुरद्वारा) चंदौसी के निकट बिसौली और शाहबाद से ताम्रयुगीन ढेर सारी मानवाकृतियां, भाले आदि शस्त्रास्त्र मिले हैं। ये निश्चय ही प्राग्मौर्य-कालीन हैं। इनकी उपलब्धि के स्थान विशेष से अन्य मिट्टी, प्रस्तर आदि से बनी सामग्री के अन्वेषण में विशेष यत्न नहीं किया गया। इसीलिये बर्त्तन के टुकड़ों के अतिरिक्त ताम्रयुगीन अन्य कलात्मक वस्तुओं का प्रायः अभाव ही है। इस पंचाल क्षेत्र के कुछ ताम्रयुगीन शस्त्रास्त्रों के चित्र आगे दिये गये हैं। (चित्र 204-212)

मौर्यकालीन कला—

मौर्यकालीन कला में चमकदार काली पालिश के बर्तन, पकी हुई मिट्टी की काले रंग की मातृकायें मिलती हैं। आँख, कान, कुण्डल आदि का निर्माण चिकनी मिट्टी की पतली-पतली रस्सी-सदृश बत्तियाँ चिपकाकर, मोटे तिनके आदि से छेद करके, रेखा लगाकर अथवा मिट्टी के पके हुए उपकरणों से गीली मिट्टी में दबाव डालकर आँख आदि अंगों को उकेरा जाता है। इन मृन्मूर्तियों में अंग सौष्ठव आकर्षक नहीं होता। (चित्र 9-24 क)

शुंगकालीन कला—

शुंगकाल में मृन्मूर्तिकला ने चरमोत्कर्ष प्राप्त कर लिया था। इस काल की यक्ष-यक्षिणी मूर्तियाँ विभिन्न केश विन्यास, शिर के आभूषण, सुंदर और बड़े-बड़े कर्ण-कुंडल, गले में अनेक लड़ियों की मालायें, भुजबन्ध, कोहनी तक चूड़ियों से भरे हुये हाथ, मेखला स्थान पर रत्नाभूषणों से युक्त करधनी, पारदर्शी अधोवस्त्र, पैरों में मोटे कड़े तथा हाथों में पुष्पगुच्छ और शस्त्रास्त्रों से युक्त उत्कीर्ण की गई हैं।

नारी मृन्मूर्तियाँ शारीरिक सौष्ठव की दृष्टि से भी अत्यंत श्रेष्ठ हैं। नारी मूर्तियों में लहरियों से युक्त पारदर्शक साड़ी वा अधोवस्त्र, रत्नजड़ित कुचपट्टिका, रत्नहार, सघन लम्बी केशराशि, घटस्तनभारावनत वक्षःस्थल, मुष्टिग्राह्यकटिप्रदेश तथा मांसल नितम्बों से युक्त अंकन किया हुआ है। कला का इतना सजीव चित्रण प्रायशः जीवित शरीरों में भी नहीं मिलता। पंचाल प्रदेश में अहिच्छत्रा, कांपिल्य, सांकाश्य, अतरंजीखेड़ा, रहटोइया, आदि अनेक स्थानों से इस प्रकार की कलायुक्त मृन्मूर्तियाँ मिली हैं। पंचाल प्रदेश से बाहर भी झूंसी, कौशाम्बी, स्रुघ्न यमुनानगर, खोकराकोट (रोहतक), अगरोहा (हिसार) और चंद्रकेतुगढ़ (बंगाल) आदि स्थानों से ऐसी कलाकृतियाँ प्राप्त हुई हैं। (चित्र 25-37 क)

कुषाणकालीन कला—

कुषाणकालीन मृन्मूर्तियाँ भी पंचाल प्रदेश से बहुत मिलती हैं। ये शरीर सौष्ठव और अलंकरणों की दृष्टि से उत्तम कलाकृतियाँ नहीं कही जा सकतीं। ये लम्बे-चौड़े शरीर वाली, मोटे हाथ पैर और होठों वाली तथा अल्प आभूषणों से युक्त मिलती हैं। (चित्र 38-48 ख)

इस काल की सुराहियों की पानी निकालने वाली टोंटी पर बहुधा नारी आकृति, गौ, सिंह अथवा मकर बने हुये होते हैं। कुषाणकालीन मृन्मूर्तियों में गर्दन का भाग नीचे से नोकदार करके पृथक् बनाते थे तथा धड़ अलग से बनाया जाता था। धड़ बनाने के पश्चात् गर्दन के नोकदार भाग को धड़ के अंदर घुसेड़कर चारों ओर से मिट्टी लगाकर जोड़ बंद कर दिया जाता था। पशुओं की मृन्मूर्तियाँ भी इसी प्रकार स्थूलकाय वाली होती थीं।

अहिच्छत्रा से प्रस्तर की एक विशालमूर्त्ति मिली है। यह किसी विदेशी शासक की प्रतीत होती है। सिर के पीछे प्रभामण्डल बना हुआ है। इसके दायें हाथ में भाला है। शिरस्त्राण का यह रूप और दाढी रखने और काटने का ऐसा ढंग भारतीय कला में अभी तक देखने में नहीं आया। मूंछों का नुकीला प्रकार भी किसी गरिमायुक्त राजपुरुष का दिखाई देता है। आजकल लोग दाढी बनवाते समय जिसे 'खत' करना कहते हैं उसी प्रकार की दाढी इस मूर्ति में बनी हुई है। कला की दृष्टि से अति सुन्दर और प्रभावपूर्ण है। यह 27 ईंच ऊँची है। इसका वक्ष:स्थल से नीचे का भाग किसी दूसरे व्यक्ति के पास था, क्योंकि खण्डहर में खुदाई करते समय यह प्रतिमा भग्न हो गई थी, अत: दो व्यक्तियों ने आधी-आधी प्रतिमा बाँट ली। नीचे का भाग गंवादित्य (ग्राम्यदेवस्थान) से किसी ने उठाकर इधर-उधर कर दिया, जो अब अनुपलब्ध है। सुना है उस पर पैरों के पास लेख भी था। यह मूर्त्ति लाल बलुए और सफेद चिकत्तीदार पत्थर से बनी है। (चित्र 49)।

गुप्तकालीन कला—

गुप्तकाल में पंचाल प्रदेश में कला की दृष्टि से अभूतपूर्व उन्नति हुई। गुप्तकालीन मृन्मूर्तियाँ इसका प्रत्यक्ष उदाहरण हैं। अहिच्छत्रा की खुदाई में एक शिव मंदिर के मुख्य द्वार पर गंगा और यमुना की मूर्तियाँ मिली थीं। गंगा बांये हाथ पर कलश उठाये हुये, मकर पर खड़ी प्रदर्शित है। मूर्ति के पीछे छत्रधारिणी सेविका खड़ी दिखाई गई है यमुना-मूर्ति में यमुना दायें हाथ पर कंधे के पास कलश लिये हुये कच्छप पर आरूढ है। इसके पृष्ठ भाग में भी छत्रधारिणी सेविका खड़ी है। इसमें कच्छप के मुख के पास एक बालक अथवा पुरुष का चित्रांकन किया हुआ है। कला की दृष्टि से ये मूर्तियाँ अति सुंदर और एकमेव हैं। इन पर चमकदार पालिश की हुई है। (चित्र 50, 51)।

भारतीय पुरातत्व सर्वेक्षण विभाग को अहिच्छत्रा की खुदाई से अनेक महत्वपूर्ण

मूर्तियाँ मिली थीं, एक मृन्मूर्ति के दृश्य में युधिष्ठिर और जयद्रथ घोड़ों से जुते रथों पर आरूढ़ होकर धनुष बाणों से युद्ध करते हुये चित्रित हैं। दोनों के ध्वज भी बने हैं। एक पर शूकर तथा दूसरे पर अर्धचंद्र है। दोनों योद्धाओं के कंधों पर तूणीर बंधे हुये हैं। सिर पर बालों का जूड़ा बना हुआ है और रक्षात्मक कवच भी धारण किये हुये हैं। (चित्र 52)

एक फलक पर चतुर्भुज जटाधारी शिव का दृश्य अंकित है। साथ ही रक्षक पुरुष और एक स्त्री को भी चित्रित किया गया है। यह मृन्मूर्ति त्रुटित है। (चित्र 53)

अहिच्छत्रा से त्रिनेत्रधारी शिव की एक मूर्ति मिली थी। यह अब राष्ट्रीय संग्रहालय दिल्ली में प्रदर्शित की हुई है (चित्र 54)। इसी प्रकार का एक दो इंच का अत्यंत मोहक सिर आनंदपुर ग्राम के एक बालक के पास देखा था। उस बालक से वह सिर जौनपुर के श्रीरामरूप गुप्त ने अपने संग्रह के लिए ले लिया था।

अश्व के शरीर और मानव मुख से युक्त एक यक्ष मूर्ति से चित्रित चतुष्कोण फलक भी मिला है। यक्ष के पीछे यक्षिणी भी दिखाई गई है। यह मूर्तिकला का श्रेष्ठ उदाहरण है। ये सभी मृन्मूर्तियाँ राष्ट्रीय संग्रहालय नई दिल्ली में हैं।

महाभारत में लिखा है कि शकुंतला का पुत्र भरत जब छह वर्ष का था तभी वह सिंह, व्याघ्र, वराह (जंगली सूअर), भैंसे और हाथियों को पकड़कर महर्षि कण्व के आश्रम के समीपस्थ वृक्षों से बाँध दिया करता था[71]। इसीलिए उसका नाम सर्वदमन प्रसिद्ध हो गया था। गुरुकुल झज्जर के पुरातत्त्व संग्रहालय को अहिच्छत्रा से इसी दृश्य से युक्त एक मृन्मूर्ति मिली है। उस पर बालक भरत एक जंगली सूअर को पूँछ से पकड़कर खेंचता हुआ वृक्ष से बाँधने के लिए ले जा रहा है। यह मूर्ति सोवियत रूस तथा जापान में हुये भारत महोत्सव में प्रदर्शन हेतु गई थी। रूस से छपे सूची पत्र में इसका चित्र भी छपा है। (चित्र 55)

गुप्तकाल की एक मृन्मूर्ति का ग्रीवा से ऊपर का भाग मिला था। इसके सिर पर किरीट (मुकुट) बना है। यह मूर्ति विष्णु की है। (चित्र 56, 56 क)

राष्ट्रीय संग्रहालय नई दिल्ली में सुरक्षित अहिच्छत्रा से मिला शिव की मूर्ति का जटाजूट सिर तथा पार्वती की मूर्ति के सिर पर अलंकृत केशविन्यास अत्यंत कलापूर्ण तथा दर्शनीय हैं। (चित्र 57, 58)।

11 अक्टूबर 1987 को अहिच्छत्रा के निकटस्थ ग्राम कठौती की पश्चिम दिशा में एक खेत को ट्रैक्टर की गोड़ी से बराबर किया जा रहा था। उसी प्रक्रिया में एक कुआँ दबा हुआ मिला। ग्राम के लोगों ने उस कुयें की छंटाई (सफाई) करनी आरम्भ

---

71. सिंहव्याघ्रवराहांश्च महिषांश्च गजाँस्तथा।
बबन्ध वृक्षे बलवानाश्रमस्य समीपतः ॥ 9 ॥
स सर्वदमनो नाम कुमारः समपद्यत ॥ 8 ॥
—महाभारत आदिपर्व, अध्याय 74

की। पाँच हाथ नीचे जाने पर बड़ी-बड़ी मृन्मूर्तियों के हाथ, पैर और गंगा-यमुना की मृन्मूर्ति जैसे धड़ मिलने लगे। और नीचे जाने पर पकी हुई मिट्टी का एक पंचमुख शिवलिंग मिला। इसके दो मुख मृन्मूर्ति से लगे हुये थे। तीसरा मुख कुयें में पृथक् से पड़ा मिला। चौथा मुख सम्भवतः कुयें के भीतर ही अभी तक हो। लिंग के सिर का ऊर्ध्व भाग पाँचवाँ मुख माना जाता है। उस कुयें की नीचे तक खुदाई इसलिये नहीं हुई क्योंकि ग्राम के लोगों में अफवाह फैल गई कि पुजारी मूर्ति लेकर कभी कुयें में कूद गया था, उसकी हड्डियाँ निकल रही हैं, आगे पता नहीं क्या अपशकुन हो जायेगा। उस मृन्मूर्ति को लोगों ने ग्राम में चबूतरा बनाकर पूजा के लिये गाड़ दिया। सुना जाता है कि तीसरा मुख गुलरिया के निकट बड़ा गांव का कोई प्रतिष्ठित व्यक्ति ले गया। उससे यह तीसरा मुख एक व्यक्ति ने लेकर गुरुकुल झज्जर के संग्रहालय के लिए दो सौ रुपये में विक्रय कर दिया। कुयें में निकला अन्य बहुत सा पुरातत्वीय सामान ग्राम में ही लोगों ने अपने पास रख लिया।

यह चतुर्मुख शिवलिंग गुप्तकालीन कला का उत्कृष्ट उदाहरण है। इसकी ऊँचाई डेढ़ फीट और भीतर से पोला है। एक ओर जटाधारी शिव का त्रिनेत्रयुक्त मुख है (चित्र 59), इसके वामपार्श्व में पार्वती का चेहरा बना हुआ है। (चित्र 60)

तीसरा मुख टूटकर पृथक् हो गया है, उसका चित्र भी यहाँ दिया है (चित्र 62)। यह तीसरा मुख घिस जाने से विशेष सुन्दर नहीं रह गया है। इसी शिवलिंग का चोथामुख कुयें में ही रह गया। विना मुख का पृष्ठभाग यहां चित्रित है। (चित्र 62 क)

इसी के साथ मिट्टी से बना एक फुट लम्बा, प्रभा मंडलयुक्त ग्रीवा तक का भाग मिला था। यह मूर्ति लगभग छह फीट की रही होगी। इसके शेष भाग कुयें और ग्राम में पड़े हैं। (चित्र 61)

चित्र संख्या 59 से 62 के चतुर्मुख शिवलिंग आदि मृन्मूर्तियां एक कुएं से निकली थीं, उस कुयें का चित्र देखिये संख्या 63 पर। श्री डल्लूराम के खेत में निकला यह कुआं अब दबा दिया गया है, साथ ही शेष मृन्मूर्तियां भी भीतर ही दब गईं।

पंचाल क्षेत्र के अहिच्छत्रा नगर से हाथी, नंदी आदि की छोटी-छोटी ऐसी मृन्मूर्तियाँ मिलती हैं, जैसी प्रस्तर-मूर्ति अशोक ने अपने राज्य में प्रस्तर स्तम्भों के शीर्ष भाग पर स्थापित कराई थीं। इसी प्रकार की नंदी की मृन्मूर्तियाँ सुघ से भी मिलती हैं। अहिच्छत्रा से मेंढ़ा और सुअर की मृन्मूर्तियाँ भी इसी आकार की मिली हैं। (चित्र 17-22 क)

तांबे की शुंगकालीन यक्षिणी की लघुप्रतिमा (चित्र 66) तथा अन्य उपकरण (चित्र 64-75 क), अंगूठियाँ,* कर्णफूल और साज सज्जा की विविध सामग्री भी

* अगस्त 1999 में अहिच्छत्रा से प्राप्त एक ताम्र अंगूठी पर एक व्यक्ति के आगे एक स्त्री नृत्य करती हुई दिखाई गई है। व्यक्ति के दोनों हाथों में कुछ वाद्ययन्त्र सदृश दिखाई देता है। (चित्र 64)

—सम्पादक

मिली है। कपड़ों पर छपाई करने वाले मिट्टी के ठप्पे भी प्राप्त हुए हैं। (चित्र 76-78 क तथा 238 से 241)

इसी प्रकार के छप्पाई के साधन सुनेत से भी मिले हैं, किंतु वे इतने कलात्मक नहीं हैं।

बंदर, मगरमच्छ, मेंढा, बैल आदि के आकार वाले पहियों से युक्त खिलौने भी बने हुये मिलते हैं। खिलौने सदृश इन छोटी गाड़ियों को बच्चे रस्सी वा धागा बाँधकर खींचते थे। इस प्रकार की गाड़ियाँ कौशांबी तथा स्रुघ्न से भी मिली हैं। इसी प्रकार के कलात्मक कुछ अन्य अवशेष, आभूषण बनाने के सांचे तथा पैर साफ करने के झांवे आदि भी मिले हैं। (चित्र 79-87 क तथा 242)

ताम्र मूर्तियां—मेरी जानकारी में अहिच्छत्रा से अभीतक शुंगकालीन एक लघु ताम्रमूर्ति तथा दो अत्यन्त लघु मुख प्राप्त हुए हैं (चित्र 65, 66)। इनसे अतिरिक्त किसी को कोई ताम्र प्रतिमा प्राप्त हुई हो इसका विवरण ज्ञात नहीं है।*

सैनिक की मृन्मूर्ति—पंचाल प्रदेश के अहिच्छत्रा नामक ऐतिहासिक खंडहर से कवच पहने हुये धनुर्धर सैनिक की मृन्मूर्ति मिली है। इसका गर्दन से ऊपर का भाग त्रुटित है। सैनिक पालथी मारकर बैठा हुआ दिखाया गया है। इसके बाँये हाथ में धनुष है। दाँये हाथ का पहुंचा टूटा हुआ है। यह कुषाण कालीन मूर्ति हैं। (चित्र सं० 88)

द्वारपाल अथवा कुषाण सैनिकों जैसी वेशभूषा से युक्त दो त्रुटितमृन्मूर्तियां रामनगर के जैन मन्दिर में रक्खी थीं। ये अहिच्छत्रा के खण्डहर से निकली थीं। (चित्र 89)।

बच्चों के खेलने के लिए मिट्टी से बना भीतर से पोला एक झुंझना भी मिला है। यह मन्दिर की आकृति का है, ऊपर चोटीदार गुम्बद है। सामने महात्मा बुद्ध की प्रतिमा चित्रित की गई है (चित्र 90)। अहिच्छत्रा से एक कलात्मक झुंझना उभयपक्षतो दर्शनीय मिला है (चित्र 91)। इसी प्रकार विभिन्न प्रकार के केश विन्यासयुक्त मृन्मूर्तियों के सुन्दर शिरोभाग भी दर्शनीय हैं (चित्र 91 क से 95)।

नारी की मृन्मूर्ति—अहिच्छत्रा से नारी मृन्मूर्ति का गर्दन से ऊपर का भाग प्राप्त

---

* स्थानीय लोगों से सुना है कि मई 2000 ईसवी में अहिच्छत्रा से ताम्बे की गुप्तकालीन कई जैन प्रतिमाएं प्राप्त हुई हैं। उनमें आदि जैन तीर्थंकर ऋषिभदेव तथा पार्श्वनाथ आदि की प्रतिमाएं है। एक प्रतिमा चतुर्मुख ढंग से बनी है। इसके एक ओर ऋषभदेव दूसरी ओर पार्श्वनाथ बने हैं। शेष दो ओर की मूर्तियां जंग से प्रभावित होने से अस्पष्ट हैं। किसी की ग्रीवा टूटी हुई है, किसी की चौकी ही शेष है। (चित्र 215-219)। इनकी ऊँचाई और चौड़ाई इस प्रकार है—चित्र 215—11 इंच × 6¼ इंच। चित्र 216—ऊंचाई 5¼ इंच। चित्र 217—ऊंचाई 4½ इंच। चित्र 218—ऊंचाई 3¾ इंच। चित्र 219—ऊंचाई 4 इंच।

—सम्पादक

हुआ था। इसके कानों में बड़े-बड़े कुंडल तथा माथे पर बोरला (टीका नामक आभूषण) सुशोभित है। बाल ऊपर से सँवारे हुये हैं, परंतु नीचे की ओर उनको घुंघराला रूप दे दिया गया है। सिर पर किनारीदार ओढ़नी ओढ़े हुये हैं (चित्र 96)। इसी प्रकार सुन्दर केश विन्यासयुक्त स्त्रीमृन्मूर्तियों के दो सिर (चित्र 97, 98) तथा एक पुरुष मृन्मूर्ति का टोपी पहने हुए शिरोभाग भी कला के सुन्दर उदाहरण हैं। (चित्र 99)।

समुद्रगुप्त—वीणावादक के दृश्य से अंकित एक बड़ी मृन्मूर्ति मिली थी, उसका आधा भाग टूट गया है। गुप्तकाल की कला का यह दुर्लभ उदाहरण है (चित्र 100)। इसी के साथ अन्य बड़ी मृन्मूर्ति का एक भाग मिला था जिसके पास बड़े-बड़े कुण्डल पहने एक सेवक हाथ में कुछ लिए खड़ा है (चित्र 101)। अहिच्छत्रा से मिली अन्य मृन्मूर्तियों आदि के चित्र देखिये संख्या 233-237।

पंचाल प्रदेश से प्राप्त सहस्रों छोटी बड़ी मूर्तियाँ लंदन, दिल्ली, मथुरा, लखनऊ, प्रयाग, गुरुकुल झज्जर और चंदौसी के संग्रहालयों में सुरक्षित हैं। इनसे कई गुणा अधिक सामग्री पंचाल-प्रदेश के सैकड़ों खंडहरों में दबी हुई अपने किसी इतिहास प्रेमी उद्धारक और अन्वेषक की प्रतीक्षा कर रही है।

मृन्मूर्तियों का विषय-वस्तु और प्रकार

मृन्मूर्तियों से तत्कालीन लोक जीवन के विविध अंगों पर प्रकाश पड़ता है। ये अनेक प्रकार की मिलती हैं। मौर्यकाल में अधिकतर सामान्य कोटि की कला वाली मातृकायें मिलती हैं। इनकी मुखाकृति पक्षी की चोंच की भाँति होती है। वक्षस्थल उन्नत और नितंब भाग बहुत चौड़ा मिलता है।

शुंग कालीन मृन्मूर्तियाँ प्रायः करके सांचे में ढालकर बनाई हुई हैं, इसीलिये एक-एक मूर्ति की एकाधिक प्रतियाँ भी मिलती हैं। इस युग की मिथुन अथवा दंपती प्रकार की मूर्तियाँ भी प्राप्त हुई हैं। एक प्रकार की यक्षी के शिरोभाग पर पुष्प गुच्छों का भार तथा परशु, भाला, तीर आदि शस्त्र बने पाये जाते हैं। कुछ मूर्तियाँ केवल पुरुष, केवल स्त्री और माता तथा शिशु की भी मिलती हैं। मिथुन मूर्तियों में स्त्री-पुरुष एक दूसरे को अनेक प्रकार से आलिंगित किये हुये, कंधे वा कटि भाग पर हाथ रक्खे हुये तथा पुरुष को वीणा लिये हुये भी दिखाया गया है। प्रयाग संग्रहालय में अहिच्छत्रा से प्राप्त एक वर्तुलाकार फलक सुरक्षित है, उस पर सर्पाकृति का राक्षस चित्रित है। उसका मुख तथा पूँछ फलक के शिरोभाग पर बराबर-बराबर बने दिखाये गये हैं।

कुषाण कालीन मृन्मूर्तियों में कुबड़े, बौने, राक्षस और अति स्थूलकाय कुबड़ों की मूर्तियाँ विशेष आकर्षक होती हैं। इनमें जांघों को चौड़ा किये हुये तथा पैर की एड़ियों को मिलाये हुये दोनों हाथों की मुट्ठी बंधी हुई और छाती पर रखी हुई बौनों की मूर्तियाँ मिलती हैं। कभी-कभी कुबेर वा राक्षस की मूर्ति केवल कौपीन

बाँधे, उकड़ू बैठे हुये, दोनों हाथ छाती पर रखे अथवा दोनों हाथों से गालों को चौड़ा करके, दाँत निकाल कर, डराने की अवस्था में तथा बड़ी-बड़ी मूँछों वाली अवस्था में दिखाई जाती हैं। कुछ दृश्यों में पुरुषों को नृत्य, गायन, वादन करते हुये, ढोल, मृदंग, वीणा आदि वाद्य यंत्रों सहित प्रदर्शित किया गया है। स्त्री-पुरुषों के अतिरिक्त पशु-पक्षी तथा समुद्री-जीवों को भी मूर्ति-कला के माध्यम से उकेरा जाता था।

मिट्टी के चतुष्कोण पूजा पात्र भी मिलते हैं, जिनके किनारे चार अंगुल तक उभरे हुये होते हैं। इनके चारों कोनों पर पंख फैलाये चार पक्षी बने रहते हैं। इन पूजा पात्रों के भीतर कच्छप, सर्प, पिंडी, नवग्रह के प्रतीक चिह्न आदि बने हुये मिलते हैं। वासुदेव शरण अग्रवाल का कथन है कि यह पूजा-विधि और इसकी कला पहलवों से प्रभावित थी। उन्होंने गांधार प्रदेश में इसे प्रचलित किया था। वहीं से भारत के अन्य भागों में यह फैल गई।

हरयाणा के अगरोहा और नौरंगाबाद से ऐसे पूजापात्र निकले हैं, उन पर विदेशी कला का कोई प्रभाव नहीं दिखाई देता। मेरा विचार है यह पद्धति विशुद्ध भारतीय है। जैसे आजकल अनेक घरों में अपने निजी-मंदिर तथा निजी-पूजार्थ मूर्तियाँ होती हैं, उसी प्रकार पुराकाल में भी व्यक्ति विशेष वा गृहविशेष की अपनी पूजा-विधि को संपन्न करने के लिये ये पूजापात्र प्रयुक्त होते थे। सार्वजनिक मंदिरों में जाने की अपेक्षा मंदिर की सर्वदेवतामय लघु-प्रतिकृति घर के लिये तैयार कर ली जाती होगी।

गुप्तकाल की मूर्तियाँ भाव और सौम्यता की दृष्टि से अद्भुत हैं। महात्मा बुद्ध को पद्मासन अवस्था में तथा अभयमुद्रा में अंकित किया जाता है। प्रयाग संग्रहालय में अहिच्छत्रा से प्राप्त एक फलक रखा है, उसमें कंस के सहयोगी प्रलंब राक्षस को मारने का दृश्य अंकित है। कंस ने कृष्ण और बलराम को मारने के लिये इस राक्षस को भेजा था। इस मूर्ति में बलराम राक्षस के कंधों पर सवार है तथा कृष्ण अपने बाँये पैर से राक्षस को मारता दिखाया गया है।

इस प्रकार इन मृन्मूर्तियों के अध्ययन से तत्कालीन लोक जीवन के विविध प्रकार, वेशभूषा, धार्मिक मान्यताओं और आमोद-प्रमोद आदि विभिन्न आयामों की जानकारी मिलती है।

प्रस्तर मूर्तियाँ

पंचाल प्रदेश के प्राचीन नगर अहिच्छत्रा से अभय मुद्रा में खड़े मैत्रेय नामक बोधिसत्व की अभिलिखित प्रतिमा मिली थी। यह मूर्ति सफेद चकत्तों वाले लाल (बलुवे) पत्थर से बनी हुई है। इसी पत्थर से बनी प्रतिमायें मथुरा तथा संघोल से सहस्रों मिल चुकी हैं। इनको कुषाणकाल की प्रतिमायें कहा जाता है। सन् 1951 में अहिच्छत्रा से एक अभिलिखित यक्ष प्रतिमा प्राप्त हुई थी, इस पर 'अहिच्छत्रा' नाम खुदा हुआ है। यह कभी फरगुल नामक बौद्ध विहार में स्थापित की गई थी।

महात्मा बुद्ध की दो प्रस्तर मूर्तियाँ मिली हैं, ये अति सुंदर और कलापूर्ण हैं। एक पर ब्रह्मीलिपि में लेख भी खुदा हुआ है। श्री कृष्णदत्त वाजपेयी के अनुसार संभवतः ये दोनों मूर्तियाँ अन्य अनेक मूर्तियों की तरह मथुरा से अहिच्छत्रा लाई गईं।

किंतु मेरा विचार है कि प्राचीन काल में सभी प्रसिद्ध और महत्वपूर्ण नगरों में पत्थरों को तराशकर प्रतिमा बनाने वाले कुशल शिल्पी रहते थे। वे वहीं रहकर मूर्तियों का निर्माण करते थे। हाँ उनको पत्थर उपलब्ध करा दिये जाते थे, वे चाहे जहाँ कहीं से भी लाये जाते हों। निर्मित मूर्तियों को स्थान विशेष से सर्वत्र पहुँचाया जाना असंगत लगता है। क्योंकि उनके खंडित होने का भय बना रहता है। अनगढ़े प्रस्तरों को ढोना और उनसे अभीष्ट स्थान पर यथेष्ट मूर्ति बनाकर स्थापित करना अधिक सुविधाजनक प्रतीत होता है।

पंचाल प्रदेश से मिली अनेक प्रस्तर मूर्तियाँ राष्ट्रीय संग्रहालय दिल्ली, राज्य-संग्रहालय लखनऊ, मथुरा तथा उज्जैन के संग्रहालयों में सुरक्षित हैं।

गुप्तकाल की प्रस्तर प्रतिमायें भी पंचाल प्रदेश से पर्याप्त मिली हैं। ये कला के उत्कृष्ट उदाहरण हैं। इनमें विष्णु, सूर्य, गणेश, महिषासुर मर्दिनी, कार्तिकेय, शिव-पार्वती की प्रतिमायें विशेष उल्लेखनीय हैं। इन्हीं देवों की मृन्मूर्तियाँ भी मिली हैं। पार्श्वनाथ के मंदिर का शिलापट्ट, नवग्रह की मूर्ति तथा अनेक जैन प्रतिमायें भी अहिच्छत्रा से मिली थीं। जैन मूर्तियों की बहुलता से ज्ञात होता है कि अहिच्छत्रा तथा कांपिल्य में जैन मतावलंबियों का प्राधान्य रहा है। इनसे अतिरिक्त कुषाण और गुप्तकाल की प्रस्तर मूर्तियों के छोटे-छोटे सिर धड़, कटि और पैर आदि खंडित अवस्था में मिलते रहते हैं। वैजयन्तीमाला धारण किए हुए धड़ से घुटनों तक की विष्णु की लघु प्रतिमा मिली है (चित्र 102)।

अहिच्छत्रा से दो कोस=5 किलोमीटर उत्तर में बड़ागाँव गौरीशंकर गुलरिया के शिव मंदिर में कुषाणकाल का एक विशाल एकमुख शिवलिंग स्थापित किया हुआ है। यह भूमि से बाहर साढ़े चार फीट ऊँचा है। मोटाई 3 फीट है। पानी द्वारा खाया हुआ है। यह भी अहिच्छत्रा से ही निकला था, वहीं से लाकर यहाँ स्थापित कर दिया गया है (चित्र 103)।

रामनगर से पश्चिम दिशा में एक मील पर लक्ष्मीपुर ग्राम है, सुना गया है कि वहाँ मौर्यकालीन दो सिंह प्रतिमायें थीं। एक तो किसी अन्य ग्राम के लोग ले गये। दूसरी लक्ष्मीपुर में किसी ने छुपा रक्खी है। ये मूर्तियाँ कला की दृष्टि से अति सुंदर बताई जाती हैं। ये भी अहिच्छत्रा के टीले से ही प्राप्त हुई थीं।

अहिच्छत्रा के निकट कठौती ग्राम के बाहर, सड़क के पास, कुयें पर एक सूर्य प्रतिमा गड़ी हुई है, इसका मुख टूटा हुआ है। जैन तीर्थंकर की एक आवक्ष प्रतिमा जैन मंदिर में ही पेड़ के नीचे रक्खी है (चित्र 104)। रामनगर के छोटे से मंदिर में भी एक घिसी हुई प्रतिमा स्थापित की हुई है।

रामनगर के जैन मंदिर में तीन जैन प्रतिमायें स्थापित हैं। इन्हीं के आगे संगमरमर से बनी नई प्रतिमायें लगा रक्खी हैं। ये इस प्रकार लगाई गई हैं कि पुरानी मूर्तियों का नीचे का भाग छुप गया है। (ये प्रतिमायें जैन तीर्थंकर श्री ऋषभदेव, पार्श्वनाथ और महावीर स्वामी की हैं (चित्र 105-107)।

आँवला-बिसौली राजमार्ग पर आँवला से लगभग 25 किलोमीटर दूर बगडेर ग्राम के एक छोटे से मंदिर में शेषशायी विष्णु की चार फीट लंबी प्रतिमा पूजा के लिये रक्खी हुई है। यह प्रतिमा गुप्तकालीन है। इसके सभी मानवमुख तोड़े हुये हैं।

शुंग-कालीन कला में प्रस्तर से बनी शीशे की चतुष्कोण मूठ अहिच्छत्रा के टीलों से मिली थी, वह आनन्दपुर से चार कोश उत्तर में स्थित एक ग्राम के पुजारी के पास थी। इसके शिरोभाग में एक गोल छिद्र है (चित्र 108 ग)। इसके दो ओर एक-एक पुरुष और दो ओर एक-एक स्त्री की आकृति बनी है। इस पर मौर्य-कालीन चमकदार पालिश भी थी। कला की दृष्टि से यह शुंग काल की प्रतीत होती है। (चित्र 108 क-ख)

पाँच ठिगने मनुष्यों के चित्रयुक्त कुषाण-कालीन एक द्वार—शीर्ष-पट्टिका अहिच्छत्रा से निकली थी। वह आलमपुर ग्राम में एक व्यक्ति के घर के द्वार पर लगी हुई थी। यह मूर्ति तथा सौ से अधिक पांचाल मुद्राएं हमने क्रय करके गुरुकुल झज्जर के संग्रहालय को समर्पित कर दी है। यह मूर्ति सफेद चित्तीदार लाल बलुवे पत्थर पर बनी है। कला की दृष्टि से यह बहुत सुंदर नहीं है। (चित्र 109)

इसी प्रकार पंचाल के सैंकड़ों ग्रामों में प्राचीन धरोहर बिखरी पड़ी है, कहीं शिवालय आदि मंदिरों में लगी हुई है, कहीं इधर-उधर ग्रामों में लोगों के पास रक्खी है। पुरातत्व विभाग के लोगों का ध्यान इस ओर नहीं जाता, परंतु व्यापारी लोगों का ध्यान ऐसे स्थलों पर अवश्य रहता है। एक बार कहीं कोई सुंदर-सी मूर्ति देखी, यदि दुबारा वहाँ गये, तो वह वहाँ नहीं मिलती, इसी बीच किसी व्यापारी की शरण में पहुंची मिलती है।

प्राचीन समय में मंदिरों के चारों ओर यक्ष यक्षिणी की मूर्तियों की विविध भावभंगिमाओं से युक्त प्रस्तर मूर्तियों का घेरा बना होता था। दो मूर्तियों के बीच में एक कलात्मक प्रस्तर लगाया जाता था, उसे योजक कह सकते हैं। शुंगकाल की दो प्रतिमाओं का मध्यवर्ती, लाल पत्थर से बना एक योजक अहिच्छत्रा से मिला है, इस पत्थर पर दोनों ओर पंख और सींग वाला हिरण बना है (चित्र 110 क-ख)।

मणके—स्त्री-पुरुषों द्वारा शारीरिक सौंदर्य में वृद्धि तथा शृंगार हेतु विभिन्न प्रकार के रत्नोपरत्नों द्वारा अनेकाकृति के मणके काम में लाये जाते थे। पंचाल-प्रदेश के खंडहरों से प्राचीन मालाओं के मणके भी बहुतायत से मिलते रहते हैं। ये मणके लाल, सफेद, काला अकीक, स्फटिक, गोमेद, पन्ना, माणिक्य, मूंगा, पुखराज, जमनियाँ, तामड़ा, बिल्लौर, हाथी-दाँत, सीप, शंख और हड्डी आदि के

बने मिलते हैं। इनमें अधिकतर एक छिद्र होता है। कोई-कोई 2-3 छिद्र वाले भी होते हैं। ऐसे मणके दो-तीन लड़ियों वाली मालाओं में प्रयुक्त होते थे। इन कठोर पत्थरों में छेद करना उस युग में अति दुष्कर रहा होगा। हीरे के बरमे के विना यह कार्य असंभव है। जो मणके लंबे हैं, उनमें दोनों ओर से छिद्र किया जाता है। इससे ज्ञात होता है कि छेद करने का साधन अधिक लंबा नहीं होता था, अन्यथा दोनों ओर से छेद करने की आवश्यकता नहीं होती। इसी प्रक्रिया में अधिकतर मणकों में दोनों ओर से किये जाने वाले छिद्रों का मुख एक सिधाई में नहीं मिलता। सहस्त्रों वर्षों तक मिट्टी में दबे रहने पर भी इन मणकों की चमक-दमक में किसी प्रकार की न्यूनता नहीं आने पाई है। इन पर की गई पालिश आज भी सर्वथा नई और ताजा लगती है। पुरातत्व विशेषज्ञ अभी तक यह निश्चय नहीं कर सके हैं कि इनकी चमक में कौन सा तत्व काम में लाया जाता था।

इनसे अतिरिक्त मिट्टी, तांबा, चांदी और सोने के भी मणके मिलते हैं। मिट्टी के मणके बहुत मोटे हैं, इससे अनुमान होता है कि ये पशुओं के गले में बाँधे जाते होंगे। इन्हीं मोटे मणकों को तकली का रूप देकर कुछ ग्रामीण सूत कातते भी देखे गये हैं। पकी हुई मिट्टी के गोले और गोलियाँ भी पर्याप्त मिलती हैं। बड़े गोले युद्ध में काम आते होंगे तथा छोटी गोलियाँ खेलने और खेतों की रक्षा हेतु गुलेल (गोफिये) में डालकर पक्षियों को उड़ाने में प्रयुक्त होती होंगी। मिट्टी तथा रत्नो-परत्नों से बने छोटे-बड़े, अनेक प्रकार के बाट भी बहुत मिलते हैं। मिट्टी के बाटों के बीच में सुंदर फूल बना होता है। इन बाटों की आकृति ऐसी है जैसी आजकल कैरमबोर्ड खेलने की गिट्टियाँ होती हैं। मिट्टी के बाट रहटोइया से बहुत अधिक मिलते हैं। (विविध प्रकार के मणकों के चित्र संख्या 111-115 क पर देखिये)।

वास्तुकला

वात्स्यायनमुनि द्वारा वर्णित कलाओं में वास्तुकला का 38वाँ स्थान है। वास्तुकला शब्द प्रमुखतया भवन-निर्माण की कला के लिये प्रयुक्त होता है। इसे स्थापत्यकला भी कहा जाता है। स्थापत्य-कला में विशाल आवासीय भवन, मंदिर, स्तूप, विहार तथा चतुष्पथों पर गाड़े जाने वाले लेखयुक्त स्तंभ आदि की गणना की जा सकती है। वास्तुकला के इस सीमित अर्थ की अपेक्षा, एक व्यापक अर्थ भी किया जा सकता है। जैसे प्राचीन खंडहरों से मिलने वाली कलाकृति-युक्त सभी पदार्थ वस्तु हैं, वस्तु में जो कला है, वह वास्तुकला कही जा सकती है।

भारतवर्ष में लगभग 150 वर्ष से खंडहरों का उत्खनन कार्य समय-समय पर चलता आ रहा है। पर हमारे पुरातत्वविद् किसी नगर अथवा नगर में स्थित राज-प्रसादों और नागरिक आवास स्थलों के वास्तविक स्वरूप को पूर्णरूप से उपस्थित करने में असमर्थ रहते हैं। इसका कारण है पहले तो खंडहर अतिध्वस्त अवस्था में हैं, उनमें केवल दीवारें ही मिलती हैं। अनेक खंडहरों की दबी दीवारों से स्थानीय

लोगों ने ईंटें निकालकर नये भवन बना लिये हैं। ऐसे में उत्खनन कार्य नहीं हो पाता क्योंकि उत्खनन के सहारे के लिये किसी दीवार का होना अत्यावश्यक है। दीवार के अभाव में कमरों की निर्माणशैली आदि स्पष्ट नहीं हो सकती। दूसरी बात है, पूरे खंडहर की विधिपूर्वक खुदाई न होना। पूर्ण अथवा लगभग पूर्ण नगर की खुदाई कुछ ही स्थलों की हो पाई है। जैसे मोहन जोदड़ो, कालीबंगा, तक्षशिला और नालंदा आदि। पूर्ण खुदाई हुये बिना न तो सारी पुरातत्वीय सामग्री ही उपलब्ध हो सकती है और न ही नगर संरचना का पूर्ण ज्ञान हो पाता है।

यद्यपि महाभारत में पंचाल-प्रदेश का बहुत बार वर्णन आया है, परंतु उसके किसी भी नगर की रचना आदि का वर्णन स्पष्ट नहीं मिलता। द्रौपदी स्वयंवर के समय कांपिल्य-नगर के बाहर उत्तर की ओर जो अस्थायी द्वार, तोरण, प्राकार, परिखा, श्वेत प्रासाद, सोपान (सीढ़ी), आसन, महासन, शयनासन और विमान आदि बनाये गये थे, उनका वर्णन स्पष्टतया दिया हुआ है। उनको सजाने के लिये चंदन जल, माला, स्वर्णजाल, रत्न, मणि आदि का प्रयोग किया गया था[72]। कांपिल्य नगर की उस कुंभकारशाला की भी चर्चा है, जिसमें ब्राह्मण वेश में पाँचों पांडव अपनी माता कुंती सहित रह रहे थे।

अहिच्छत्रा की खुदाई में 3 बौद्धस्तूप और 2 शिवमंदिर निकले हैं। उनमें (16×11×3.25 ईन्च) (48×28×8 सेंटीमीटर) मोटी ईंटों का प्रयोग किया गया है। सबसे नीचे का चबूतरा चौकोर और बड़ा है। उससे ऊपर के चबूतरे क्रमशः छोटे होते गये हैं। सभी चबूतरे चतुष्कोण हैं अन्त में ऊपर शिवलिंग स्थापित किया गया है।

प्रस्तर का बना यह विशाल शिवलिंग टूटने के पश्चात् भी लगभग आठ फीट ऊँचा बचा हुआ है। जनश्रुति है कि आकाशीय विद्युत्प्रपात के कारण यह शिवलिंग खंडित हो गया। यह भी संभव है किसी दुर्दांत आक्रमणकारी ने इसकी ऐसी दुर्दशा कर दी हो। इस विशाल प्रस्तर-स्तंभ का ऊपर का टूटा हुआ एक भाग नीचे वाले चबूतरे की सीढियों पर पड़ा हुआ है। शेष भाग अद्यावधि अनुपलब्ध है। दुर्ग के बाहरी भूमितल से इस शिवलिंग का शीर्ष भाग 165 फीट ऊँचा है। इतनी ऊँचाई पर इतना विशाल प्रस्तर खंड किस प्रकार, कहाँ से लाकर चढ़ाया गया होगा, यह भी आश्चर्य है। आस-पास कोई पर्वत भी नहीं है, जहाँ से पत्थर लाया जा सके। इसको देखकर उस युग के पुरुषों का पौरुष भी आश्चर्यचकित करने वाला प्रतीत होता है। इस दृश्य की वास्तविकता का आभास तो वहीं जाकर हो सकता है। (चित्र 4, 116)

एक बौद्ध स्तूप के चतुर्दिक् छोटी-छोटी कुटियाँ बनी हैं। इनमें एक व्यक्ति अति कठिनता से निवास कर सकता है। इनका क्या उपयोग होता होगा, इसकी पूरी जानकारी नहीं हो सकी है। मेरे विचार से भिक्षु लोग इनमें ध्यानावस्थित होते होंगे।

72. महाभारत आदिपर्व अध्याय 84, श्लोक 17-32॥

अथवा दीवार को गिरने से बचाने के लिए उसकी दृढता हेतु भी इनका निर्माण किया गया होगा (चित्र 117 क)। इसी स्तूप के दक्षिणी भाग में एक कुण्ड या कुआँ भी मिला है। (चित्र 117)।

खंडहर पर से होकर आनंदपुर से नसरतगंज जाने वाले ऊबड़-खाबड़ और कच्चे मार्ग के पास आजकल की भाँति कंकरीट की अति कठोर पूरी छत ही गिरी पड़ी हैं। उसके पास ही मार्ग के दूसरे पक्ष में तीन स्थानों पर कंकरीट से बने तीन स्तंभ थोड़ी-थोड़ी दूर पर बने हैं। ये स्तम्भ नीचे से मोटे हैं और ऊपर की ओर क्रमशः पतले होते गये हैं। इन्हीं के सामने की ओर मार्ग से पार काली पालिश किये हुये बर्तनों के सहस्त्रों टुकड़े बिखरे पड़े हैं। दीवारों की चिनाई मिट्टी गारे से की हुई मिली है। मंदिरों के कलश भी मिट्टी के ही बने मिले हैं।

पांचाल प्रदेश के अहिच्छत्रा आदि स्थलों से सैकड़ों ऐसी ईंटें मिलती हैं जिन्हें कलात्मक सांचों में ढालकर बनाया जाता था। ऐसी ईंटें भवनों के द्वार, चौखट, कंगूरे, कोण, आलय आदि के ऊपर लगाई जाती थीं। (चित्र 220-222)।

शिव मंदिर—सन् 1940-44 तक अहिच्छत्रा में हुई खुदाई में एक शिवमंदिर के अवशेष मिले थे। इस मंदिर का निर्माण कई तल्लों की पीठिका पर हुआ था। इस पीठिका का प्रत्येक तल अपने ऊपर वाले तल के प्रदक्षिणा पथ का काम देता था। ऊपर के चतुष्कोण स्वरूप का निर्माण छोटी-छोटी कोठरियों को मिट्टी से भरकर किया गया था। इसके ऊपर कोई विशाल शिवलिंग अथवा शिव प्रतिमा स्थापित की गई होगी। कुछ विद्वानों का विचार है यह शिव मंदिर बौद्ध स्तूपों के अनुकरण पर बना है। किंतु हमें यह अनुकरण वाली बात नहीं जँचती। क्योंकि स्तूप ऊपर से खुले होते थे। जबकि मंदिर ऊपर से ढंके हुये अर्थात् छत वाले होते थे। इसलिये सबसे ऊपर का चबूतरा गर्भगृह (प्रदक्षिणा कक्ष) का आधार रहा होगा और उसके ऊपर वर्गाकार प्रकोष्ठ होगा। छत का भीतरी भाग मिट्टी के उच्चित्रित फलकों द्वारा आच्छादित और अलंकृत था। ऊपर चढ़ने की सीढ़ियों के दोनों ओर गंगा और यमुना की मानवाकार मूर्तियाँ लगी हुई थीं। इस गुप्तकालीन मंदिर का निर्माण किसी कुषाण कालीन ध्वस्त भग्नावशेष पर हुआ था। क्योंकि इसकी नींव के नीचे कुषाण कालीन अवशेष पाये गये हैं। इसी अनुकृति पर बना एक मंदिर वा स्तूप पद्मावती (पावा) नगरी में भी मिला है।

अहिच्छत्रा की खुदाई में मिला मौर्यकालीन स्तूप ईंटों से बना हुआ है। भूमि तल से चोटी तक यह 77 फीट ऊँचा है। कटारी खेड़ा में 400 वर्ग फीट में बना बौद्ध स्तूप मिला है। साहब बुर्ज के निकट 300 वर्ग फीट में बना 35 फीट ऊँचा एक स्तूप भग्नावस्था में मिला है। इन मंदिरों और स्तूपों के 2-3 आधार ही अब दिखाई देते हैं, शेष कालवशात् अथवा आक्रमणवश नष्ट हो गये हैं। इनकी दीवारों पर लिपाई के कोई चिह्न नहीं मिले। संभव है, ये इसी रूप में बनाये जाते होंगे।

क्योंकि अगरोहा (हिसार) की खुदाई में भी एक विशाल स्तूप मिला है, वह भी इसी प्रकार विना लिपाई के ही बना हुआ है। पीली मिट्टी से बनी, पकी हुई ईंटों का उसमें बहुत प्रयोग किया हुआ है। लाल ईंटें भी लगी हुई हैं। दोनों स्थानों के स्तूपों की शैली एक ही है। सामान्य उत्खनन से इतनी सी बातों की ही जानकारी प्राप्त हो सकती है। अधिक जानकारी के लिये तो पूर्ण रूप से खुदाई होनी अत्यावश्यक है।

इसी प्रकार अतरंजीखेड़ा, कांपिल्य और संकिशा (सांकाश्य) में भी यत्र-तत्र प्राचीन भवनों के अवशेष तथा दीवारें आदि दिखाई पड़ती हैं। जैसे अहिच्छत्रा नगरी के चारों ओर 16 फीट 8 इंच मोटी चारदीवारी सुरक्षा हेतु बनी हुई है, उसी प्रकार कांपिल्य, अतरंजीखेड़ा और संकिशा आदि के चतुर्दिक् भी बनी हुई हैं।

शाहजहाँपुर—हरदोई राजमार्ग पर शाहजहाँपुर से सत्रह किलोमीटर पर सड़क से बिल्कुल सटी हुई, बाईं ओर को कच्ची ईंटों से बनी एक प्राचीन दीवार भूमि में दबी हुई दिखाई देती है। वहाँ सिंधु-सभ्यता के अवशेष खोजे जा सकते हैं। क्योंकि ईंटों की बनावट उसी प्रकार की है।

मृद्‌भांडकला—

पुरावशेषों में मृत्पात्रों का भी विशेष महत्व होता है। प्राचीन खंडहरों की खुदाई में अनेक प्रकार और अनेक कालों के मिट्टी के बर्तन मिलते हैं। इनमें सबसे प्राचीन सिंधु-सभ्यता कालीन मृत्पात्र होते हैं। पंचाल-प्रदेश में साक्षात् हड़प्पा-कालीन-संस्कृति के मृद्‌भांड आदि अभी तक नहीं मिले हैं। हाँ! ताम्रयुगीन संस्कृति के शस्त्रास्त्र, कुल्हाड़े, छीणे, तीर, भाले, मानवाकृति आदि अवश्य मिले हैं। बिसौली (चंदौसी) शाहबाद तथा मदारपुर (मुरादाबाद) से ऐसी सामग्री पर्याप्त मिली है।

चित्रित धूसरित भांड पंचाल-प्रदेश के सबसे प्राचीन मृत्पात्र हैं। ये अहिच्छत्रा और अतरंजी-खेड़ा से मिले हैं। ये स्लेटी तथा धूम्र रंग के होते हैं। इन पर काले रंग के फूल आदि चित्रित किये होते हैं। इतिहासकार इन्हें महाभारत-कालीन पात्रों में गिनते हैं। इस प्रकार के पात्र कौशांबी, स्रुघ्न, कुरुक्षेत्र, भोरगढ़ (दिल्ली), रोपड़, बागपत, तिलपत, उज्जैन, तथा कोटला निहंग खाँ के खंडहरों से प्राप्त हुये हैं। इन बर्तनों में तीन प्रकार की आभा देखने में आई है। कुछ पात्रों का सलेटी रंग, श्वेत आभामय होता है, कुछ गुलाबी आभावाले तथा कुछ पीलापन लिये होते हैं, इन पर सौंदर्य वा श्रृंगार के लिये काले रंग से जो रेखायें बनाई होती हैं वे अत्यंत पक्की होती हैं। ऐसे बर्तनों में थाली, कटोरे आदि अधिक मिलते हैं। अनेक पात्रों में बाहर-भीतर दोनों ओर रेखाओं से चित्रकारी की गई है।

इन्हीं पात्रों के साथ जो साधारण पात्र मिलते हैं, वे लाल रंग के हैं। इन पर लाल रंग से पुताई भी की हुई है। कुछ पात्र काले रंग के भी मिलते हैं, ये बहुत चिकने हैं। एक ही स्तर पर तीन रंग के पात्र मिलने से अनुमान होता है कि धनी,

मध्यम कोटि और निर्धन स्तर के लोगों के ये पात्र रहे होंगे। उज्जैन से कुछ पात्र ऐसे भी मिले हैं जो भीतर से काले और बाहर से लाल हैं। यह भेद भट्टी में पकाने की विधि-विशेष के कारण हुआ है।

इस युग के पात्रों के पश्चात् पंचाल क्षेत्र में जो बर्तन मिले हैं वे विशेष चमकदार आभा वाले हैं। इनको उत्तरी चमकीले काले पात्रों के नाम से जाना जाता है। इनके साथ उत्तरी नाम इसलिये जुड़ा हुआ है क्योंकि सबसे पहले उत्तर भारत में मिले थे। परंतु अब यह नाम सार्थक नहीं रहा है, क्योंकि दक्षिण में पैठन (प्रतिष्ठानपुर) तक ऐसे पात्र मिल चुके हैं। जैसे सिंधु-सभ्यता नाम रूढ़ हो गया है, इस नाम में भी अब कोई तर्कसंगत बात नहीं रह गई है। क्योंकि उत्तर भारत के सहारनपुर और पश्चिम में गुजरात के धौलावीरा और द्वारका तक इस सभ्यता के अवशेष प्राप्त हो चुके हैं।

इन चमकदार काली पालिश वाले बर्तनों की सबसे बड़ी विशेषता यह है कि ये पानी को नहीं सोखते। गर्मपात्र पर गंधक रगड़ने से यह संभव होता है। इन पात्रों के मध्य-भाग में एक वर्तुल के मध्य उभरा हुआ बिंदु मिलता है। काली चमक वाले पात्र अहिच्छत्रा में बहुत मिलते हैं। इनमें कटोरियाँ अधिक प्राप्त हुई हैं। इसी प्रकार की चमक वाले सोने और चाँदी की पालिश से युक्त पात्र कौशांबी से भी मिले हैं। ये शीशे की भाँति चमक देते हैं। ऐसे ही पात्र स्रुघ्न से भी मिलते हैं। ऐसे पात्रों का एक युग-विशेष रहा है, इसीलिये बानगढ़ से लेकर नासिक तक तथा तक्षशिला से लेकर उड़ीसा के शिशुपाल-गढ़ तक ये प्राप्त हुये हैं। वर्तमान पुरातत्व-विशेषज्ञों ने इन पात्रों का समय नंद तथा मौर्ययुग माना है।

इन पात्रों के आकार में एक विशेष प्रकार का सौंदर्य है। पूरा पात्र एक ही मोटाई से बना मिलता है। अन्य पात्रों की अपेक्षा तल भाग मोटा नहीं मिलता। ये अत्यंत हलके होते हैं। इन बर्तनों के साथ और भी अनेक प्रकार के बर्तन मिलते हैं। जैसे सलेटी रंग के मोटी परत वाले तथा लाल रंग के पात्र। परंतु कला की दृष्टि से ये इतने श्रेष्ठ नहीं हैं, जितने पूर्वोक्त चित्रित सलेटी तथा काली चमकदार आभा वाले बर्तन होते हैं। इन पात्रों में कसोरे, प्याले, मटके, पतीली, तसला और थाली इत्यादि मिले हैं[73]।

कुषाणकाल में उपर्युक्त चमक वाले, काली पालिश के बर्तन बनने बंद हो गये थे। कुषाणकाल के पात्र प्रायः लाल रंग के तथा मोटी परत वाले मिलते हैं। पंचाल-प्रदेश के प्रायः सभी प्राचीन खंडहरों से ऐसे पात्र मिले हैं। इस काल में टोंटीदार सुराही का बहुत प्रचलन रहा है। इस सुराही के पानी निकालने वाले मुँह पर मकर-मुख, गजमुख, स्त्री-मुख, सिंहमुख आदि बने हुये मिलते हैं। इन सुराहियों की मूठ पर कभी-कभी हाथ जोड़े खड़ी हुई नंगी स्त्री, कभी शालभंजिका आकृति में एक

73. प्राचीन भारतीय मिट्टी के बर्तन—राय गोविन्दचन्द

हाथ ऊपर किये तथा दूसरा हाथ नीचे लटकाये खड़ी नंगी स्त्री, रस्सी की भाँति गुंथी हुई चित्रकारी तथा फूल आदि बने मिलते हैं।

इस युग के छोटे-बड़े घड़ों पर स्वस्तिक, त्रिरत्न, पत्ती, फूल, वृत में बिंदु-हार, मत्स्य आदि विभिन्न प्रकार के चित्र बने होते हैं। जिस साधन से गीले मटके पर ये ठप्पे लगाये जाते थे, वे भी मिले हैं। स्याही रखने की दवात भी अहिच्छत्रा से बहुत मिलती हैं। ऐसी ही दवातें सुघ और कौशाम्बी से भी मिली हैं।

गुप्त-काल के बर्तन तो पंचाल-प्रदेश के प्रायः सभी खंडहरों से मिले हैं, परंतु अहिच्छत्रा को छोड़कर शेष स्थानों के पात्रों का विवरण किसी ने नहीं लिखा। अहिच्छत्रा से प्राप्त गुप्तकालीन-पात्रों के अध्ययन से ज्ञात होता है कि गुप्तयुग के प्रारम्भिक-काल में पात्रों का आकार कुषाण-कालीन बर्तनों जैसा ही चलता रहा। ये पात्र मोटे दल के हैं और इन पर ठप्पे से विविध आकार बनाये गये हैं। इन पर लाल रंग किया हुआ है। अहिच्छत्रा की एक हंडिया का बाहर का शरीर तीन भागों में विभक्त किया गया है। सबसे ऊपर के भाग पर अभ्रक के टुकड़े चिपकाये हुये हैं, उसके नीचे वाले भाग पर लाल चमकीला लेप है, सबसे निचले भाग में काली रेखाओं से कुछ आकार बनाये गये हैं। एक अन्य पात्र पर रस्सी जैसे चिह्न बने हैं, संभव है ऐसा पात्र घी रखने के लिए रस्सी से बने छींके पर टांगा जाता था, जिससे कि इधर-उधर न सरक सके। चिकनापात्र तो सरककर गिरने से टूट भी सकता है। सिन्धुघाटी की सभ्यता में पाये जाने वाले छिद्रयुक्त बर्तनों का भी एक टुकड़ा अहिच्छत्रा से प्राप्त हुआ है। इस प्रकार का टुकड़ा मिलना बहुत महत्त्वपूर्ण है। (विभिन्न प्रकार के चित्रित तथा टूटे हुए पात्रों के चित्र देखिए संख्या 118-119 क पर)

वेशभूषा—पीछे बताये गये पूरे विवरण से स्पष्ट है कि धार्मिक भावना से ओत-प्रोत पांचाल-वासियों को जहाँ धर्म, दर्शन, कला, कौशल आदि बहुत प्रिय थे, वहाँ वे आधिभौतिक साधनों से भी कम प्रेम नहीं करते थे। सुसज्जित आवासस्थल, योजनाबद्ध नगर-संरचना, विभिन्न वर्णस्थ जनों से युक्त राजसभायें, वादक, नर्तक, देदीप्यमान अलंकार एवं आभूषण, नाना प्रकार की वेशभूषायें और कपड़े, गंध-द्रव्यादि प्रसाधन-सामग्री प्रभृति ये सभी पदार्थ पांचाल-संस्कृति और जीवन के प्रतीक थे। सभ्यता के इन बाह्य प्रतीकों को दार्शनिक-विद्वान् भले ही अस्थिर पदार्थ मानकर हेय समझते रहे हों, परंतु सांसारिकता में रंचे-बसे हुये व्यक्ति के लिये तो सभ्यता' के ये प्रतीक सत्य, सुंदर, आवश्यक और शाश्वत जान पड़ते हैं।

पंचाल-प्रदेश से मौर्य, शुंग, कुषाण और गुप्तकाल की कलात्मक वस्तुयें पुरुष एवं देवी-देवताओं की प्रतिमायें तथा मृन्मूर्तियाँ मिलती हैं। इनमें विभिन्न काल की वेशभूषा के उत्तम उदाहरण मिलते हैं।

साधु लोग कौपीन बाँधते थे तथा शरीर पर दुपट्टा धारण करते थे। बौद्ध-

साधु दुकूल पहनते थे। कुछ जैन-साधु नग्न भी रहते थे। उन्हें दिगंबर कहा जाता था।

स्त्रियाँ सकच्छ शाटिका (साड़ी) और कमरबंद पहनती थीं। एक अन्य प्रकार की साड़ी में एक भाग कमर में लपेट लिया जाता था। कभी कभी चूनर बगल में खोंस ली जाती थी। ओढ़नी ओढ़ने के भी अनेक प्रकार थे। जैसे-घोंघी के आकार की ओढ़नी, दोहरे किनारे की ओढ़नी, पेचदार ओढ़नी, पंखाकार ओढ़नी, बद्धी=तनी को ढकती हुई किनारेदार ओढ़नी, कहीं-कहीं स्त्रियों को टोपी और पगड़ी पहने हुये दिखाया गया है। स्त्रियाँ मजबूत साड़ियाँ बाँधती थीं। वे अपने कपड़े बहुत सुरुचि से सँभालकर पहनती थीं। उनकी धोती हस्तिशौण्डिक (हाथी के सूँड जैसी), मत्स्यवालक=मछली की पूँछ जैसी, चतुष्कोण (चौकोर), तालवृंतक (पंखे के आकार की) और शतवल्लिक=(सौ चुन्नटों वाली) ढंग की होती थी। कमरबंद भी अनेक प्रकार के दिखाये गये हैं। यथा—कलावुक-रस्सी का बना, टेढ़े साँप के आकार का, ढोल के आकार का, मणके आदि अलंकारों से युक्त।

भिक्षुणियाँ केवल एक फैंटे वाले सादे कमरबंद पहनती थीं। साधारण गृहस्थ अंतरवासक, उत्तरासंग और उष्णीष=पगड़ी पहनते थे। स्त्री-पुरुष कंचुक धारण किये हुये भी दिखाये गए हैं। एक प्रकार में एक भाग कमर में लपेटकर दूसरा भाग पीछे खोंस लिया जाता था। दूसरे प्रकार में स्त्रियां साड़ी का एक सिरा कंधे पर डाल लेती थीं। बड़ी साड़ी होने पर उसका छुट्टा भाग आगे अथवा पीछे लटका लिया जाता था। कभी-कभी साड़ी का छुट्टा सिरा वाम-स्कंध पर योजक के साथ बँधा मिलता है। ढीली साड़ी पहनने में बाँयी छाती खुली रह जाती थी तथा दुपट्टा या चादर का एक छोर कमर में खोंस लिया जाता था। स्त्रियाँ अपने जूड़ों को प्रायः शेखरकों से सजाती थीं। कहीं-कहीं मुकुट पहने भी मिलती हैं। प्रायः स्त्रियाँ नंगे सिर रहती थीं। कहीं-कहीं अपने शिरोवस्त्र को पगड़ी की भाँति सिर पर लपेटे हुये भी उत्कीर्ण मिली हैं। निर्धन स्त्रियाँ लंहगा पहने भी दिखाई देती हैं।

शुंग और गुप्तकाल में स्त्रियाँ अपने बालों में प्रायः करके चोटियाँ नहीं करती थीं। परंतु उन्हें खूब सजाती थीं। उनके केश-बंधन की अनेक विचित्र विधियों को देखकर उस युग की कुशल प्रसाधकता का अनुमान लगाया जा सकता है। मूर्तियों और मृन्मूर्तियों में प्रदर्शित धोती और साड़ी पहनने में कलात्मक ढंग की चुन्नट और सिलवटों से ज्ञात होता है कि उस युग में पुरुष और स्त्रियाँ वेशभूषा के विन्यास की कला से पूरी तरह अवगत थे। इस काल में उचित प्रकार से वस्त्र धारण का इतना महत्व था कि साहित्य में इनके लिये अनेक शब्द प्रचलित हो गये थे। जैसे—आकल्प, वेश, नेपथ्य, प्रतिकर्म और प्रसाधन[74]।

हल्के भारी और न्यूनाधिक वस्त्रों से युक्त मृन्मूर्तियों के अवलोकन से ज्ञात होता

74. अमरकोश 2,6,19

है कि ऋतु के भेद से वस्त्रों में भेद होता रहता था। साड़ियों पर पुष्प और पक्षी आदि भी चित्रित होते थे। अहिच्छत्रा से मिली एक आकर्षक मृन्मूर्ति पर एक युगल इसी प्रकार के अलंकरणयुक्त वेशभूषा धारण किये हुये आसंदी (कुर्सी) पर बैठा दिखाया गया है। अब यह मूर्ति राष्ट्रीय संग्रहालय दिल्ली में सुरक्षित है। पुरुष मूर्तियों में पगड़ियों के भी अनेक रूप मिलते हैं। यथा-चक्रदार पगड़ी, हल्की पगड़ी, त्रिकोण अलंकार से सज्जित हलकी पगड़ी, शीर्ष-पट्टयुक्त भारी पगड़ी आदि। उपर्युक्त चक्रदार=पेचदार पगड़ी भारत के अनेक भागों में आज तक प्रचलित है।

शुंगकालीन मृन्मूर्तियों में पगड़ी दो प्रकार से बाँधी हुई दिखाई गई है। एक प्रकार में सिर पर बालों का जूड़ा बाँध दिया जाता था और पगड़ी के दो फेंटे मस्तक के ठीक बीच से ले जाकर जूड़ा ढक दिया जाता था और उसके दोनों छोर खोंस दिये जाते थे। दूसरे प्रकार में पगड़ी भारी होती थी और उससे पूरा सिर ढक दिया जाता था। भरहुत की शुंगकालीन प्रस्तर मूर्तियों के विश्लेषण से 24 प्रकार की पगड़ियाँ देखने में आई हैं। इसी प्रकार पंचाल-प्रदेश से प्राप्त मृन्मूर्तियों की पगड़ियों के दो स्थूल भेदों के अतिरिक्त अनेक प्रकार के सूक्ष्मातिसूक्ष्म भेदोपभेद मिलते हैं।

पंचाल-प्रदेश के अहिच्छत्रा से प्राप्त एक मृन्मूर्ति से राजा और उसके छत्रवाहक हस्तिपक=पीलवान की वेशभूषा की जानकारी मिलती है। राजा के शीश पर गुंबददार पगड़ी बंधी है, यह पगड़ी मनकों की माला से सजी हुई है। गले, बाँह और हाथों में मनकों की मालायें पहनी हुई हैं। राजा की कमर में लंहगे के प्रकार का वस्त्र है, उसकी चुन्नटें स्पष्ट दिखाई पड़ती हैं। अंकुशधारी पीलवान एक अटपटी सी पगड़ी बाँधे हुये हैं। शरीर पर संभवतः कंचुक धारण किये हुये हैं।

पंचाल क्षेत्र से प्राप्त कुषाण कालीन प्रस्तर तथा मृन्मूर्तियों से तत्कालीन वेशभूषा की पर्याप्त जानकारी मिलती है। उस युग में प्रायः करके सकच्छ धोती बाँधते थे, उसका अधिकतर-भाग कमर में लिपटा रहता था। कंधों पर से होता हुआ तथा कोहनियों पर गिरता हुआ दुपट्टा और नाभि के पास खुंसा तथा घुटनों के मध्य लटकता हुआ पटका भी पहनते थे। धोती को नीचे खिसकने से बचाने के लिये अथवा सौंदर्य के लिये कमर-बंध भी बाँधा जाता था। फूलों के गुच्छे जैसा इसका एक छोर पैरों के बीच में लटकता रहता था। शरीर पर एक दुपट्टा भी डाल लिया जाता था, उसका प्रकार यह था कि बाँये कंधे से पीठ के पीछे होता हुआ, आगे की ओर आकर, दाहिने घुटने को ढकता हुआ, फंदे के आकार का होकर, बांई कलाई पर पड़ा रहता था। मूर्तियों में दुपट्टे धारण करने और कमर-बंध बाँधने के अनेक प्रकार पाये जाते हैं। कमर-बंध के कई फेंटों से बंधी लुंगी घुड़सवार, सईस इत्यादि पहनते थे। पुरुष प्रायः उष्णीष=पगड़ी धारण करते थे। पगड़ी पर फूलों से सजा धातु का शीर्ष-पट्ट भी बाँध लिया जाता था।*

---

* प्राचीन भारतीय वेशभूषा—डॉ० मोतीचंद्र

अहिच्छत्रा की दो मृन्मूर्तियों में दो सैनिकों को पिंडलियों से नीचे तक बंद-कोट पहने दिखाया गया है। एक सैनिक के कोट पर वृत्ताकार=गोल घेरों से अलंकरण बनाये गये हैं (चित्र सं० ८८)। दर्पण की एक प्रस्तर की डंडी पर दो-दो स्त्री पुरुष चित्रित हैं। उनमें कमर-बंध का एक भाग घुटने तक लटका हुआ दिखाया गया है। सिर पर पगड़ी बंधी है। हाथों में भारी कंगन तथा कानों में बड़े-बड़े कुंडल धारण किये हुये हैं। टखनों तक धोती पहने हुये हैं। (चित्र 108 क-ख)

उपर्युक्त वस्त्र, आभूषण और अलंकारों से युक्त कुछ मृन्मूर्तियों, प्रस्तर-मूर्तियों और कलात्मक वस्तुओं के चित्र इसी ग्रन्थ के अन्त में यथास्थान दिए गए हैं। ये सभी पुरावशेष पंचाल-राज्य से प्राप्त हुये हैं। तत्कालीन वेशभूषा, आकृति, सौंदर्य आदि का प्रत्यक्ष-दर्शन हमें इन पुरावशेषों के अवलोकन से हो जाता है। इन कलाकृतियों में भाव-गांभीर्य का प्रदर्शन इनकी सर्वप्रथम विशेषता है। प्रत्येक की अपनी अलग ही भाव-भंगिमा है। इससे पंचाल-राज्य के कलाकारों की कुशलता का परिचय मिलता है। ये कलाकृतियाँ राज्य-संग्रहालय लखनऊ, कन्नौज संग्रहालय तथा कलाप्रेमी व्यक्तिगत संग्राहकों के पास रही हैं। इन्हीं से मैंने ये चित्र संगृहीत किये हैं। गुरुकुल झज्जर के संग्रहालय में भी अहिच्छत्रा की सैंकड़ों मृन्मूर्तियां संगृहीत हैं, उनमें भी वेशभूषा के अनेक दुर्लभ उदाहरण देखे जा सकते हैं।

चतुर्थ अध्याय समाप्त॥ ४॥

❑◆❑

अध्याय 5

पंचाल राज्य की पुरातत्वीय सामग्री

(मुद्रा, मुद्रांक, शिलालेख ताम्रपत्र आदि)

प्राचीन इतिहास की स्पष्ट जानकारी के लिये उस समय के लिखित अभिलेखों का महत्व सर्वाधिक होता है। इसीलिये इतिहास निर्माण में शिलालेख, ताम्रलेख, इष्टकालेख, मोहर और मुद्राओं का योगदान अति महत्वपूर्ण तथा संदेह रहित होता है। लेख रहित पुरावशेषों से जो भी परिणाम निकाले जाते हैं, वे अनुमान पर ही आधारित होते हैं। ऐसे अनुमान कभी-कभी सत्य से दूर भी ले जा सकते हैं। इसीलिए इस अध्याय में इतिहास की ठोस जानकारी हेतु इतिहास पुरातत्व के आत्मस्थानीय मुद्रा, मुद्रांक, शिलालेख आदि का परिचय दिया जा रहा है।

मुद्रायें—पंचाल राज्य में अनेक राजवंशों और गणराज्यों की मुद्रायें मिलती हैं। यथा—कार्षापण, ढली ताम्र मुद्रायें, यौधेय, कुणिन्द, कुषाण, ससेनियन, पांचाल, कौशाम्बी, मथुरा, अयोध्या, गुप्त, गुर्जर-प्रतिहार तथा मुस्लिम शासकों की मुद्रायें।

1. कार्षापण (आहत) मुद्रायें

कालक्रम की दृष्टि से विश्व की सबसे प्राचीन मुद्रायें कार्षापण कहलाती हैं। ये भारतीय मुद्रायें हैं। प्राचीन संस्कृत, बौद्ध तथा जैन साहित्य में कार्षापण के विभिन्न तौल और आकार-प्रकार के कारण पृथक्-पृथक् नाम मिलते हैं। जैसे—पुराण, धरण, शतमान, पण, अर्धपण, पाद, अर्धमाष, माष, द्विमाष, त्रिमाष, काकिणी, अर्धकाकिणी, सुवर्ण, निष्क, पल, कृष्णल, ताम्रिक आदि। मनुस्मृति और कौटलीय अर्थशास्त्र में इनके तौल और नामों का वर्गीकरण किया गया है। अष्टाध्यायी[75], महाभाष्य, जैन तथा बौद्ध ग्रंथों में कार्षापण आदि की पर्याप्त चर्चा मिलती है।

दैनिक व्यवहार में काम आते रहने से ये मुद्रायें घिसकर तौल में कम होती रहती थीं। ऐसा होने पर इनको गलाकर पूरे तौल वाली नई मुद्रायें ढाल लेते थे।*

---

75. पणपादमाषशताद् यत्। काकिण्याश्चोपसंख्यानम्। अष्टाध्यायी, 5.1.34॥

* कार्षापण कितने पुराने हैं इसके लिए विभिन्न मत इस प्रकार हैं—

1. भारतीय प्राचीन परंपरा के अनुसार कार्षापण मुद्रायें सृष्टि के आदि काल (अर्थात् 1,96,08,53,100 वर्ष पूर्व) से चली आ रही हैं। क्योंकि मनुस्मृति ग्रंथ आदि मनु स्वायंभव द्वारा विरचित है, इसमें इन कार्षापणों का स्पष्ट और विस्तार से उल्लेख है।
2. भारत के ही कुछ विद्वानों के अनुसार वैवस्वत मनु के समय से कार्षापण मुद्रायें चलती आ रही हैं। इस मत के अनुसार ये मुद्रायें 12,05,33,100 वर्ष पूर्व से प्रचलित हैं।

—सम्पादक

नवीन इतिहासविदों की मान्यता है कि कार्षापण (पंचमार्क्ड) मुद्रायें मौर्यकालीन अर्थात् ईसा से 600 वर्ष पुरानी हैं अर्थात् आज ईस्वी सन् 2000 में 2600 वर्ष पुरानी मानी जाती हैं। भारतीय परम्परा के अनुसार मौर्यकाल 1800 ईसापूर्व में ठहरता है।* ये मुद्रायें रजत (चांदी) और ताम्र (तांबे) की बनी हुई हैं। स्वर्ण का कार्षापण अभी तक मेरे देखने में नहीं आया। सुना है कानपुर में किसी के पास एक स्वर्ण कार्षापण है।** कागज पर बनी उसकी प्रतिकृति तो हमारे देखने में आई है। वास्तविक मुद्रा देखे बिना यह नहीं कहा जा सकता कि वह असली है अथवा नकली। आहत मुद्रायें गोल, चतुष्कोण, अनेक कोण आदि विभिन्न आकारों की मिलती हैं। आकार, प्रकार, मोटाई आदि में भेद होने पर भी सभी सामान्य कार्षापण तौल में बराबर होते हैं। इन पर मानव, हाथी, नंदी, कुत्ता, मोर, मछली, मेंढक, सूर्य, सुमेरु, धनुषबाण, चक्र, नदी आदि लगभग छह सौ प्रकार के चिह्न बने मिलते हैं।

पाणिनि की अष्टाध्यायी के रूपादाहतप्रशंसयोर्यप् (५.१.१२०) सूत्र से कार्षापण का एक नाम आहत की सिद्ध है। इससे अनुमान है कि समतौल वाले धातु के टुकड़ों पर चोट लगाकर विभिन्न प्रकार के चिह्न अंकित किये जाते थे। ये मुद्रायें साँचों में ढालकर भी बनाई जाती थीं। तक्षशिला, मथुरा, कर्ण का टीला (कुरुक्षेत्र) और नौरंगबाद (भिवानी) से कार्षापण मुद्राएँ ढालने के सांचे मिल चुके हैं। चोट लगाकर (ठोककर) बनाई गई मुद्राओं की अपेक्षा सांचे में ढालकर बनाई गई मुद्राएँ अधिक चिकनी मिलती हैं। सामान्य कार्षापण 32 रत्ती के बराबर तौल का था। शतमान कार्षापण सौ रत्ती के बराबर तौल का होता था। शतमान लंबी और चपटी शलाका के रूप में पाये जाते हैं। लंबाई में ये एक इंच से अधिक ही होते हैं।

कार्षापण के प्रचलन के समय में राजा लोग सिक्कों पर अपना नाम न खुदवाकर चिह्न विशेष ही अंकित कराया करते थे। इसीलिये कार्षापणों पर नाम नहीं मिलते। सुनते हैं श्री डॉ० परमेश्वरीलाल गुप्त के पास नाम लिखी एक कार्षापण मुद्रा है। कुछ विद्वान् इन मुद्राओं को मौर्य शासकों की मुद्रायें मानते हैं। किंतु इसकी पुष्टि में कोई ठोस आधार नहीं है।

पांचाल राज्य के प्रायः सभी प्राचीन खंडहरों से कार्षापण मुद्रायें मिलती हैं। (चित्र 121)।

2. ताम्र की प्राचीन ढली मुद्रायें

विना नाम वाली कुछ विशेष प्रकार की ताम्र मुद्रायें पंचाल राज्य से पर्याप्त मात्रा में मिलती हैं। ये किस शासक की थीं, इसका ज्ञान अभी तक नहीं हो पाया है। ये चतुष्कोण और गोल दो प्रकार की होती हैं इन पर हाथी, अश्व, वृक्ष, सुमेरु

* महाभारत युद्ध कब हुआ एवं अन्य रचनायें, विरजानन्द दैवकरणि, परोपकारिणी सभा, अजमेर 1995 ईसवी।

** कानपुर के श्री बलभद्रप्रसाद वर्मा 43/34, चौक सर्राफा के पास यह मुद्रा 9 अप्रैल, 1973 के दिन थी। उसका चित्र देखिये संख्या 120 पर। —सम्पादक

आदि चित्रित मिलते हैं। ये छोटे बड़े प्रकार से अनेक तौलों में बनी मिलती हैं। इस प्रकार की मुद्रायें कन्नौज, मसून, डीह, संकिशा, कांपिल्य, रहटोइया, अहिच्छत्रा आदि पंचाल-प्रदेश के अनेक प्राचीन खंडहरों से प्राप्त होती रहती हैं। (चित्र 122)।

इसी तरह स्रुघ्न, कौशांबी, तक्षशिला, भीतर गाँव, पाटलीपुत्र, बेसनगर, वाराणसी, जौनपुर, इंदौर-खेड़ा, संचनकोट, कर्राझालरापाटन, सारंगपुर और ढाणा त्यौंदा (झुंझनूं) आदि से भी प्राप्त हुई हैं। उक्त स्थान राजस्थान, पंजाब, हरयाणा, उत्तर प्रदेश और मध्य प्रदेश के अंतर्गत हैं। इससे ज्ञात होता है कि जिस शासक की ये मुद्रायें थीं, उसका राज्य अति विस्तृत था। इतिहासकारों का कथन है कि मौर्य और शुंगकाल तक ये मुद्रायें प्रचलित रही हैं। पुराणों की वंशावली के अनुसार यह समय लगभग 1800 से 1500 वर्ष विक्रम पूर्व तक निश्चित होता है। आजकल के ऐतिह्यविद् मौर्यकाल को 600 ईसापूर्व मानते हैं।

3. यौधेय

पंचाल राज्य के अहिच्छत्रा नगर से यौधेयों की प्रथम प्रकार (आयुधजीवी प्रकार) की ताम्र मुद्रायें पर्याप्त मिलती हैं। इन पर एक ओर त्रिशूलधारी शिव को नंदी के पास खड़ा हुआ चित्रित किया गया है तथा दूसरी ओर चक्र, त्रिशूल, वज्र आदि बने मिलते हैं। अधिकतर विद्वान् इनको कोतकुल की मुद्रायें मानते हैं। इन पर यह चिह्न बना हुआ है। जैसे गुप्तकाल की स्वर्ण मुद्राओं पर काच, समुद्र, समुद्रगुप्त, चंद्र, चंद्रगुप्त और कुमार, स्कन्द आदि नाम ऊपर से नीचे लिखे मिलते हैं, उसी प्रकार यहाँ भी विद्वान् लोग इसे ऊपर से नीचे लिखा "कोत" तथा दूसरी ओर के इस चिह्न को 'बल' पढ़ते हैं। परंतु इनके उभय पक्ष में बने इस प्रकार के चिह्नों को देखने से ज्ञात होता है कि यह शस्त्र विशेष भी हो सकता है। अभी यह अन्वेषण का विषय है।

कुछ मुद्राओं पर इसी कोत पद के पास ईश्वर और बल नाम लिखे मिलते हैं। ये ईश्वर और बल (वर्मा) कोत कुल के हो सकते हैं। समुद्रगुप्त की प्रयाग प्रशस्ति में कोटकुलज नाम लिखा है। हो सकता है यह कोत और कोटकुल एक ही हो। यौधेयों का एक नाम आयुधजीवी था[76]। वे शिव, कार्तिकेय, नंदी, षष्ठी, त्रिशूल, परशु, शक्ति आदि को अपनी मुद्राओं पर अंकित किया करते थे। इन पर भी शिवनंदी, शस्त्रास्त्रादि बने हैं, इसलिये ये यौधेयों की मुद्रायें हो सकती हैं।

इसी प्रकार की मुद्रायें प्राचीन यौधेय प्रदेश (वर्तमान हरयाणा) के प्रायः सभी प्राचीन खंडहरों से पर्याप्त संख्या में मिलती हैं। सुनेत से मिले एक मुद्रांक पर भी यही चिह्न बना मिला है।

---

76. आयुधजीविभ्यश्छः पर्वते (अष्टाध्यायी 4.3.91)

इनसे परवर्ती दो यौधेय मुद्रायें भी यहाँ मिली हैं, उन पर **''यौधेयानां बहुधाञके''** लेख के मध्य यूप से बंधा नंदी एक पैर उठाकर चलते हुये चित्रित है। पृष्ठ भाग में हाथी, त्रिरत्न, झण्डा तथा सर्पाकार रेखा बनी हुई है। एक मुद्रा **''यौधेयगणस्य जय''** लेख वाली भी मिली है। इसके मुख-भाग पर शक्ति-हस्त कार्तिकेय के चारों ओर उक्त लेख लिखा है। मुद्रा के पृष्ठ भाग में पार्वती वा षष्ठी देवी के पास शंख और त्रिरत्न के चित्र बने हैं। ये दोनों प्रकार की मुद्रायें किसी यात्री आदि द्वारा ही लाई गई होंगी। क्योंकि इन दोनों प्रकार की मुद्रा के निर्माण काल में यौधेयों का राज्य पांचाल प्रदेश में निश्चय से नहीं था, यदि होता तो ये मुद्रायें अधिक मात्रा में मिलनी चाहिये थीं।

4. कुषाण

पंचाल राज्य से कुषाण शासकों की मुद्रायें ढेरों मिली हैं। इनमें अंतिम कुषाण राजा वासुदेव की मुद्रायें सर्वाधिक मिलती हैं। इससे अतिरिक्त बिमकडफिस, कनिष्क और हुविष्क की मुद्रायें भी मिलती हैं। बिमकडफिस और कनिष्क की मुद्रायें इतनी अल्प संख्या में मिली हैं कि इससे यह अनुमान लगाना कठिन है कि कभी इनका राज्य वहाँ रहा होगा। संभव है व्यापार आदि के कारण से कुछ मुद्रायें आ गई हों, वे ही कभी-कभी उपलब्ध हो जाती हैं।

विशेष बात यह है कि हुविष्क और वासुदेव कुषाण की मुद्राओं का जो पतला और लघु रूप अहिच्छत्रा में पाया जाता है, वह अन्यत्र कहीं नहीं मिलता। वासुदेव कुषाण की मुद्राओं के साथ ध्रुवमित्र तथा रुद्रगुप्त इन दो पांचाल शासकों की मुद्रायें भी मिली हैं। इससे इन शासकों का पौर्वापर्य सिद्ध करने में सहायता मिल सकती है।

1. बिकमडफिस की मुद्राओं पर मुख-भाग में भारी-भरकम शरीर वाले, त्रिशूल लिये हुये, दाढ़ी से युक्त राजा की आपाद मस्तक आकृति बनी रहती है। मुख भाग में राजा के हाथ के नीचे यह चिह्न बना रहता है दायें हाथ से राजा यज्ञकुण्ड में आहुति देता दिखाया है तथा चित्र के चारों ओर ग्रीक और खरोष्ठी लिपि में लेख लिखा मिलता है। पृष्ठ-भाग में विशालकाय नंदी के पास त्रिशूलधारी शिव को चित्रित किया गया है तथा चारों ओर खरोष्ठी लिपि में लेख लिखा है। खरोष्ठी में यह लेख है—**महारजस रजतिरजस सर्वलोग ईश्वरस महीश्वरस विमकदफिसस त्रतरस।**

2. कनिष्क की मुद्राओं पर मुख-भाग की ओर दाढ़ी वाले राजा को त्रिशूल लिये हुए, यज्ञकुंड में आहुति डालते हुये दिखाया गया है। पृष्ठ भाग में चन्द्रमा, सूर्य, वायु, अग्नि, बुद्ध, नना आदि देव-देवताओं की मूर्ति बनी रहती है। ग्रीक-लिपि में यह लेख लिखा रहता है। वैसिलियस वैसिलियन कनिष्कस ये मुद्रायें सोने और तांबे से बनी होती हैं।

3. हुविष्क की मुद्राओं के मुख-भाग पर कहीं हाथी पर सवार राजा तथा कहीं-

कहीं चौकी पर बैठे राजा को चित्रित किया गया है। चारों ओर ग्रीक लिपि में "**शाओ ननो शाओ ओइश्की कोषाणो**" लेख लिखा रहता है अर्थात् शाहानुशाह=राजाधिराज हुविष्क कुषाण। पृष्ठभाग पर नना, ओइशो, (शिव) आदि देवी और देवों की मूर्तियाँ चित्रित रहती हैं।

4. वासुदेव की मुद्राओं पर मुख-भाग में कोट पहने राजा को त्रिशूल लिये हुये, खड़ा हुआ दिखाया गया है और पृष्ठ भाग में पुरुषाकृति तथा कहीं कहीं नंदी सहित शिव को चित्रित किया गया है। इन पर राजा की ओर ग्रीक लिपि में **शाओ नानो शाओ वोजैडो कोशानो** लिखा रहता है। दूसरे प्रकार की मुद्राओं पर कहीं शासक के हाथ के नीचे ब्राह्मी अक्षरों में **वसु** लेख ऊपर से नीचे तथा कहीं दोनों पैरों के बीच में लिखा मिलता है। वासुदेव की एक नये प्रकार की मुद्रा मिली है। (चित्र 125 क)।

5. शसेनियन (सासानी) मुद्रायें

पंचाल प्रदेश के अहिच्छत्रा नामक नगर के खंडहरों से तांबे की कुछ ऐसी मुद्रायें मिलती हैं, जिनके अग्रभाग पर दायें मुख किये, दाढ़ी वाले राजा का आवक्ष चित्र बना रहता है। पृष्ठ-भाग में यज्ञ-कुंड से ज्वाला निकलती हुई दिखाई गई है। यज्ञ-कुंड के दोनों ओर दो रक्षक पुरुष खड़े हैं। मुद्रा पर पहलवी भाषा में लेख लिखा मिलता है। कला की दृष्टि से ये मुद्रायें भद्दे प्रकार की हैं। ये शसेनियन शासकों की मुद्रायें हैं। यद्यपि ये शासक विदेशी थे, परंतु स्वयं को भारतीय संस्कृति के अनुरूप ढालने से तथा उसका उपासक सिद्ध करने के लिये यज्ञकुंड को अपनी मुद्राओं पर चित्रित करवाया था।

6. गुप्त सम्राटों की मुद्रायें

पंचाल जनपद के अहिच्छत्रा तथा निकटवर्ती प्राचीन स्थलों से गुप्त शासकों की ताम्र, रजत और स्वर्ण मुद्रायें मिली हैं। इनमें समुद्रगुप्त, चंद्रगुप्त द्वितीय, कुमारगुप्त प्रथम, नन्दिगुप्त तथा हरिगुप्त की मुद्रायें हैं। चंद्रगुप्त द्वितीय की स्वर्णपत्रे से मंडित एक ताम्र मुद्रा भी मिली है[77]।

समुद्रगुप्त तथा चंद्रगुप्त की स्वर्ण मुद्रायें अहिच्छत्रा से 14 किलोमीटर दूर आँवला नामक नगर के स्वर्णकार और बजाजों के पास देखने में आई हैं। अहिच्छत्रा से प्राप्त चंद्रगुप्त द्वितीय की रजत तथा ताम्र मुद्रायें और कुमारगुप्त की ताम्र मुद्रायें गुरुकुल झज्जर के संग्रहालय में हैं। हरिगुप्त की ताम्रमुद्रा का उल्लेख डॉ० परमेश्वरी लाल गुप्त ने किया है, ऐसी दो मुद्रायें हमारी शोध परिषद् के संग्रह में भी हैं।

चंद्रगुप्त की मुद्रायें—चंद्रगुप्त द्वितीय की रजत मुद्राओं पर "**परमभागवत महाराजाधिराजश्रीचंद्रगुप्तविक्रमादित्य**" लिखा मिलता है। चंद्रगुप्त विक्रमादित्य

77. डॉ० परमेश्वरी लाल गुप्तः, गुप्त साम्राज्य का इतिहास।

की ताम्र मुद्राओं पर विभिन्न चित्र और लेख मिलते हैं। कुछ इस प्रकार हैं—पृष्ठ भाग में पूर्णघट का चित्र तथा दूसरी ओर लेख है "**चंद्रः**"। एक ओर शासक का चित्र तथा दूसरी ओर गरुड़ के नीचे—**चंद्रगुप्तः। श्रीचंद्रगुप्तः। महाराजश्रीचंद्रगुप्तः।** गुप्त शासकों के चित्रों के भी कई प्रकार हैं। जैसे—त्रिभंग मुद्रा में खड़ा हुआ राजा आहुति देता हुआ। उष्णीष और कुंडलधारी राजा का आवक्ष चित्र। त्रिभंग मुद्रा में खड़े आहुति देते हुये राजा के पीछे छत्रधारी सेवक। उंगली से संकेत करते हुये राजा का आवक्ष चित्र। एक लघु प्रकार की मुद्रा में मुख भाग में चक्र के नीचे '**चन्द्र**' तथा पृष्ठभाग में, 'गुप्त' लिखा है (चित्र 123)। एक अन्य अत्यन्त लघु प्रकार की मुद्रा में एक ओर गरुड है तथा दूसरी ओर 'चन्द्र' लिखा है।

एक रजत मुद्रा पर "चक्रगुप्त" लेख स्पष्ट रूप से पढ़ा जाता है, संभवतः लिखावट भेद से ऐसा हो गया हो और वस्तुतः चंद्रगुप्त ही नाम हो। अभी तक गुप्तों में चक्रगुप्त का नाम नहीं पाया गया है।

कुमारगुप्त—अभी तक कुमारगुप्त की छह ताम्र मुद्रायें प्रकाशित हुई हैं, दो बंबई संग्रहालय में, एक बोदलियन संग्रह, एक कलकत्ता संग्रहालय, एक सैंटपीटर्स वर्ग संग्रहालय तथा एक स्मिथ द्वारा प्रकाशित। अहिच्छत्रा से कुमारगुप्त की छह ताम्र मुद्रायें और मिली हैं—एक मुद्रा पर मुख भाग में सिर से घुटने तक चित्रित राजा त्रिभंग मुद्रा में खड़ा होकर आहुति प्रदान क़र रहा है। राजा के पीछे सेवक छत्र लिये खड़ा है। पृष्ठ-भाग में पंख फैलाये गरुड़ की मूर्ति के नीचे "**महाराज श्रीकुमारगुप्तः**" लिखा है। एक अन्य मुद्रा पर मुख-भाग में सिर से जंघा तक चित्रित राजा खड़े होकर आहुति प्रदान कर रहा है। पृष्ठ भाग में गरुड़ के नीचे "**श्रीकुमारगुप्त**" लिखा है। तीसरी मुद्रा के मुख भाग में पगड़ी बाँधे राजा का ग्रीवा-पर्यंत चित्र बना है। पृष्ठ भाग में गरुड़ के नीचे "**कुमारगुप्त**" लिखा है। चौथी मुद्रा विशेष प्रकार की है। इस पर मुख-भाग में "**कुमारः**" लिखा है। पृष्ठ भाग नितांत समतल है। यह एक ओर से ही छापी गई मुद्रा है। यह संभावना सर्वथा नहीं है कि पृष्ठ भाग का चित्र आदि मिट गया हो। यह अत्यंत दुर्लभ मुद्रा है। (चित्र सं० 124 मुद्रा 6)।

कुछ मुद्राओं पर **.....नन्दिनः** तथा **महाराज श्री नन्दिगुप्त** लिखा है। मुद्रा के पृष्ठभाग में कलश में त्रिशूल बना है। (चित्र 123 क)

एक मुद्रा पर मुख भाग में "**राज्ञः श्रीशिवनंदिनः**" तथा पृष्ठ भाग में "**कुमारगुप्तः....**" लिखा हुआ है। एक अन्य मुद्रा पर एक ओर "**महाराजहरिवर्म**" तथा दूसरी ओर श्री "**रामगुप्त**" लिखा है। ये दोनों मुद्रायें चंदौसी के संग्रहालय में हैं।

सोने का पानी किए हुए अथवा पीतल की एक गुप्त मुद्रा ऐसी भी मिली है, जिस पर एक ओर धनुर्धारिणी स्त्री चित्रित है तथा दूसरी ओर धनुर्धर व्यक्ति खड़ा दिखाया गया है। इस पर लेख नहीं है। (चित्र 125)।

7. पांचाल मुद्रायें

पंचाल प्रदेश से सर्वाधिक मुद्रायें प्रायः पांचाल शासकों की ही मिलती हैं। ये मुद्रायें धातु, आकार, प्रकार, मोटाई तथा भार की दृष्टि से अनेक प्रकार की हैं। मुख भाग में लेख के ऊपर सभी मुद्राओं पर लगभग समान चिह्न होते हुये भी पृष्ठ भाग में विभिन्न प्रकार के चिह्न बने मिलते हैं। ब्रिटिश संग्रहालय लंदन के प्राचीन भारतीय मुद्राओं के सूचीपत्र की भूमिका के पृष्ठ 117 से 119 तक पांचाल मुद्राओं पर लिखे नामों और मुद्राओं के पृष्ठ भाग में बने चिह्नों के विषय में पर्याप्त लिखा है। उसका भाव यह है कि अग्निमित्र, सूर्यमित्र, भानुमित्र, इंद्रमित्र, ध्रुवमित्र आदि नामों से युक्त मुद्राओं के पृष्ठ भाग में इन्हीं के प्रतीकात्मक संकेत चिह्न अग्नि, सूर्य, इंद्र और ध्रुव-तारा आदि के चित्र मिलते हैं। किंतु श्री एलन की यह कल्पना पूर्णतः सभी मुद्राओं में नहीं घटती। जैसे रुद्रगुप्त की मुद्रा पर रुद्र (शिव) का चित्र न होकर तीन स्तंभों का चित्र मिलता है। सूर्यमित्र और भानुमित्र की मुद्राओं पर यदि सूर्य का चित्र मानें तो दोनों शासकों की मुद्राओं का पार्थक्य कैसे सिद्ध होगा। वृषभमित्र, शिवमित्र, यज्ञबल, वरुणमित्र आदि की मुद्राओं पर नंदी, शिव, यज्ञ तथा जल आदि के चित्रों का अभाव मिलता है। साथ ही जयगुप्त, जयमित्र, वंगपाल, विश्वपाल, दामभूति, विजयमित्र, वसुसेन आदि की मुद्राओं में उक्त कल्पना घटित ही नहीं होती। वसुसेन की मुद्रा के पृष्ठ-भाग में [चिह्न], अश्व आदि के चित्र से भी यही द्योतित होता है कि श्री एलन की कल्पना सभी मुद्राओं में पूर्णतः नहीं घटती।

डॉ० कृष्णमोहन श्रीमाली ने भी एलन के उक्त विचार का प्रत्याख्यान किया है[78]। हमारा विचार है कि पांचाल मुद्राओं के पृष्ठ भाग में बने चिह्न उन-उन राजाओं की निजी मान्यता के अनुसार विभिन्न देवी-देवताओं के चित्र हैं। इन पांचाल मुद्राओं पर नाम के ऊपर तीन राजकीय चिह्न प्रायः एक ही क्रम में बने मिलते हैं। किसी-किसी शासक ने इनके पौर्वापर्य में भेद किया है। जैसे वंगपाल, वृषभमित्र, दामभूति और पुष्यसेन की मुद्राओं पर इन चिह्नों में क्रमभेद मिलता है। दामभूति की एक लघु प्रकार की मुद्रा पर नाम के ऊपर नीचे ये [चिह्न], [चिह्न] चिह्न तथा प्रजापतिमित्र की मुद्रा पर नाम के आरंभ में यह [चिह्न] एक ही चिह्न बना मिलता है। यह इसलिए कि इस शासक का नाम बहुत लम्बा है।

विना नाम वाली पांचाल मुद्रायें—जैसे हाथी और सुमेरु चिह्न से युक्त तथा विना लेख वाली, तांबे की, ढली हुई मुद्रायें मिलती हैं, इसी प्रकार पांचाल शासक भी पहले विना नाम के केवल चिह्नों वाली मुद्रायें चलाते रहे हैं। नाम वाली पांचाल मुद्राओं पर जो चिह्न बने मिलते हैं, वे ही चिह्न विना नाम वाली कुछ मुद्राओं

78. हिस्ट्री ऑफ पांचाल भाग एक, पृष्ठ 97: डॉ० मनमोहन श्रीमाली।

पर बने पाये जाते हैं। ऐसी छह प्रकार की मुद्रायें पंचाल प्रदेश से प्राप्त हुई हैं।

1. एक गोल मुद्रा पर एक ओर ठप्पे से ठोककर यह पांचाल चिह्न बना है। यह चिह्न प्रजापतिमित्र की मुद्रा को छोड़कर शेष सभी पांचाल शासकों ने अपनी मुद्राओं पर चित्रित किया है। इसके पृष्ठभाग में यह चिह्न बना है।

2. एक अन्य मुद्रा पर यह झाड़ (पौधे) जैसा चिह्न दोनों ओर ठप्पे से दबाकर बनाया गया है। यही चिह्न दामभूति, वंगपाल, वृषभमित्र, युगसेन, भद्रघोष और फाल्गुनीमित्र ने भी अपनी मुद्राओं पर पृष्ठ भाग में अंकित करवाया था।

3. एक चतुष्कोण लघु मुद्रा पर एक ओर यह चिह्न मिलता है। इसी मुद्रा के पृष्ठ भाग में यह चिह्न बना हुआ है। इन दोनों चिह्नों को सभी पांचाल-शासकों ने अपनी मुद्राओं पर स्थान दिया है। एक चतुष्कोण मुद्रा पर एक ओर यह चिह्न तथा दूसरी ओर यह चिह्न बना है।

इन चिह्नों के प्रयोग से तथा पंचाल-क्षेत्र से मिलने के कारण मेरा मत है कि ये मुद्रायें पांचाल-शासकों की ही हैं। (चित्र 127)।

नाम वाली मुद्रायें—पंचाल प्रदेश के पांचालवंशीय 40 शासकों की मुद्रायें विभिन्न लोगों को अभी तक प्राप्त हुई हैं। इनमें दो कालों की लिपि प्रयुक्त है। जिसे आजकल के लिपि-विशेषज्ञ और इतिहासकार मौर्यलिपि और कुषाण-कालीन-लिपि के नाम से व्यवहृत करते हैं। मौर्य-कालीन (अशोक कालीन) लिपि में लिखी पाँच शासकों की मुद्रायें मिली हैं। जैसे—दामभूति, वंगपाल, वृषभमित्र, विश्वपाल और पुष्यसेन। भद्रघोष और रेवतीमित्र की मुद्रायें मौर्य और कुषाण काल के मध्य की हैं। शेष सभी शासकों के नाम कुषाण-कालीन-लिपि में लिखे मिलते हैं।

दामभूति की मुद्राओं को सभी मुद्रा विशेषज्ञों ने दामगुत (दामगुप्त) की मुद्रायें बताया है। मैं समझती हूँ कि किसी एक व्यक्ति ने एक वार जो नाम पढ़ दिया तो सभी उसे वैसा ही पढ़ते चले गये। मूल लेख को ध्यान से नहीं देखा गया।

यह नाम दमगुत=दामगुप्त क्यों नहीं हो सकता? इसका उत्तर यह है कि प्राचीनकाल में प्राकृत आदि भाषाओं में भी गुप्त को ''गुत'' नहीं लिखा जाता था। उसे ''गुप्त'' ही लिखते थे, जैसा कि पांचाल-मुद्राओं में ही जयगुप्त और रुद्रगुप्त की मुद्राओं में मिलता है। मौर्य-कालीन-लिपि में ''भू'' और ''गु'' लगभग एक समान लिखे जाते थे। इसी कारण कुछ मुद्रा-विशेषज्ञों ने दामभूति नाम को ''दामगुत'' पढ़कर इसे दामगुप्त शुद्ध नाम का प्राकृत रूप बता दिया। मेरे विचार से यहाँ गुत या गुप्त न होकर भूति शब्द है। इसकी पुष्टि के लिये नौरंगाबाद (भिवानी, हरयाणा) से प्राप्त उसी युग के एक मुद्रांक पर लिखित ''नगरभूति'' लेख को यहाँ प्रमाण

के लिये दिखाया जा रहा है। (चित्र 126)।

इसके भूति पद की तुलना यदि दामभूति के भूति पद से की जाये तो सुगमता से समझा जा सकता है कि वस्तुतः दामभूति पाठ है न कि दामगुत वा दामगुप्त। प्रचलित परंपरा से हटकर बनाई गई दामभूति की दो अन्य मुद्राओं से भी यह स्पष्ट है कि भूति पद ही शुद्ध है। (चित्र 130)।

दामभूति की जिन मुद्राओं को वंगपाल ने पुनर्मुद्रित किया है, उन पर भी भूति पद स्पष्ट दिखाई देता है। (चित्र 130 क)। दामभूति के नाम का एक मुद्रांक भी इलाहाबाद के एक व्यक्ति के पास है। इसे भी पुरातत्त्व विशारदों ने 'दामगुतस' (दामगुतस्य) ही पढ़ा है।

युगसेन की मुद्रा ''प्राच्य मुद्रा परिषद्'' की पत्रिका में प्रकाशित हुई है। उसका चित्र वहीं से लिया गया है। इसका विवरण श्री वासुदेव शरण अग्रवाल ने दिया है।[79] एलन ने इसे पुंगसेन पढ़ा था।

वसुसेन की मुद्रा भी उक्त पत्रिका में छपी है। इसके पृष्ठ भाग में अश्व का चित्र है[80]। ऐसी दो मुद्राएँ हमारी शोध परिषद् में सुरक्षित हैं।

अनमित्र, आयुमित्र, अणुमित्र, रुद्रघोष और अश्वमित्र की मुद्राओं की चर्चा उक्त पत्रिका में ही श्री डॉ० कृष्णदत्त वाजपेयी ने की है।

यज्ञपाल की मुद्रा श्री वाजपेयी जी ने प्रकाशित की है[81]। इसी शासक की एक मुद्रा श्री डॉ० सदाशिव अलतेकर ने भी प्रकाशित की थी[82]। चित्र स्पष्ट न होने से यह कहना संभव नहीं है कि यह मुद्रा यज्ञपाल की है अथवा यज्ञबल की।

शिवनंदि और श्रीनंदि की मुद्रायें श्रीमाली ने अपने पंचाल के इतिहास में प्रकाशित की हैं। (भाग 1 प्लेट 11) इनपर पांचाल चिह्न नहीं हैं।

शोनकायन, वंगपाल, भागवत, आषाढ़सेन और बृहस्पतिमित्र की चर्चा पभोसा (कौशांबी) के शिलालेखों में हुई है।

इनमें से केवल वंगपाल की ही मुद्रायें मिली हैं (चित्र 131)। शेष के नाम शिलालेख से ही ज्ञात हुये हैं। पभोसा (कौशांबी) के लेख में बृहस्पतिमित्र का नाम है। वहाँ से किसी बृहस्पतिमित्र नामक शासक की ताम्र मुद्रायें भी मिलती हैं। शिलालेख वाला बृहस्पतिमित्र और मुद्रावाला बृहस्पतिमित्र एक ही है वा दो, यह निश्चय से नहीं कहा जा सकता। कौशांबी का बृहस्पतिमित्र पांचाल का शासक नहीं था।

---

79. जे० एन० एस० आई०—पार्ट 1, जून 1943
80. जे० एन० एस० आई० 11, प्लेट 10. 1940 ई०
81. जे० एन० एस० आई०, पार्ट 1,11, सन् 1962 ई०
82. जे० एन० एस० आई० 1942 ई०

दामभूति की एक ऐसी मुद्रा मिली है जिस पर नाम के ऊपर यह चिह्न तथा नाम के नीचे यह चिह्न बना है (चित्र 130)। एक अन्य मुद्रा पर ये चिह्न बने हैं। यही क्रम वंगपाल और वृषभमित्र की मुद्राओं पर मिलता है। रुद्रघोष ने भी यही क्रम अपनाया था। शेष सभी पांचाल मुद्राओं पर ये चिह्न इस क्रम से बने मिलते हैं। वृषभमित्र की मुद्रा पर पृष्ठभाग में यह चिह्न बना है।

पांच मुद्रायें ऐसी मिली हैं, जिन पर "दामभूति" नाम के ऊपर "वंगपाल" के नाम का ठप्पा लगा हुआ है। इसका अर्थ यह है कि वंगपाल ने दामभूति को परास्त किया था। वंगपाल को मुद्रायें ढालने की इतनी शीघ्रता थी कि उसने तत्काल स्वतंत्र मुद्रायें ढालने की अपेक्षा दामभूति की मुद्राओं को ही पुनर्मुद्रित करवा दिया। (चित्र 130 क)।

वंगपाल की स्वतंत्र मुद्रायें भी मिली हैं (चित्र 131)। वंगपाल की एक मोहर (मुद्रांक) अहिच्छत्रा से मिली है (चित्र 170)। इस पर यह पांचाल चिह्न भी बना हुआ है[83]। दूसरी मोहर कौशांबी से मिली है[84]। (चित्र सं० 171)

डॉ० कृष्णमोहन श्रीमाली ने एक ऐसी मुद्रा का वर्णन किया है जिसके एक ओर दमगुप्त (दामभूति) तथा दूसरी ओर वंगपाल नाम लिखा है। इससे श्रीमाली ने यह अनुमान लगाया है कि इन दोनों शासकों का साझा राज्य था।* परंतु हमारी शोध परिषद् को मिली पांच मुद्राओं से यह स्पष्ट हो गया है कि दामभूति को वंगपाल ने परास्त किया था। श्री एम०वी० एलसर ने इस मुद्रा के वंगपाल नाम को तंगपाल पढ़ा है। जबकि इस मुद्रा पर स्पष्टरूप से वंगपाल ही लिखा है।

विश्वपाल (चित्र 129) और रेवतीमित्र (चित्र 132), वसुसेन (चित्र 134) और भद्रघोस (135) की मुद्राओं पर मौर्य-कालीन-लिपि में नाम लिखे हैं। इसलिये ये राजा, वंगपाल के समीपवर्ती होने चाहियें। इसी भाँति पुष्यसेन और युगसेन की मुद्राओं पर भी लगभग इसी काल की लिपि है।

विश्वपाल की एक मुद्रा प्राचीन मुद्रा संग्रह नामक सूचीपत्र में ब्रिटिश संग्रहालय लन्दन ने छापी है। उनसे पत्र व्यवहार करके उस मुद्रा का चित्र मंगवाया है (चित्र 131 क)। इस चित्र को देखने से ज्ञात हुआ है कि यह मुद्रा विश्वपाल की न होकर वंगपाल की है। श्री एलन आदि ने इसके पढ़ने में भूल की है।

शेष राजाओं की मुद्राओं के चित्रों से यह स्पष्टतया समझ में आ सकता है

---

83. भारत के प्राचीन मुद्रांक; चित्र सं० 285 स्वामी ओमानंद सरस्वती।
84. जे० एन० एस० आई० प्लेट 11 भाग-1-2, सन् 1983 ई०
* हिस्ट्री ऑफ पंचाल भाग 1, पृष्ठ 92; भाग-2, पृष्ठ 26 : कृष्णमोहन श्रीमाली

कि उन पर कुषाणकालीन लिपि है। (चित्र 136 से 159)।

इन मुद्राओं में कुछ मुद्रायें ऐसी हैं, जो पुरातत्व जगत् में प्रथम वार ही ज्ञात हुई हैं। इनके अन्वेषण का सारा पुरुषार्थ और श्रेय प्राचीन भारतीय इतिहास शोध परिषद् (नई दिल्ली) के संस्थापक श्री विरजानंद दैवकरणि का है। जैसे—

प्रथमवार ज्ञात पांचाल मुद्रायें

1. वृषभमित्र—चित्र 128
2. दामभूति—चित्र 130
3. रेवतीमित्र—चित्र 132
4. पुष्यसेन—चित्र 133
5. भद्रमित्र—चित्र 136
6. विजयमित्र—चित्र 138
7. वसुमित्र—चित्र 139; मुद्रांक चित्र 172
8. यज्ञमित्र—चित्र 144
9. शिवमित्र—चित्र 146
10. यज्ञबल—चित्र 147
11. राज्यमित्र—चित्र 149
12. महेश्वर (संभव है यह शासक पांचाल नहीं है)—चित्र 157
13. वीरसेन—चित्र 158 (इस मुद्रा पर भी पांचाल चिह्न नहीं है)
14. राज्ञ विष्णु—चित्र 159

श्री कार्लायल ने 1880 में एक रिपोर्ट प्रकाशित की थी उसमें अणुमित्र, आयुमित्र, पुफमित्र (पुष्यमित्र), सत्यमित्र और सयमित्र (सर्वमित्र) पांचाल शासकों के नाम दिये हैं।[85] इसकी पुष्टि ए० ऐल० बाशम (रूसी विद्वान्) ने "पेपर्स आन दी डेट आफ कनिष्क" में की है। इन मुद्राओं के चित्रों के अभाव में विशेष कुछ नहीं कहा जा सकता। यहां सयमित्र सर्वमित्र न होकर सूर्यमित्र भी हो सकता है।

पुनर्मुद्रित पांचाल मुद्रायें—पांचाल-शासकों की कुछ मुद्रायें ऐसी मिली हैं, जिनको पुनर्मुद्रित किया गया है। इन मुद्राओं पर देवी अथवा पांचालों के इस ꩜ चिह्न को ठप्पे से पुनः चिह्नित किया गया है। जैसे—

1. भानुमित्र — देवी के चित्र का पुनरंकन
2. सूर्यमित्र — देवी के चित्र का पुनरंकन
3. अग्निमित्र — देवी के चित्र का पुनरंकन
4. इंद्रमित्र — देवी के चित्र का पुनरंकन
5. अग्निमित्र — सिंह के चित्र का पुनरंकन

85. जे०ए०एस०बी० 1880 ई०, पृष्ठ 21,28

6. भानुमित्र — ϕC इस चिह्न का पुनरंकन

7. भानुमित्र — ϕC इस चिह्न का पुनरंकन

8. भद्रघोष — ϕC इस चिह्न का पुनरंकन

9. सूर्यमित्र — ϕC इस चिह्न का पुनरंकन

इन मुद्राओं पर नाम के ऊपर जो तीन 'चिह्न-विशेष' बने होते हैं, उन्हीं पर देवी की लेटी हुई आकृति को पुनरंकित किया गया है, जिससे तीनों चिह्न दब गये हैं। किसी-किसी मुद्रा पर इस ϕC चिह्न को पुनर्मुद्रित किया गया है। जबकि यही चिह्न इन सभी मुद्राओं में पहले से ही बना मिलता है। इसे दोबारा चिह्नित करने का अभिप्राय क्या हो सकता है, यह ज्ञात नहीं हो पाया है। यह पुनरंकन किस शासक ने किया, यह भी अज्ञात ही है। एक संभावना यह भी हो सकती है जिस-जिस शासक की मुद्राओं का पुनरंकन हुआ है, वह उसी-उसी राजा ने करवाया होगा, क्योंकि अन्य कोई शासक करता तो नाम को अवश्य ढंकता, जबकि इनमें नाम पर ठप्पा कहीं नहीं लगाया गया। दामभूति की मुद्राओं को वंगपाल द्वारा पुनर्मुद्रित किए जाने का उल्लेख पहले हो चुका है।

एक विकट समस्या है पांचाल राजाओं को पूर्वापर स्थापित करने की। मुद्राओं पर तिथि न मिलने तथा सभी मुद्रायें एक ही प्रकार की होने से यह समस्या सुलझनी कठिन है। पुनरपि कुछेक तर्क दिये जा सकते हैं। जिससे इस विषय में कुछ कहा जा सकता है।

1. वृषभमित्र और विश्वपाल की मुद्राओं में नाम पर बने चिह्न, शेष शासकों की अपेक्षा आगे-पीछे हैं। इनकी लिपि भी अन्यों से पुरानी हैं। इससे ये दोनों पहले हुये लगते हैं।

2. दामभूति की मुद्राओं को वंगपाल ने पुनर्मुद्रित किया, इससे सिद्ध है कि दामभूति वंगपाल से पूर्ववर्ती था।

3. हरयाणा प्रांतीय पुरातत्व संग्रहालय गुरुकुल झज्जर में अहिच्छत्रा से मिला एक तथा हमारी शोध परिषद् के संग्रह में भी दो मुद्रांक (मोहर) हैं, उन पर एक सिंह के चित्र के नीचे चार पंक्तियों में लेख लिखा है।

वह इस प्रकार है—

गोमिकुलागोत्रगृहीतमहाराज

श्रीवसुमित्रमहाराज (सूर्यमि)

त्र महाराजश्रीपृथिवीमि

त्र श्रीमहाराजाच्युत (स्य)

इस मुद्रांक के लेखानुसार महाराज वसुमित्र, महाराज सूर्यमित्र, महाराज पृथिवीमित्र और महाराज अच्युत का एक क्रम मिलता है, इससे इनका इसी प्रकार पूर्वापर होना सिद्ध होता है। इस मुद्रांक में सिंह के सम्मुख ꣿ यह चिह्न बना हुआ है, इस चिह्न से तथा मुद्रांक में दिये नामों से यह पांचाल शासकों का ही मुद्रांक सिद्ध होता है। (चित्र सं० 172)

4. पंचाल प्रदेश के अनेक स्थानों से मुद्राओं के कुछ संग्रह मिट्टी के पात्रों में दबे मिले हैं। एक-एक पात्र में जिस-जिस शासक की मुद्रायें मिली हैं, उनमें पूर्वापरता का कुछ संबंध रहा होगा, यह अनुमान लगाया जा सकता है। जैसे पूरनपुर (पीलीभीत) से एक मृत्पात्र में कुछ पांचाल मुद्रायें मिली थीं। उसमें अग्निमित्र, इंद्रमित्र, विष्णुमित्र, जयमित्र और रुद्रगुप्त की मुद्रायें थीं[86]।

पांचाल मुद्राओं के विविध ढेर—

अहिच्छत्रा से विभिन्न समयों में मृत्पात्रों में कुछ मुद्रा ढेर मिले हैं। उनमें प्राप्त मुद्रायें इस प्रकार हैं—

क. इंद्रमित्र+विष्णुमित्र+जयमित्र+प्रजापतिमित्र+रुद्रगुप्त+ध्रुवमित्र+कनिष्क+ ढली ताम्र मुद्रा।

ख. रुद्रगुप्त+ध्रुवमित्र।

ग. रुद्रगुप्त+ध्रुवमित्र+वासुदेव कुषाण।

घ. रुद्रगुप्त+ध्रुवमित्र।

ङ. रुद्रगुप्त+ध्रुवमित्र।

निश्चित तिथि वाले गुप्तों तथा मुस्लिम शासकों के मुद्रा ढेरों की प्राप्ति से भी प्रायः यही सिद्ध होता है कि एक ढेर में पाई जाने वाली अनेक राजाओं की मुद्राओं में पौर्वापर्य देखने में आता है। यदि इसी विधि को अपनाया जाये तो मेरे द्वारा पीछे दी गई वंशावलि पूर्ण शुद्धता के निकटतम होनी चाहिये।

रुद्रगुप्त, ध्रुवमित्र, कनिष्क तथा वासुदेव कुषाण की मुद्राओं के एक साथ पाये जाने से प्रतीत होता है कि रुद्रगुप्त वा ध्रुवमित्र पांचालों का अंतिम शासक था, इसके साथ वासुदेव का युद्ध हुआ होगा। पराजय समय आने से पांचाल राजा पराजित हुआ और पंचाल प्रदेश पर कुषाणों का साम्राज्य स्थापित हो गया। इसी कारण अहिच्छत्रा से वासुदेव की मुद्रायें ढेरों मिलती हैं। जबकि कनिष्क की मुद्रा कभी-कभी ही मिल पाती हैं। ये भी व्यापार आदि के कारण अथवा यात्रियों द्वारा अन्य प्रांतों से लाई गई होंगी। हुविष्क की मुद्राओं का एक पतला प्रकार अहिच्छत्रा से मिलता है, उस पर सोने का झोल (पानी) किया हुआ रहता है तथा ऊपर की ओर

---

86. अहिच्छत्रा, पृष्ठ 10, डॉ० कृष्णदत्त वाजपेयी, सन् 1953।

दो छिद्र बने रहते हैं, जैसे वह गले में पहनने के लिए प्रयुक्त होता हो।

अच्यु(त) की मुद्रायें—पंचाल प्रदेश से अच्यु नाम लिखी सहस्त्रों मुद्रायें प्राप्त होती हैं। इन पर मुख भाग में "**अच्यु**" लिखा है तथा पृष्ठ भाग में चक्र बना रहता है। किसी-किसी मुद्रा के मुख भाग पर दायें, बाँये मुख किये राजा का आवक्ष चित्र बना मिलता है तथा राजा के एक ओर "**अ**" तथा दूसरी ओर "**च्युत**" लिखा रहता है (चित्र 142)। दाँये-बाँये मुख वाली मुद्रायें श्री कृष्णदत्त जी वाजपेयी (सागर) से संग्रह में हैं। श्री वासुदेव उपाध्याय ने काशी के श्री नाथशाह के संग्रह में अहिच्छत्रा से प्राप्त एक ऐसी मुद्रा देखी थी जिस पर "**अच्युत**" ऐसा पूरा नाम था।* इस शासक को बहुत से इतिहासकार पांचाल-नरेश नहीं मानते। इसमें वे तर्क देते हैं कि इसकी मुद्राओं का आकार प्रकार अन्य पांचाल मुद्राओं से नहीं मिलता तथा इसके नाम में मित्र पद भी नहीं लगा हुआ। हमारे विचार से इसका समाधान यह किया जा सकता है कि मुद्रा को परंपरागत रीति से चलाना, न चलाना तो शासक की अपनी इच्छा पर निर्भर करता है। इसी प्रकार समझदार होने पर नाम भी व्यक्ति अपनी सुविधा और इच्छानुकूल ही रखता है। परंपरायें तो बदलती रहती हैं। जैसे हम देखते हैं कि पांचालों में ही वंगपाल, विश्वपाल, यज्ञबल, वसुसेन, पुष्यसेन, रुद्रगुप्त, भद्रघोष, शोनकायन, भागवत, आषाढ़सेन, जयगुप्त और दामभूति आदि नाम देखने में आते हैं। क्या मित्रपद के अभाव में इन शासकों को भी पांचाल—राजा स्वीकार नहीं किया जाये? एक मुद्रांक पर महाराज वसुमित्र, सूर्यमित्र, पृथिवीमित्र और अच्युत के नाम लिखे हैं। इससे भी यह सिद्ध है कि अच्युत पंचाल शासक था। (चित्र 172)।

अन्य मुद्रायें—उपर्युक्त मुद्राओं के अतिरिक्त पंचाल प्रदेश से अन्य भी बहुत प्रकार की मुद्रायें मिली हैं। उनका विवरण अनुपद दिया जा रहा है।

1. महेश्वर की मुद्रा—इस मुद्रा पर मुख भाग में "महेश्वर" नाम लिखा है, इसके चतुर्दिक् एक वर्तुल बना है। पृष्ठ भाग में त्रिशूल का चित्र है। (चित्र 157)।

2. भारतीय यवन मुद्रायें—पंचाल प्रदेश के अहिच्छत्रा नामक स्थान से भारतीय यवन शासक अपोलोडोटस् (अपलदत्त) और मिनेंडर (मिलिंद) की एक-एक चतुष्कोण ताम्र मुद्रा प्राप्त हुई है (चित्र 160-161)।

3. कुणिंद मुद्रायें—अहिच्छत्रा से कुणिंद गण के राजा अमोघभूति की ताम्र मुद्राओं का पतला प्रकार कभी-कभी मिलता रहता है। हमारी परिषद् के संग्रह में कुणिंदगण की चार मुद्रायें हैं (चित्र 162)। आलमपुर ग्राम में एक व्यक्ति के पास एक रजत मुद्रा भी देखी थी। '**छत्रेश्वरमहात्मनः**' लेखवाली भी एक कुणिंद मुद्रा मिली है।

---

* एक मुद्रा सन् 1999 में मुझे भी अहिच्छत्रा से ऐसी मिली है जिस पर '**अच्युत**' पूरा लेख लिखा है। यह मुद्रा हमारी शोध परिषद् के संग्रह में है। (चित्र 142) **—सम्पादक**

4. मथुरा की मुद्रायें—पंचाल प्रदेश से मथुरा के शासक गोमित्र, कामदत्त, पुरुषदत्त और रामदत्त की मुद्रायें उपलब्ध हुई हैं।

5. केदार कुषाण—स्वर्ण से युक्त केदार कुषाण मुद्रायें भी पांचाल प्रदेश से मिलती हैं।

6. कश्मीर के शासक विनयादित्य और प्रतापादित्य की मुद्रायें भी प्राप्त हुई हैं। (चित्र 163)।

7. गुर्जर प्रतिहार शासक मिहिरभोज आदिवराह की रजत मुद्रायें पंचाल प्रदेश से प्रायः मिलती रहती हैं।

8. वल्लभी के शासक राजेन्द्रदत्त की मुद्रा भी पंचाल क्षेत्र से प्राप्त हुई है। इनसे अतिरिक्त वीरसेनस् 158, राज्ञ जयवर्मस् 164, महाराजश्रीगणेन्द्रनाग 165, श्रीमहाराजनन्दिगुप्तस्य 123-क, ...नन्दिनः 123-ख, राज्ञविष्णुसेनस 159, शिवदेवस 166, महाखतपस 167, उज्जयिनी 168, राजन्यगण 169—ये मुद्रायें भी मिली हैं। कुछ ऐसी भी मुद्रायें हैं जिन्हें मैं पहचान नहीं पाई। मेरी जानकारी में इतनी ही मुद्रायें आई हैं। संभव है अन्य ऐतिह्यविदों के पास अन्य प्रकार की तथा अन्य शासकों की मुद्रायें भी होंगी।

9. इनसे अतिरिक्त सामन्तदेव, अलाऊद्दीन खिलजी, तुग़लकशाह, फिरोजशाह तुग़लक, मुहम्मद तुग़लक आदि की मुद्रायें भी मिली हैं। इससे लगता है कि मुस्लिम काल में अहिच्छत्रा आदि स्थानों पर यत्र-तत्र लोगों की बस्ती रही होगी।

पांचाल-शासकों की मुद्राओं को पौर्वापर्य-रूप से वर्गीकृत नहीं किया जा सकता। क्योंकि इनकी बनावट और लिखाई एक समान है। यहाँ केवल लिपि के आधार पर अनुमान से इनकी वंशावलि तैयार की जा रही है। अभी तक जिन पांचाल-शासकों की मुद्रायें एवं मोहरें मिली हैं, तथा शिलालेख में जिनके नाम मिले हैं, उनके आधार पर इनकी वंशावलि निम्नलिखित प्रकार से बन सकती है। इसे हम अंतिम वंशावलि नहीं कह सकते। भावी अन्वेषण के आधार पर, नई मुद्रायें आदि मिलने से, इसमें परिवर्तन या परिवर्धन भी हो सकता है।

पांचाल-शासकों की वंशावलि

1. वृषभमित्र
2. विश्वपाल
3. दामभूति
4. शौनकायन
5. वंगपाल
6. भागवत
7. आषाढ़सेन
8. रेवतीमित्र

25. यज्ञमित्र
26. भानुमित्र
27. शिवमित्र
28. यज्ञबल
29. यज्ञपाल
30. जयगुप्त
31. राज्यमित्र
32. अश्वमित्र

9. पुष्यसेन
10. बृहस्पतिमित्र
11. युगसेन
12. वसुसेन
13. यज्ञसेन
14. भद्रघोष
15. रुद्रघोष
16. भद्रमित्र
17. वरुणमित्र
18. विजयमित्र
19. वसुमित्र
20. सूर्यमित्र
21. भूमिमित्र
22. पृथिवीमित्र
23. अच्युत
24. फल्गुनीमित्र
33. अग्निमित्र
34. विष्णुमित्र
35. इंद्रमित्र
36. जयमित्र
37. प्रजापतिमित्र
38. अनमित्र
39. आयुमित्र
40. अणुमित्र
41. रुद्रगुप्त
42. ध्रुवमित्र
43. पुष्फमित्र (पुष्पमित्र)
44. सत्यमित्र
45. शिवनन्दि
46. श्रीनन्दि
47. महेश्वर
48. नन्दिगुप्त

उपर्युक्त सूची में से जो मुद्रायें मेरे देखने में नहीं आईं, वे ये हैं—

10. बृहस्पतिमित्र, 11. युगसेन, 13. यज्ञसेन, 15. रुद्रघोष, 29. अश्वमित्र, 38. अनमित्र, 39. आयुमित्र, 40. अणुमित्र, 43. पुस्फमित्र, 45. शिवनंदि और 46. श्रीनंदि, सत्यमित्र।

मुद्राओं की धातु

प्राचीन काल में देश में स्वर्ण, रजत, ताम्र, कांस्य तथा सीसे से बनी मुद्रायें प्रचलित थीं। पंचाल प्रदेश में पांचालों से पूर्व की चांदी ताम्बे की आहत तथा ढली ताम्र मुद्रायें मिलती हैं। इससे पूर्व की स्वर्ण मुद्राओं का उल्लेख साहित्य में तो मिलता है, परंतु अभी तक देखने में नहीं आईं। महाभारत में एक लाख स्वर्ण मुद्रा देने का प्रसंग आया है[87]। पंचाल-प्रदेश महाभारत काल में अति महत्वपूर्ण स्थान रखता था। पुनरपि स्वर्ण मुद्राओं की अप्राप्ति आश्चर्यजनक है।

पांचाल शासकों की उपलब्ध मुद्रायें कांस्य और ताम्र की बनी मिली हैं। विष्णुमित्र की रजत मुद्रा का उल्लेख शुभेंद्रसिंह राय ने किया है[88]। इससे अतिरिक्त अभी तक और किसी शासक की रजत मुद्रा की चर्चा न तो कहीं सुनने में आई

87. महाभारत, वनपर्व अध्याय 90 श्लोक 7।
88. जे० एन० एस० आई० पार्ट 11 जून 1943

और न कोई मुद्रा किसी के पास देखी गई है। कई कांस्य मुद्रायें ऐसी चमकयुक्त मिलती हैं कि उसे देखकर रजत का भ्रम होता है। वस्तुतः वे होती कांस्य की हैं। श्री शुभेंदुसिंहराय की रजत-मुद्रा कहीं ऐसी ही तो नहीं रही हो। देखकर ही यह निश्चय किया जा सकता है।

पंचाल प्रदेश के मुद्रांक (मोहर)

प्राचीन इतिहास के जानने में मुद्रांकों (मोहरों) का विशेष स्थान होता है। ये मुद्रांक मूंगा, अकीक आदि उपरत्न, मिट्टी, हाथी-दाँत, स्वर्ण, रजत, तांबा आदि से बने होते हैं। विषय की दृष्टि से मोहरों का वर्गीकरण निम्नलिखित प्रकार से किया जा सकता है—

1. **धार्मिक-मुद्रांक**—ये मुद्रांक किसी मंदिर, मठ, विहार अथवा धर्मप्रचार विभाग की ओर से निर्मित होकर साधारण जनता में वितरित किये जाते थे। जैसे सुनेत से प्राप्त हुये मुद्रांकों पर लेख प्राप्त हुये हैं—धर्म कर्तव्य, सत्यवतव्य, दातव्यं भोतव्यम्, सिद्धिरस्तु।

2. **राजकीय-मुद्रांक**—ऐसे मुद्रांकों पर मुख्य शासक राजा, महाबलाधिपति, महासेनापति, सेनापति, महादंडनायक, दंडनायक (न्यायाधीश) आदि के नाम अथवा पद अंकित रहते हैं। तांबे से बने ऐसे भारी मुद्रांक ताम्र-पत्रों के साथ जुड़े हुये भी पाये जाते हैं। इनमें राजवंशावली के मुद्रांक भी ग्रहण किये जा सकते हैं।

3. **राजकीय-कार्यालय अथवा अन्य विभागों से संबंधित मुद्रांक**—
जैसे कुमारामात्याधिकरणस्य, गोपालकस्य, गोठभूतिस, गोष्ठपालकस।

4. **व्यक्तिगत नामों के मुद्रांक**—
जैसे—दामभूति, वंगपालस, नागगुप्तस्य, वरवीरदेवस्य आदि।

5. बहुत से मुद्रांक केवल व्यक्ति, पशु, पक्षी तथा स्वस्तिक आदि धार्मिक एवं राजकीय चिह्नों से युक्त मिलते हैं।

6. **जनपद, नगर, गणराज्य और स्थान-विशेष के नाम से युक्त मुद्रांक**—
जैसे—यौधेय जनपद, मालव जनपद, प्रकृतानाकनगर, यौधेयगणपुरस्कृतस्य, वृष्णिराजन्यगणपुरस्कृतस्य, नंदीपुर, स्थानेश्वर, करवीरेश्वर आदि।

अनेक मुद्रांकों पर लेख के ऊपर अथवा नीचे कहीं न कहीं राष्ट्रीय-चिह्न, धार्मिक-चिह्न, व्यक्तिगत रुचि के चिह्न तथा सेना के चिह्न आदि भी चित्रित रहते हैं।

पंचाल प्रदेश से प्राप्त मुद्रांकों पर ब्राह्मीलिपि में लिखे हुये संस्कृत और प्राकृत भाषा के लेख मिलते हैं। मुद्रांकों के अध्ययन से तत्कालीन राजव्यवहार, धर्म, नीति, मत, संप्रदाय संबंधी अनेक विषयों का ज्ञान होता है।

मुद्रांकों की निर्माण विधि—प्राचीन खंडहरों से मिले सभी मुद्रांकों का वर्गीकरण

करने से ज्ञात होता है कि सर्वत्र प्रायः एक ही प्रकार की शैली से मुद्रांकों का निर्माण होता था। किसी धातु में उल्टे खुदे लेख को कच्ची गीली मिट्टी पर दबाकर उभार लिया जाता था, उसे सुखाकर आग में पकाते थे। एक से अधिक संख्या में बनाई जाने वाली मोहरों के लिये यह प्रकार अपनाया जाता था। जैसे—

1. यौधेयगण-पुरस्कृतस्य भट्टारराज-महाक्षत्रप-महासेनापतेरप्रतिहतशासनस्य.... ।*
2. वृष्णिराजन्यगणपुरस्कृतस्य महासेनापतेर्व्वसुवृद्धपुत्रस्य जयसोमस्य।[89]
3. यौधेयानां जयमंत्रधराणाम्[89]।
4. नंदीपुरस्य।
5. विष्णुसिंहशतपतेः[90]।
6. राज्ञो अहिमित्रस्य[91]।
7. वंगपालस।

विपरीत खुदे लेख वाले मुद्रांक बनाने के लिये गीली मिट्टी के गोले को यथेष्ट आकार देकर धातु के किसी नुकीले साधन से अक्षर खोदे जाते थे। सूखने पर आग में पका लिया जाता था। मोहर की गीली अवस्था में ही पीठ की ओर मूठ अथवा छिद्र भी बना देते थे। ऐसे मुद्रांक स्याही लगाकर कागज आदि पर छापने के काम आते थे। ऐसे विपरीत खुदे मुद्रांक जनपद, गण, नगर, महाराजा, राजा, महासेनापति, सेनापति दण्डनायक, महादण्डनायक आदि राज्य के विशेषाधिकारियों के ही होते थे। जैसे—

1. मालवजनपदस।[92]
2. रैपति यौधेय-जनपद प्रकृतानाकनगर।[93]
3. भूतिनिकाय।
4. कबिकस्य। इत्यादि।

विभिन्न खुदाइयों में तथा किसान और ग्वाले आदि के द्वारा पांचाल-प्रदेश के अहिच्छत्रा, कांपिल्य आदि विविध प्राचीन खंडहरों से मुद्रांक प्राप्त हुये हैं, ये मुद्रांक पुरातत्व संग्रहालय गुरुकुल झज्जर, राज्य संग्रहालय लखनऊ तथा चंदौसी के संग्रहालय में संगृहीत हैं।

भारतीय प्राच्य मुद्रा परिषद् के अर्धवार्षिक विवरण में भी कभी-कभी पंचाल-क्षेत्र के मुद्रांकों का प्रकाशन होता रहता है।

---

* अगरोहा (हिसार, हरयाणा) से प्राप्त। खोकराकोट (रोहतक, हरयाणा) से एक इसी प्रकार का मुद्रांक अभी मिला है, उस पर महाराज महाक्षत्रप महासेनापति आदि लिखा है।
—सम्पादक

89. गुरुकुल झज्जर संग्रहालय।
90. सुनेत से प्राप्त मुद्रांक।
91. कौशाम्बी से प्राप्त मुद्रांक।
92. जयपुर संग्रहालय (राजस्थान)।
93. भारत के प्राचीन मुद्रांक, चित्र सं० 141 स्वामी ओमानंद सरस्वती।

पांचाल क्षेत्र के कुछ मुद्रांकों का विवरण यहाँ प्रस्तुत किया जाता है।

1. शासन-संबंधी मुद्रांक—

क. कुमारामात्याधिकरणस्य।

ख. श्रीअहिच्छत्राभुक्तौ कुमारामात्याधिकरणस्य।

ग. महादंडनायक..........।

राजा के जीवनकाल में ही राजकुमार को शासन-संबंधी महत्वपूर्ण उत्तरदायित्व सौंप दिये जाते थे। उसके अधिकरण=कार्यालय के मुद्रांक पर '**कुमारामात्याधिकरणस्य**' लेख लिखा मिलता है। एक मुद्रांक पर अहिच्छत्रा भुक्ति=जनपद का नाम लिखा है। एक अन्य मुद्रांक पर सिंह के नीचे महादंडनायक=महान्यायाधीश का पद लिखा हुआ है।

अहिच्छत्रा से टूटे फूटे 35 मुद्रांक तीन वर्ष पूर्व मिले थे। उनपर नन्दी, हाथी और सिंह के चित्रों के नीचे महादण्डनायक, दण्डनायक आदि पद और नाम लिखे हुए थे। श्रीर्दण्डनायकहरिभव और श्रीर्दण्डनायक नामों के मुद्रा के देखिए चित्र संख्या 223-225 पर।

इसी प्रकार के पदाधिकारियों के नामों से युक्त दो सौ से अधिक मुद्रांक संघोल (पंजाब) की खुदाई में भी मिले थे।

सेना के कार्यालय को ''बलाधिकरण'' कहते थे। भावी कार्य की सूचना देने वाला ''अग्रहार'' कहलाता था। राज्यपाल के कार्यालय को ''उपरिकाधिकरण'' कहा जाता था। इन मुद्रांकों पर गजलक्ष्मी, शंख, चक्र, पूर्णघट, सिंह, नन्दी, हाथी आदि चित्रित हैं।

2. राजाओं के मुद्रांक—पंचाल-प्रदेश से कुछ राजाओं के भी मुद्रांक मिले हैं।

(क) **दामभूतिस।**

(ख) **वंगपालस।**

(ग) **गोमिकुलागोत्रगृहीत महाराज-**
श्रीवसुमित्रमहाराजसूर्यमि-
त्रमहाराजश्रीपृथिवीमि
त्रश्रीमहाराजाच्युत(स्य)। (चित्र 172)

(क) दामभूतिस नाम को पुरालिपि-विशेषज्ञों ने दामगुतस=दामगुप्तस पढ़ा है। यह अशुद्ध है, शुद्ध नाम दामभूति है। इस मुद्रांक का विवरण श्री माली ने अपने ग्रंथ ''हिस्ट्री ऑफ पंचाल'' भाग 2 में दिया है।[94]

(ख) वंगपाल का एक मुद्रांक हरयाणा प्रांतीय पुरातत्व संग्रहालय गुरुकुल झज्जर में है। भारत के प्राचीन मुद्रांक ग्रंथ में यह प्रकाशित हुआ है[95]। (चित्र 170)

94. हिस्ट्री ऑफ पंचाल भाग 2, पृष्ठ 26 पर टिप्पणी 3, कृष्णमोहन श्रीमाली।

95. स्वामी ओमानंद सरस्वती, भारत के प्राचीन मुद्रांक चित्र संख्या 285।

वंगपाल का दूसरा मुद्रांक कौशांबी से प्राप्त हुआ है[96]। वैसे यह भी खींचतान करके ही पढ़ा जा सकता है। नाम के लिखने पढ़ने का कोई तारतम्य नहीं बैठाया जा सकता। यह नाम खुदा हुआ है। परंतु न तो यह पूरा सीधा खुदा है और न ही पूरा उल्टा। मुद्रांक की छाप लेने पर ''वग'' पद को दायें से बाँये पढ़ना पड़ता है, पुनरपि गकार का शीर्षासन हो जाता है। गकार को सीधा करके पढ़ते हैं तो ''व'' का शीर्षासन हो जाता है। पूरे मुद्रांक को देखने से लगता है कि मुद्रांकनिर्माता ने वकार का शीर्षासन कराकर खोद दिया है (चित्र 171)।

इस पांचाल राजा वंगपाल का नाम मुद्रा तथा इन दो मुद्रांकों से अतिरिक्त पभोसा (कौशांबी) के लेखों में भी मिला है। इसने अपने पूर्ववर्ती शासक दामभूति को पराजित करके उसकी मुद्राओं पर अपने नाम का ठप्पा लगवाकर अपने राज्य में चलवाया था। कालांतर में इसने अपने नाम से स्वतंत्र मुद्रायें भी ढलवाई थीं।

(ग) इस मुद्रांक के लेख का अर्थ इस प्रकार किया जा सकता है—

गोमिकुल के गोत्र में उत्पन्न व्यक्ति विशेष द्वारा गृहीत=स्वीकृत महाराज श्री-वसुमित्र (उसके पुत्र?) महाराज सूर्यमित्र (उसके पुत्र?) महाराज श्री पृथिवीमित्र (उसके पुत्र?) श्री महाराज अच्युत का (मुद्रांक)। (चित्र 172)

इस मुद्रांक में अव्यवहित चारों नामों के प्रयोग से लगता है कि ये सब पिता, पुत्र, पौत्रादि क्रम से होंगे। मुद्रांक में यद्यपि पुत्र पद लिखा नहीं है। इन चारों का एक साथ शासन मानना भी उपयुक्त नहीं है। क्योंकि इन सभी की पृथक्-पृथक् मुद्रायें मिलती हैं तथा इनके एक साथ होने का कोई हेतु भी नहीं है।

यह मुद्रांक अंतिम नाम वाले महाराज अच्युत का है। मुद्रांक के लेख के ऊपर सावधान मुद्रा में बैठा हुआ सिंह चित्रित है। सिंह के सामने यह [चिह्न] चिह्न बना है। यही चिह्न पांचाल-शासक वृषभमित्र की मुद्रा के पृष्ठभाग पर भी बना हुआ है।

स्वामी ओमानन्द सरस्वती ने इस मुद्रांक पर अह्लिलसुमित्र और भूमिमित्र नाम पढ़े हैं। ये नाम वस्तुतः श्रीवसुमित्र और पृथिवीमित्र हैं (चित्र 172)। श्री पृथिवीमित्र का एक अन्य मुद्रांक भी मिला है। इस नाम से पहले की तीन पंक्तियां घिसी हुई हैं, अतः पूरा लेख नहीं पढ़ा जा सकता (चित्र 173)।

उपर्युक्त मुद्रांक से सिद्ध है कि महाराजा अच्युत भी पांचाल के ही शासक थे[97]। ऐतिहासिक विद्वानों का विचार है कि गुप्त सम्राट् समुद्रगुप्त की प्रयाग प्रशस्ति में दो बार जिस अच्युत को पराजित करने की चर्चा है वह यही पांचाल-राज्य

95. स्वामी ओमानंद सरस्वती, भारत के प्राचीन मुद्रांक चित्र संख्या 285।
96. जे० एन० एस० आई० भाग 24, फलक 2, चित्र संख्या 12।
97. डॉ० वासुदेव उपाध्याय: गुप्त अभिलेख, पृष्ठ 252।

अच्युत था[98]। मेरे विचार से पांचालराज अच्युत समुद्रगुप्त से बहुत पहले हो चुका था। गुप्त प्रशस्ति का अच्युत दूसरा है। गुप्त शिलालेख में पठित दूसरा नाम अच्युतनन्दि हैं, जैसे शिवनन्दि, श्रीनन्दि, पद्मनन्दि, इंद्रनन्दि आदि। कुछ विद्वान् इन्हें अच्युत और नन्दि दो पृथक् नाम मानते हैं।

3. **व्यक्तिगत मुद्रांक**—पंचाल-प्रदेश के प्राचीन ऐतिहासिक स्थलों से ताम्र, अकीक, मूंगा और मिट्टी से बने अनेक मुद्रांक मिले हैं। इन पर व्यक्ति-विशेषों के नाम लिखे हैं। इनके विषय में इससे अधिक जानकारी नहीं मिल पाती। जो मुद्रांक विपरीत लेख वाले होते हैं, वे किसी राज्याधिकारी के रहे होंगे। क्योंकि राज्य की ओर से संदेश, आदेश तथा घोषणा आदि के प्रचारित-प्रसारित किये जाने पर, उन लिखित आदेशों पर अधिकारी की स्वीकृति हेतु, उसके नाम का मुद्रांक लगाया जाता है, इसीलिये ऐसे मुद्रांक इसी प्रकार के राजकीय लोगों के हो सकते हैं। जैसे—अग्निभुक, शंकरदत्त, पद्मनंदि, कबिकस्य, नन्यकस्य[99], शंकरिक। (चित्र 174)। ये मुद्रांक ताम्र से बने हैं। नामों के ऊपर वा नीचे शंख, चक्र, नंदी, पुष्प आदि चित्रित हैं। व्यक्तिगत मुद्रांक मिट्टी से भी बने मिलते हैं। इन पर किसी पर विपरीत लेख खुदा है तो किसी पर सीधे और उभरे हुये अक्षरों में नाम लिखा रहता है। जैसे—

श्रीवरवीरदेवस्य, गोठभूतिस, जबुलस्य (चित्र 174 ख), अफस्य, कुमारनंदपुत्रस्य देवनंदस्य, दामिकस्य, सिंहस्य, नागगुप्त आदि। गोठभूति नाम प्राकृत भाषा में है। संस्कृतभाषा में गोष्ठभूति है। दामिकस्य लेखयुक्त मुद्रांक सुनेत (लुधियाना) में भी मिला है।*

4. **धार्मिक मुद्रांक**—पंचाल क्षेत्र से कुछ धार्मिक मुद्रांक भी मिले हैं। जैसे—धर्मो रक्षति रक्षित, स्थावरस्य, भद्रस्य, माधव इत्यादि। इनमें से एक मुद्रांक बहुत महत्वपूर्ण है। इस मुद्रांक पर "धर्मो रक्षति रक्षित" यह मनुस्मृति (8.15) के श्लोक का द्वितीय चरण खुदा हुआ है। लाल-रंग के अकीक उपरत्न (पत्थर) पर विपरीत उत्कीर्ण किया हुआ यह अंगूठी का नग है। लेख के ऊपर परशु (कुठार=कुल्हाड़ा) और अर्द्धचंद्र बने हैं। (चित्र 175)। इन प्रतीकों का अभिप्राय है कि धर्म की रक्षा के दो ही उपाय हैं—शांति और राजदंड। चंद्रमा शांति का प्रतीक है, कुल्हाड़ा राजदंड का उपलक्षण है। यदि कोई व्यक्ति उपदेश, समझाने-बुझाने आदि शांति के उपायों से भी नहीं मानता हो और उपद्रव, उत्पात आदि करता ही रहे, तो उसको सुधारने के लिये राजदंड ही अंतिम उपाय रह जाता है। मनु जी महाराज मनुस्मृति

98. ....उद्वेल्लोदितबहुवीर्यरभसोदकेन क्षणादुन्मूल्याच्युतनागसेन......... । ....रुद्रदेवमतिल-नागदत्त-चन्द्रवर्मगणपतिनाग-नागसेनाच्युत-नन्दि-बलवर्माद्यनेकार्यावर्तराज:.......
(समुद्रगुप्त की प्रयागप्रशस्ति, पंक्ति 13-21)

99. स्वामी ओमानंद सरस्वती—भारत के प्राचीन मुद्रांक पृष्ठ 146, 149

* गोमेद पर विपरीत लेख में खुदा एक मुद्रांक अगस्त 1999 में अहिच्छत्रा से एक व्यक्ति को मिला है उस पर **भट्टचदलिय**- लिखा है (चित्र 174 क)। —सम्पादक

में लिखते हैं—

दण्डः शासति प्रजाः सर्वाः दण्डं धर्मं विदुर्बुधाः।

दंड के आश्रय से ही राजा-लोग सारी प्रजा पर शासन करते हैं, इसीलिये विद्वानों ने दंड के प्रयोग को धर्मानुकूल बताया है। उचित दंड प्रक्रिया के अभाव में आज आर्यावर्त देश की दुर्दशा किसी से छिपी नहीं है। अपराध न करने वालों पर झूठे अभियोग चलाकर उन्हें दंडित करने का प्रयास किया जाता है। ऐसे समय में बड़े कहे जाने वाले लोग असत्य साक्षी देते हुये भी लज्जा अनुभव नहीं करते। दोषी और अपराधी जन उत्कोच, घूस, लोभ, लालच देकर कारागार से अति-शीघ्र मुक्त होकर ऊधम मचाते फिरते हैं, निर्धन उन दुष्टों की शक्ति के वशीभूत होकर पिसते ही रहते हैं। इसीलिये आज धर्मपूर्वक=न्यायपूर्वक दंड की महती आवश्यकता है। **''धर्मो रक्षति रक्षित''** का अर्थ है—रक्षित किया हुआ धर्म हमारी रक्षा करता है।

मनुस्मृति में पूरा श्लोक इस प्रकार है—

धर्म एव हतो हन्ति धर्मो रक्षति रक्षितः।
तस्माद् धर्मो न हन्तव्यो मा नो धर्मो हतो वधीत्॥ 8-5॥

अर्थात् मारा जाता हुआ धर्म मारने वाले का नाश और रक्षित किया हुआ धर्म, रक्षक की रक्षा करता है। इसलिये धर्म का हनन कभी नहीं करना चाहिए। यह भय तो बना ही रहना चाहिए कि मारा जाता हुआ धर्म, कभी हमें मार ही न दे।

बौद्ध-विहारों के मुद्रांक—बौद्ध विहार, स्तूप, मंदिर आदि से संबंधित मुद्रांक भी धार्मिक मुद्रांकों की ही कोटि में आ जाते हैं। अहिच्छत्रा से एक यक्ष प्रतिमा मिली थी, जो अब यह मूर्ति लखनऊ संग्रहालय में है। इस पर यह लेख खुदा है—

भिक्षुस्य धर्मघोषस्य फरगुलविहारा अहिच्छत्रा अर्थात् अहिच्छत्रा के फरगुल विहार में धर्मघोष भिक्षुक का दान।

यह लेख कई दृष्टियों से महत्वपूर्ण है। अद्यावधि जिन पुरावशेषों में अहिच्छत्रा नाम लिखा मिला है उनमें सर्वाधिक प्राचीन यही लेख है। इससे फरगुलविहार के अस्तित्व का भी पता चलता है। यह कुषाण-कालीन किसी मुख्य-विहार का नाम है जो अहिच्छत्रा नगरी में विद्यमान था। फरगुल नाम भी अभारतीय लगता है। जैसे मिहिरकुल, मणिकुल, अफ आदि।

अहिच्छत्रा से एक योजन=चार कोस=10 किलोमीटर दक्षिण पूर्व में आँवला रेलवे स्टेशन के पास रहटोइया नामक एक ग्राम है, इसके निकट एक अति-प्राचीन खण्डहर है। इससे एक मुद्रांक मिला है, उसपर लिखा है—**हरनकरविहारे संघस।**[100] (चित्र 176)।

अर्थात् हरनकर नामक विहार में स्थित (भिक्षु) संघ का (मुद्रांक)।

अहिच्छत्रा से मिले एक अन्य मुद्रांक पर लिखा है—

100. भारत के प्राचीन मुद्रांक, चित्र सं० 306—स्वामी ओमानंद सरस्वती।

सुधर्ममहाविहारे।

लेख के ऊपर गुल्म तलाओं में त्रिशूल चित्रित है (चित्र 177)। इस मुद्रांक से सुधर्म नामक महाविहार की जानकारी मिलती है।

एक विशेष मुद्रांक—

महाभारत में लिखा है[101]—

तं तु दृष्ट्वा पुरं तच्च स्कन्धावारं च पाण्डवाः।
कुम्भकारस्य शालायां निवासं चक्रिरे तदा॥

जब पांडव लोग दक्षिण पंचाल के राजा द्रुपद की राजधानी (कांपिल्य) में गये तब उन्होंने कुंभकारशाला में निवास किया। यहाँ कुंभकार-शाला का अभिप्राय किसी धर्मशाला आदि आवासीय स्थल से है। जैसे आजकल भी नगरों में सभी वर्गों ने अपने-अपने धर्म-भवन (धर्मशालायें) स्थापित किये हुये हैं। उस समय भी संभवतः यही परम्परा रही होगी।

राजा द्रुपद ने जैसे दक्षिण-पंचाल में यह रीति प्रचलित करवा रक्खी थी, उसी प्रकार का प्रबंध उत्तर-पंचाल के नगरों में भी अवश्य रहा होगा। यद्यपि उस समय उत्तर-पंचाल द्रुपद से छीनकर द्रोणाचार्य ने ले लिया था। परंतु शासन-व्यवस्था तथा निर्माणकार्य तो उसी भाँति चल रहे होंगे।

उक्त भूमिका के पश्चात् हमारा कथन है कि अहिच्छत्रा से मिट्टी का एक मुद्रांक मिला है[102], इस पर लिखा है—

कुम्हकार सेणायै (कुंभकारसेनायै) (चित्र 178)।

जैसे दक्षिण पंचाल में कुंभकारशाला थी, उसी प्रकार उत्तर पंचाल की राजधानी अहिच्छत्रा में कुंभकारों की कोई सेना रही होगी। इस मुद्रांक की लिपि कुषाण-कालीन ब्राह्मी-लिपि सदृश है। उस समय वर्ग विशेष से संबंधित लोगों की सेनायें भी होती होंगी। जैसे—आजकल भी सेना में राजपूत, जाट, डोगरा और सिख लोगों की पृथक् सेनायें हैं। यद्यपि ऐसी सेनाओं की पुष्टि प्राचीन साहित्य से नहीं होती, पुनरपि विद्वानों के लिये यह अन्वेषणीय विषय है। प्राकृत-भाषा के कारण सेना शब्द को ''सेणा'' लिखा गया है।

अन्य मुद्रांक—कुछ अन्य मुद्रांक भी पंचाल-प्रदेश से मिले हैं। उन पर जो लेख लिखे हैं, वे इस प्रकार हैं—

श्री दौद्धस्य, महिलस, वसुजरठिकस, महादिन, शावादिनकस, श्रेष्ठिवराहमिह[103], ईश्वरपुरः, मुडपुत्रस आहिलकस, श्रीरामिकस, ओपभदस (औपभद्रस्य), भोगिकस,

---

101. महाभारत आदि पर्व, अध्याय 184, श्लोक 6
102. भारत के प्राचीन मुद्रांक, चित्र सं० 304—स्वामी ओमानंद सरस्वती
103. भारत के प्राचीन मुद्रांक, चित्र सं० 299 से 303—स्वामी ओमानंद सरस्वती

प्रवरस्य, भास्करस्य, कौदिपुत्रस देवदिनस, कृष्णवस, गोठभूतिस[104] इत्यादि। (चित्र 179-188)

जैसे ऊपर श्रेष्ठिवराहमिह लेख वाले मुद्रांक की चर्चा है, उसी प्रकार के अन्य मुद्रांक अन्यत्र भी प्राप्त हुये हैं। जैसे—

1. श्रेष्ठीनिगमस्य। 2. श्रेष्ठीश्रीदासस्य।

अर्थात् 1. सेठों के निगम=संघ=समुदाय का मुद्रांक।

2. श्रीदास नामक सेठ का मुद्रांक।

उपर्युक्त लेखयुक्त मुद्रांकों से अतिरिक्त केवल चिह्नों से युक्त मुद्रांक भी मिलते हैं। उन पर स्वस्ति तथा अस्त्रशस्त्रादि आदि अनेक प्रकार के चित्र बने मिलते हैं (चित्र 189, 190)।

संभवतः ये चिह्न किसी सेना के भाग, सार्वजनिक संस्था तथा व्यापारिक संगठन आदि के होंगे।

पंचाल राज्य के शिलालेख आदि

श्री आर० डी० बनर्जी ने ऐप्पिग्राफिका इंडिका में पंचाल प्रदेश के अहिच्छत्रा नगर से प्राप्त शिलालेख प्रकाशित कराया था[105]। वह लेख खंडित है। उसमें ग्यारह पंक्तियाँ दिखाई देती हैं (चित्र 191)।

इस शिलालेख में किसी मित्रांत नाम वाले शासक के प्रपौत्र, पौत्र तथा पुत्र के नामों की चर्चा मिलती है। शिलालेख टूट जाने से नामों की जानकारी नहीं हो सकती। एक नाम के प्रारंभ में छठी पंक्ति के अंत में "शो" पढ़ा जाता है, इससे शोनकायन नाम की संभावना की जा सकती है। वंगपाल के पिता का नाम शोनकायन था। अस्तु! इस शिलालेख से संबंधित मुख्य शासक ने अपने राज्यारोहण के प्रथम वर्ष में 11वें दिन यह लेख खुदवाया था। इसकी आठवीं पंक्ति में पांचालीय पद लिखा है। इससे अतिरिक्त कई अन्य, त्रुटित लेख शिलापट्टों पर खुदे मिले थे। (चित्र 192-195)।

5. अहिच्छत्रा से पश्चिम दिशा में स्थित ग्राम नसरतगंज के निकट एक टीला है, उसे कटारी खेड़ा कहते हैं। जनरल कनिंघम को इसकी खुदाई से एक शिला मिली थी, उस पर एक लेख खुदा हुआ था।

वह इस प्रकार था—

आचार्य इंद्रनंदिशिष्य महादारिपारास्वपतिस्य कोटारी[106]।

अर्थात् आचार्य इंद्रनंदि के शिष्य महादारी ने पार्श्वनाथ के इस कोटारी नामक

---

104. ये मुद्रांक कवि सुरेंद्र मोहन मिश्र, चंदौसी के संग्रह में हैं।

105. ऐप्पिग्राफिका इंडिका भाग 10, सन् 1909-17, पृष्ठ 107,8—आर०डी० बनर्जी

106. गिरि राजनंदन—आँवला पृष्ठ 13

मंदिर का निर्माण कराया।

7. इसी नसरतगंज ग्राम में चेतराम अहीर के घर एक ईंट लगी हुई थी, उस पर "**श्री महाराज**......आदि लेख उभरा हुआ लिखा था। अब वह लेख उसके घर में नहीं है। उसके कथनानुसार खंडहर के चौकीदार ने वह लेख ले लिया है।"*

8. उक्त ग्राम में ही एक घर के बाहरी भाग में गली में दो ईंटे लगी हुई हैं उन पर "**भागवत**" लेख खुदा हुआ है।

9. इसी नसरतगंज ग्राम से दो अन्य ईंटें मिली थीं, उन पर **गोपालैस्य अमात्य भागवत**....... आदि लिखा है। ये ईंटें गुरुकुल झज्जर के संग्रहालय में हैं।

10-11. इसी ग्राम से मुझे दो ईंटें मिली हैं, उन पर...........**र का भानुमित्रस्य पाकारिटका**...........लिखा है। ये ईंटें मैंने पुरातत्त्व संग्रहालय गुरुकुल झज्जर में प्रदान कर दी हैं (चित्र 196)। इस लेख का अभिप्राय यह भी हो सकता है कि भानुमित्र द्वारा पकाई=ईंटें (इटका=इष्टका)। जैसे आजकल भट्ठों की ईंटों पर उसके स्वामी का नाम पूरा वा संक्षिप्त लिखा रहता है। संभव है यही शैली पहले भी रही हो।**

12. अहिच्छत्रा से प्राप्त एक ईंट पर "**श्रीसूर्य्यनंदनः**" लेख उभरा हुआ लिखा है[107] (चित्र 198)। जैसे आजकल घरों से बाहर गृहस्वामी के नाम से युक्त प्रस्तर लगाने की प्रथा है, उसी प्रकार की यह उक्त ईंट है। श्री सूर्यनंदन नामक किसी व्यक्ति के घर पर यह नामपट्टं लगा हुआ होगा।

11. कभी पंचाल की सीमा कौशांबी तक रही है। कौशांबी के निकट प्रभास=पभोसा नामक स्थान में दो गुहालेख हैं। उनके लेख इस प्रकार हैं—

राज्ञो गोपालीपुत्रस
बहसतिमित्रस
मातुलेन गोपालीयेन
वैहिदरीपुत्रेण—
आसाढसेनेन-लीनं
कारितं उदकपादस
मसवछपुत्र पो-त्र अरिहं। (चित्र 199)।

दूसरा लेख इस प्रकार है—

---

* इस लेख की प्रतिकृति मैंने की थी। वह प्रतिकृति गुरुकुल झज्जर में पुराने पत्रों में रक्खी हुई है।

** ग्राम आनन्दपुर (अहिच्छत्रा) से अगस्त 1999 में एक ईंट मिली है, उस पर ....गोपालीस्यै राज्ञा जयति क्षत्रपस्य.......यह लेख लिखा है (चित्र 197) —सम्पादक

107. चंदौसी संग्रहालय

अधिछत्राया राञो शोनकायनपुत्रस्य वंगपालस्य
पुत्रस्य राञो तेवणीपुत्रस्य भागवितस्य पुत्रेण
वैहिदरीपुत्रेण आषाढसेनेन कारितं। (चित्र 200)

इन शिलालेखों में पांचाल शासकों के नाम हैं।

इन दोनों लेखों से जो वंशावली बनती है, वह इस प्रकार है—

	गोपाली	शोनकायन
	।	।
बृहस्पतिमित्र	वैहिदरी	वंगपाल+तेवणी (पत्नी)
	।	।
	आषाढ़सेन	भागवत+वैहिदरी (पत्नी)
		।
		आषाढ़सेन

माता की ओर से आषाढ़सेन की नानी गोपाली थी और उसका मामा बृहस्पतिमित्र था। पिता की ओर से शोनकायन का प्रपौत्र, (दादा)=वंगपाल और (दादी=) तेवणी का पौत्र तथा (पिता)=भागवत और (माता)=वैहिदरी का पुत्र आषाढ़सेन था, उसी ने ये दोनों गुहालेख उत्कीर्ण कराये थे।*

अहिच्छत्रा के निकटवर्ती ग्रामीणों द्वारा ज्ञात हुआ है कि बहुत सी अभिलिखित सामग्री अहिच्छत्रा पर बने सरकारी आवास के चौकीदारों के पास रहती है। उनसे पूछने पर पता लगा कि हमें तो पता नहीं, जो कुछ है इन कमरों में ही है। पुरातत्व-विभाग को ऐसे स्थानों पर कुछ जानकार और विश्वसनीय लोगों की नियुक्ति करनी चाहिये जो ऐतिहासिक-संपदा को सुरक्षित रख सकें तथा जिज्ञासुओं को उचित जानकारी भी दे सकें। सरकारी अधिकारियों से कई वर्ष तक सम्पर्क करने का प्रयास किया। बहुत यत्न करने पर प्रयास सफल हुआ। जब उक्त भवनों में देखा तो कोई अभिलेख वहाँ नहीं मिला। वहाँ विशाल मूर्तियाँ के त्रुटित भाग तथा कलात्मक ईंटे आदि रक्खी हैं।

पंचाल राज्य के ताम्रपत्र

मेरी जानकारी में पांचालप्रदेश से सम्बद्ध अभीः तक दो ताम्रपत्रों की प्राप्ति हुई है, एक महाराज हर्षवर्द्धन** का तथा दूसरा महाराज नागभट्टदेव का।

* सन् 1998 के अगस्त मास में राष्ट्रीय संग्रहालय नई दिल्ली में भारतीय प्राचीन कलाकृतियों की एक विशेष प्रदर्शनी लगी थी। उसमें जर्मन के पुरातत्त्व विभाग से अहिच्छत्रा की एक प्रस्तरमूर्ति प्रदर्शित की गई थी। उस पर यह लेख उत्कीर्ण था—**राज्ञो गोपालिपुत्रस सूर्यमित्रस बाठमदिनकशैपु........** (चित्र 200 क) —सम्पादक

** महाराज हर्षवर्द्धन के ताम्रपत्र हेतु परिशिष्ट 3 भी देखिए। —सम्पादक

अमरोहा के श्री तौफीक अहमद चिश्ती के पास मुरादाबाद जनपद से मिला 24 इंच लम्बा और 19 इंच चौड़ा (61×48 सेंटीमीटर) बहुत भारी ताम्रपत्र है। यह ताम्रपत्र महाराज श्री नागभटदेव का है। इसमें अहिच्छत्राभुक्ति के गुणपुर मण्डल विषय से सम्बद्ध शम्भुपल्लिका ग्राम का नाम है। इस ताम्रपत्र के द्वारा महाराजा ने भारद्वाज गोत्रोत्पन्न माध्यन्दिनवाजसनेयी शाखा के अध्येता ब्रह्मचारी भट्ट सूर्यरात, भट्ट रागरात, भट्ट रविरात, भट्ट नारायणरात, भट्ट प्रभाकररात और इनके कुल में उत्पन्न ब्राह्मणों को शम्भुपल्लिका नामक ग्राम दान में दिया था। इस पर संवत् .... वदि ५ अंकित है। दूत का नाम रामाख्या जनवल्लभ है।

इस ताम्रपत्र के कुछ अक्षर मुझे समझ में नहीं आये, इसलिए उनका स्थान रिक्त छोड़ दिया है। विद्वज्जन ऊहा करके पूर्ति करलें। चौदह पंक्तियों में लिखे इस ताम्रपत्र का मूल लेख इस प्रकार है—

स्वस्ति।। श्री महोदयावासितानेकनौहस्त्यश्वरथ-सम्पन्नस्कन्धावारपर-
मवैष्णवमहाराजश्रीदेवशक्तिदेवस्तस्य पुत्रस्तत्पादानुध्यातः श्रीभूयिक-
देव्यामुत्पन्नः परममाहेश्वरमहाराजश्रीवत्सराजदेवस्तस्य पुत्रस्त-
त्पादानुध्यातः श्रीसुन्दरीदेव्यामुत्पन्नः परम्भगवतीभक्तो महाराजश्रीनाग-
भटदेवः।। अहिच्छत्रभुक्तौ गुणपुरमण्डलविषयसम्बद्धशम्भुपल्लिकाग्र-
हारसमुपगतान् सर्व्वानेव मुख्यस्थाननियुक्तान् प्रतिवासिनश्च समा-
ज्ञापयति। उपरिलिखिताग्रहारस्सर्वायसमतत्युचन्द्रार्क्कक्षिति-
कालं पूर्व्वदत्तदेवब्रह्मदेय रा...ताराजशासनं दृष्ट्वाभ........पुण्यं कृत्वा म-
या पित्रोः पुण्याभिवृद्धये भारद्वाजसगोत्रमाध्यन्दिनवाजसनेयसब्र-
ह्मचारिभट्टसूर्यरात। भट्टरागरात। भट्टरविरात। भट्टनारायणरात। भ-
ट्टप्रभाकररातान्वयजब्राह्मणानां .... क्रमणे चानुमोदित इति
विदित्वा भवद्भिरनुमन्तव्यः प्रतिवासिभिरप्याज्ञाश्रवणविधेयैर्भूत्वा सर्व्वै.....समु-
पनेया इति।........पर्यन्तस्य शासनस्य स्थिराय........। दूतकोत्र.........रा-
माख्याजनवल्लभः।। सम्वत्.........ष वदि ५ निबद्धम्।। (चित्र 201)

महाराज हर्षवर्द्धन के बांसखेड़ा से प्राप्त ताम्रपत्र में अहिच्छत्रा भुक्ति की चर्चा है। वहाँ लिखा है—

सर्वसत्वानुकम्पी परमभट्टारकमहाराजाधिराजश्रीहर्षः,
अहिच्छत्राभुक्तौ वंगदीयवैषयिकपश्चिमपथकसम्बद्धमर्कटसागरे।

इससे सिद्ध है कि महाराज हर्षवर्द्धन का सम्बद्ध अहिच्छत्रा से था!

पंचाल के अन्य स्थानों से कोई ताम्रलेख प्राप्त हुये हों इसकी जानकारी मुझे अभी तक नहीं है। यदि इन खंडहरों की यथावत् खुदाई हो तो शिलालेख, स्तंभलेख,

अभिलिखित ईंटें, पात्र, ताम्रपत्र आदि बहुत कुछ मिल सकता है। वैसे जो सामग्री कभी-कभी मिलती रहती है, वह अधिकतर तो असावधानी-वश और स्थानीय लोगों की अज्ञानतावश नष्ट होती रहती है। इस कारण बहुत-सा इतिहास नष्ट हो जाता है। इसकी सुरक्षा भी अवश्य करनी चाहिए।

पंचाल प्रदेश के ताम्र-युगीन शस्त्रास्त्र

यद्यपि पंचाल-प्रदेश की जो सामग्री प्रकाश में आई है, वह अधिकतर मौर्य, शुंग, कुषाण और गुप्त-काल की है। परंतु गत कुछ वर्षों में चंदौसी के निकट स्थित बिसौली से अष्टधातु से बने अनेक शस्त्रास्त्र मिले हैं, जिन्हें ऐतिहासिक विद्वान् ताम्रयुगीन संस्कृति के अवशेष मानते हैं। इनमें मानवाकृति, बिना छिद्र की चपटी कुल्हाड़ी अथवा चौड़ी छेणी, लंबी, पतली तथा चौड़े मुख की छेणी, कांटेदार भाले इत्यादि अनेक प्रकार के शस्त्रास्त्र प्राप्त हुये हैं, (चित्र 204-210)। मानसोल्लास, औशनस धनुर्वेद और यशस्तिलक चम्पूमहाकाव्य आदि ग्रन्थों में ऐसे शस्त्रास्त्रों के परशु, कुठार, भल्ल, क्षुरप्र (Axe), कुन्त=केतकीपत्र (Harphoon), कूट (Chisel), कर्तरी (Antena Sword), शूल, कटक, तोमर, भिन्दिपाल, शक्ति, हेति, प्रास, मुद्गर, असि, गदा, मूसल, धनुषबाण, चक्र और वज्र आदि अनेक प्रकार के नाम लिखे मिलते हैं। इनके परिमाण, आकार और लक्षणों से तुलना करके ताम्रयुगीन शस्त्रास्त्रों की पहचान करनी चाहिए।

भारतवर्ष में जहाँ भी ऐसे शस्त्रास्त्र प्राप्त हुये हैं, वहाँ इनके साथ तांबे के छोटे-बड़े कड़े (चूड़ियाँ) अवश्य मिले हैं। शस्त्रास्त्रों के साथ इनके मिलने का क्या अभिप्राय है, यह ज्ञात नहीं हो सका है। कुषाण-कालीन एक प्रस्तर-मूर्ति में भाले के फलक और डंडे के बीच ऐसे कड़े (वलय) बने हुये मिले हैं। किंतु वहाँ तो सौंदर्य की दृष्टि से निर्मित किये गये हैं। युद्ध के समय साक्षात्रूप से ऐसे कड़ों का उपयोग किया जाता हो, यह संदेहास्पद ही है। हाथों में अनेक कड़े पहनकर युद्ध में शस्त्रों के प्रहार से तो बचाव हो सकता है, किंतु उन शस्त्रों में तलवार सदृश कोई शस्त्र नहीं मिलता, जिसके प्रयोग से हाथ आदि को सरलता से काटा जा सके। इस प्रकार इन कड़ों का उपयोग अभी तक अज्ञात ही है।

ग्राम मदारपुर ठाकुरद्वारा (मुरादाबाद) के पास एक व्यक्ति पुराने टीले से मिट्टी खोदकर लोगों के लिए मिट्टी की पूर्ति करता था। खोदते समय ताम्रयुगीन 31 लघुमानवाकृतियां प्राप्त हुईं। भारतीय पुरातत्त्व सर्वेक्षण विभाग आगरा क्षेत्र के अधीक्षण पुरातत्त्वविद् श्री धर्मवीर शर्मा को सूचना मिली, तो वे तुरन्त वहां गये और उनका निरीक्षण-परीक्षण किया तो ज्ञात हुआ कि ऐसी उपलब्धि प्रथम वार हुई है। (चित्र 211-212)। इनका आकार 16 सेंटीमीटर×19 सेंटीमीटर, 21.5 सेंटीमीटर×25.5 सेंटीमीटर, 23.5 सेंटीमीटर×27 सेंटीमीटर तथा 24.5 सेंटीमीटर×28 सेंटीमीटर है। वहां उत्खनन कार्य कराने की योजना है।

इसी प्रकार बहुत से शस्त्रास्त्र अमरोहा में श्री तौफीक अहमद चिश्ती के पास संगृहीत है।

पंचाल प्रदेश के ऐतिहासिक स्थलों की दुर्दशा

यद्यपि भारत सरकार के "भारतीय पुरातत्व सर्वेक्षण विभाग" ने प्राचीन भारतीय ऐतिहासिक स्मारकों की सुरक्षा का उत्तरदायित्व लिया हुआ है, पुनरपि जितना ध्यान रखा जाना चाहिये अथवा रख सकते हैं, उतना नहीं रखा जा रहा है।

उदाहरण के लिये अहिच्छत्रा को ही लीजिये। इस ऐतिहासिक स्थल की प्राचीन चारदीवारी सोलह फीट आठ इंच=5 मीटर 8 सैंटीमीटर मोटी है। इसका घेरा लगभग 5 मील=आठ किलोमीटर है। सन् 1990 में इस चारदीवारी से लाखों ईंटें निकालकर, इसका लगभग एक मील लंबा भाग नष्ट कर दिया है। मैंने उन सभी स्थानों के चित्र लेकर भारतीय पुरातत्व सर्वेक्षण विभाग नई दिल्ली के महानिदेशक के पास 29 मार्च 1990 को भेजे तथा लिखा कि अहिच्छत्रा की सुरक्षा हेतु तुरंत कार्यवाही करनी चाहिये। मेरे पत्र का तो कोई उत्तर दिया नहीं गया। अहिच्छत्रा जाने पर ज्ञात हुआ कि आगरा से विभागीय लोग आये थे, वे चौकीदारों को कह सुनकर चले गये। तब तक वे ही चौकीदार थे तथा ईंटें भी वैसे ही निकाली जा रही थीं।

भारतभर में फैले प्राचीन ऐतिहासिक स्थलों की प्रायः करके यही अवस्था है। अनेक स्थान तो आवासीय स्थल के रूप में उपयोग हेतु सरकार ने ग्रामीणों को आवंटित कर दिए हैं। जैसे नौरंगाबाद (बामला), खोकराकोट (रोहतक) और राखीगढी (हिसार) आदि। बहुत से पुरातत्त्वीय स्थल पहले ही लोगों के निवास स्थान बने होने से नये भवनों के नीचे दबे हुए हैं। जैसे राखीगढी, खोकराकोट, नरेला (दिल्ली), भादस (गुड़गांव), मथुरा, अगरोहा (हिसार)।

इन स्थानों से प्राचीन ऐतिहासिक सामग्री प्राप्त करने के लिये नये आवास को उजाड़ना पड़ेगा, जो लोकतन्त्र से चलने वाली किसी भी सरकार के बलबूते से बाहर की बात है। इसलिये ऐसे स्थानों के नीचे दबा हुआ इतिहास जनता के सम्मुख कभी आ सकेगा, इस राज्य प्रणाली के रहते हुए इसकी सम्भावना ही नहीं के बराबर है, क्योंकि बहुत से प्राचीन स्थानों से इसी प्रकार ईंटें निकाल कर नये भवनों का निर्माण हो रहाहै। कहीं राजमार्ग बनाए जा रहे हैं तो कहीं नहर और नालों के निर्माण से ऐसे स्थल नष्ट होते जा रहे हैं। ऐसी परिस्थिति में कोई इतिहास अन्वेषणकर्ता विवश रहने के अतिरिक्त और कर ही क्या सकता है।

अहिच्छत्रा की जो चारदीवारी नष्ट की गई थी उसके चित्र देखिए (संख्या 213-214 पर)।

पंचम अध्याय समाप्त॥५॥

षष्ठ अध्याय

क्या पांचाल-शासक शुंग वंशीय थे ?

भारतीय इतिहास के विद्वानों के संमुख इतिहास विषयक अनेक जटिल प्रश्न और गंभीर समस्यायें हैं। जैसे—

1. महाभारत युद्ध की सही तिथि क्या है ?

2. महात्मा बुद्ध और महावीर जैन का वास्तविक समय क्या है ?

3. सिकंदर के आक्रमण के समय भारत में चंद्रगुप्त मौर्य का शासन था अथवा गुप्त-सम्राट् समुद्रगुप्त का ?

4. शक और विक्रम संवत् का प्रचलन किसने किया ? क्या किसी शूद्रक हर्ष नामक राजा ने भी शक वा हर्ष संवत् चलाया था ?

5. ऐहोल शिलालेख के आधार पर पुलिकेशी और हर्ष का समय कौन सा है ? संस्कृत में लिखे तिथिविषयक श्लोकों का शुद्ध अर्थ कौन-सा है।

6. 25-30 भारतीय यवन शासकों ने भारत में कब, कहाँ और कितने समय तक शासन किया, क्योंकि इनकी मुद्रायें मिलती हैं तथा चार स्थानों पर तो 8 शासकों की टकसाल भी मिल चुकी है।

7. महाकवि कालिदास और आदि शंकराचार्य कब हुये ?

8. इसी प्रकार की एक समस्या है कि पांचाल-राजा शुंग-वंशीय थे अथवा नहीं।

भारतीय साहित्य, शिलालेख, मुद्रा एवं ताम्र लेखों के आधार पर हमारी प्राचीन भारतीय इतिहास शोध परिषद् ने उक्त सभी समस्याओं का सप्रमाण समाधान निकाल लिया है। आश्चर्य की बात है कि उक्त सभी समाधान प्रचलित मान्यताओं से नितांत भी मेल नहीं खाते जबकि प्राचीन ऐतिहासिक परंपरा से कोई विरोध नहीं बैठता। यहाँ तो प्रसंगवश अंतिम प्रश्न ही विचारणीय है।

शुंग शासकों की वंशावलि—मत्स्य, वायु, विष्णु, ब्रह्मांड और भागवत पुराण में शुंग वंशीय शासकों की वंशावलि दी हुई है। वह इस प्रकार है—

1. पुष्यमित्र
2. अग्निमित्र
3. वसुज्येष्ठ
4. वसुमित्र
5. अंधक (ओद्रक)
6. पुलिंदक
7. घोष
8. वज्रमित्र
9. भागवत
10. देवभूति

पुराणों के अनुसार इन दश शासकों ने 120 वर्ष तक राज्य किया।

पंचाल प्रदेश के 48 पांचाल राजाओं के नाम मुद्रा, मुद्रांक तथा शिलालेखों से मिल चुके हैं। शुंग-वंशीय शासकों के नामों से पांचाल-शासकों की तुलना करने से पता लगाता है कि अग्निमित्र, वसुमित्र और भागवत ये तीन नाम ऐसे हैं जो दोनों वंशों की सूचियों में समान हैं।

अग्निमित्र पांचाल तथा वसुमित्र पांचाल की मुद्रा मिल चुकी हैं। पभोसा (कौशांबी) के शिलालेख में भागवत नाम लिखा है, वहाँ इसे वंगपाल का पुत्र लिखा है। वंगपाल की मुद्रायें और मोहर मिले हैं। कुछ इतिहासज्ञ घोष नाम वाले शुंग शासक को भद्रघोष पांचाल के साथ जोड़ते हैं। किंतु रुद्रघोष पांचाल की मुद्रायें भी मिली हैं, यदि रुद्रघोष नाम ठीक पढ़ा गया है तो ऐसी अवस्था में घोष को भद्रघोष के साथ ही क्यों जोड़ा जाये? अहिच्छत्रा से मिली अनेक शासकों के नामों वाली एक मोहर में वसुमित्र नाम लिखा है।

पांचाल-राजा शुंग-वंशीय थे अथवा नहीं, इस विषय में विद्वानों ने विभिन्न मतों का प्रतिपादन किया है। जैसे—सच्चिदानंद त्रिपाठी का मत है—पुराण वंशावली में दी गई शुंग राजाओं की सूची से अतिरिक्त भी अनेक ऐसे पांचाल-राजा हैं जिनके नाम मुद्रा, प्रस्तर और स्तंभ लेखों में मिलते हैं, साहित्य में उनकी चर्चा कहीं नहीं मिलती। मुद्रा आदि से ज्ञात राजाओं के नाम मित्र पदांत हैं, इससे यह संदेह होता है कि कदाचित् ये उसी वंश के राजा हैं, जिसमें पुष्यमित्र और अग्निमित्र उत्पन्न हुये थे। इतिहासकारों के लिये बहुत कठिन समस्या है कि वे इन्हें कहाँ स्थान दें। सिक्कों से अतिरिक्त भरहुत, बोधगया और हाथी-गुम्फा के लेखों में भी इसी प्रकार के बहुत नाम मिलते हैं। बोधगया के परकोटे पर इंद्रमित्र अथवा इंद्राग्निमित्र तथा ब्रह्ममित्र नाम मिलते हैं। हाथी गुम्फा लेख में मगधराज बृहस्पतिमित्र का नाम लिखा है।

डॉ० राय चौधरी इनमें से अनेक नामों का मिलान पुराण निर्दिष्ट शुंग और कण्व वंशी राजाओं से करते हैं। जैसे भद्रघोष पांचाल का शुंगवंशी सप्तम शासक घोष से समीकरण किया है। जेठमित्र को अग्निमित्र के उत्तराधिकारी वसुज्येष्ठ से मिलाया है। निस्संदेह इन नामों की स्थिति ठीक तरह से नहीं बतलाई जा सकती। किंतु उनमें से अधिकांश ऐसे राजा होंगे जो वासुदेव कण्व द्वारा शुंग राज्य हस्तगत कर लेने के पश्चात् बच गये होंगे[108]।

समीक्षा—डॉ० राय चौधरी के मत के विषय में हमारा कथन है कि घोष का समीकरण भद्रघोष से ही क्यों किया जाये, रुद्रघोष के साथ क्यों नहीं, क्योंकि श्री कृष्णदत्त वाजपेयी के अनुसार पंचाल-क्षेत्र से रुद्रघोष का सिक्का भी मिला है। जेठमित्र का समीकरण कौशांबी के जेठमित्र से क्यों नहीं किया जाता। वसुज्येष्ठ से मिलान करना दुरूह तथा हास्यास्पद कल्पना है। इन दो अधूरे नामों के समीकरण

108. शुंग कालीन भारतवर्ष पृष्ठ 43-45 विश्वविद्यालय प्रकाशन वाराणसी 1977 ई०

के पश्चात् भी 46 शासक बचे रह जाते हैं, उनसे कैसे छुटकारा पायेंगे। जब वसुदेव कण्व ने शुंग-राज्य हस्तगत कर ही लिया, पुनः वहाँ शुंग-राजा बच ही कहाँ गये जो वसुदेव के बाद के माने जायें? क्या किसी का राज्य छिन जाने के बाद भी 48 राजाओं की परंपरा लगातार चलती रह सकती है। मित्रांत नाम तो अयोध्या और मथुरा के शासकों के भी मिलते हैं, उनके साथ समीकरण क्यों नहीं किया गया?

इस उद्धरण में एक भी ऐसा अकाट्य तर्क वा प्रमाण नहीं है जो पांचाल-राजाओं को शुंग-वंशीय सिद्ध कर सके। केवल अपना मत अभिव्यक्त करने मात्र से कोई सिद्धांत निश्चित नहीं हो जाया करता। उसकी पुष्टि के लिये प्रमाण देने आवश्यक हुआ करते हैं। केवल अग्निमित्र, वसुमित्र और भागवत नाम ऐसे हैं जो दोनों वंशों में समान है। यदि ये नाम साम्य ही पांचाल अग्निमित्र आदि को शुंगवंशीय बना सकते हैं तो कौशांबी से प्राप्त होने वाली अग्निमित्र की मुद्रायें भी शुंग-वंशीय अग्निमित्र की मानी जानी चाहियें, किंतु कोई नहीं मानता, जबकि दोनों मुद्राओं की लिपि एक जैसी है। आकार-प्रकार चिह्न आदि में भेद अवश्य है। कौशांबी से मिलने वाली जेठमित्र की मुद्राओं को वसुज्येष्ठ शुंग की मुद्रायें मानना भी अयुक्त है। क्योंकि प्रथम तो नाम में ही भेद है। जेठमित्र के स्थान पर वसुजेठ नाम भी लिखा जा सकता था। पंचाल-क्षेत्र से मिलने वाली मुद्राओं में वसुज्येष्ठ अथवा जेठमित्र से मिलता-जुलता नाम भी अभी तक कोई नहीं मिला है।

डॉ० राय चौधरी अपने एक मत पर स्थिर नहीं रहते, कभी वे कौशांबी की मुद्राओं का प्रमाण देने लगते हैं तो कभी अहिच्छत्रा में पायी जाने वाली मुद्राओं का उद्धरण देते हैं। जबकि दोनों स्थानों की मुद्राओं के धातु, रूप, रंग; तौल, आकार-प्रकार, शैली तथा राजकीय चिह्नों में कोई भी साम्यता नहीं है।

वासुदेव कण्व ने जब इतना विशाल शुंग-साम्राज्य अधीन कर लिया था तो क्या उससे ये छोटे-छोटे स्थानीय शासक नहीं जीते जा सकते थे? यदि जीत सकता था वा जीतकर अधीन कर लिया था तो इनको निज-नाम से स्वतंत्र मुद्रा-निर्माण की स्वीकृति कैसे दे दी जबकि वह अपनी मुद्रायें ढलवा ही नहीं पाया, क्योंकि वासुदेव कण्व की कोई मुद्रा आज तक नहीं मिल पाई है।

प्रोफेसर रैप्सन का कथन है कि पांचाल-राजा स्वतंत्र शासक थे। ये शुंगकाल में मगध-साम्राज्य के अंतर्गत थे। जब वासुदेव कण्व ने शुंग-सिंहासन पर अधिकार स्थापित कर लिया तो इन्होंने स्वतंत्र होकर केंद्रीय सत्ता से अपना संबंध विच्छेद कर लिया। मथुरा का मित्र वंश भी शुंग-साम्राज्य का एक मांडलिक क्षेत्र था। प्रयाग के निकट पभोसा के एक लेख के अनुसार उस गुहा का निर्माण शुंग वंश के पाँचवें शासक ओद्रक के शासन काल में हुआ था। इसका दाता आषाढ़सेन का मातुल (मामा) बहसतिमित्र था। इस समय का दूसरा राज्य पंचाल था, जिसकी राजधानी अहिच्छत्रा थी। इस प्रकार ये सभी शुंगवंशी सरदार थे। इनका संबंध शुंग-सम्राटों से था। मथुरा, कौशांबी और अहिच्छत्रा से प्राप्त अनेक सिक्के इन्हीं राजाओं के

काल के हैं। निष्कर्ष यह है कि शुंग-साम्राज्य में अनेक प्रांतीय राजधानियाँ थीं। वहाँ का शासन राजकुमारों के हाथ में रहता था। ये प्रांत मगध साम्राज्य के अंतर्गत पूर्णरूपेण स्वतंत्र थे। शुंग-साम्राज्य के नष्ट होने और कण्व-वंशीय वासुदेव द्वारा शासनसत्ता हथिया लेने से प्रांतीय-शासक केंद्र से सदा के लिये अलग हो गये। मित्र राजाओं के सिक्के इसी ओर संकेत करते हैं।

समीक्षा—प्रो० रैप्सन का मत है कि पांचाल-राजा केंद्रीय सत्ता से पृथक् हो गये थे। यह कैसी असंभव बात है कि शुंग-वंशीय केंद्रीय प्रमुख-शासक तो अपने नाम की मुद्रायें न चलायें और प्रांतीय स्वतंत्र-शासक लगातार अड़तालीस पीढ़ियों तक मुद्रायें ढालते रहें।

इसलिये वास्तविकता यह है कि—शुंग तथा पांचालवंशीय ये दोनों दो पृथक् और स्वतंत्र शासक थे। यदि पांचाल राजा ही शुंग-वंशीय होते तो पुराणों की वंशावली में इनके नाम अवश्य मिलने चाहियें थे। अयोध्या, कौशांबी, मथुरा और पंचाल के मित्रांत नाम वाले शासकों की सभी मुद्राओं की लिपि भी एक काल की नहीं है। सभी नामों के अंत में मित्र शब्द नहीं मिलता, अपितु भूति, सेन, पाल, बल, गुप्त और घोष पदांत वाले नाम भी अनेक राजाओं के मिलते हैं।

पभोसा के गुहालेख का प्रमाण देना भी अयुक्त है। उस लेख के अनुसार ओद्रक के राज में वह गुहा बनवाई। इसके निर्माणार्थ बृहस्पतिमित्र के भानजे आषाढ़सेन ने दान दिया था, उस समय बृहस्पतिमित्र कौशांबी में शासन कर रहा था और उसी समय अहिच्छत्रा में आषाढ़सेन निवास कर रहा था। क्या इन सभी को शुंगवंशीय माना जाये।

मेरे विचार से पांचाल-नरेश स्थानीय स्वतंत्र शासक थे। मुद्रांक, मुद्राओं और शिलालेखों से 48 राजाओं का अभी तक पता लगाया जा चुका है। इतनी लंबी राज-परंपरा मुद्राओं आदि के द्वारा अन्य किसी राजवंश की अभी तक नहीं मिली है। पंचाल-राज्य महाभारत युद्ध के पहले से ही स्वतंत्र रूप से चला आ रहा है। उस समय प्रवाहण जैबलि आदि प्रसिद्ध शासक और ब्रह्मवेत्ता थे। ये सभी चन्द्रवंशी क्षत्रिय थे। मागध-शुंगों से इनका रक्त संबंध प्रतीत नहीं होता। राजनीति की दृष्टि से भले ही ये एक दूसरे के सहयोगी रहे हों। कौशांबी से प्राप्त मुद्राओं वाले अग्निमित्र आदि राजा भी पांचाल-राजाओं से भिन्न ही थे। पांचाल-शासक शुंगवंशीय न होकर गोमिकुल से संबंधित हो सकते हैं। अहिच्छत्रा से प्राप्त हुई मुहरों का लेख इसमें प्रमाण है। शुंग-काल में शासकों द्वारा अपने नाम से स्वतंत्र राजमुद्रा-निर्माण-परंपरा की पुरातात्विक दृष्टि से अभी तक पुष्टि नहीं हो पाई।

एक संभावना यह भी हो सकती है कि मुद्राओं से ज्ञात पांचाल-शासक शुंगों के अंतिम काल में आरंभ हुये होंगे, क्योंकि दामभूति, वंगपाल, वृषभमित्र, विश्वपाल आदि की मुद्राओं पर शुंगकालीन ब्राह्मी-लिपि मिलती है। शुंग-वंश का अंतिम

शासक देवभूति था। उससे वासुदेव कण्व ने राज्य छीन लिया। संभवतः इसी देवभूति का दामभूति नामक कोई पुत्र युद्ध से बचकर पांचाल नरेश विश्वपाल या वृषभमित्र की शरण में आ गया और उसको मारकर आप राज्य पर अधिकार करके नये प्रकार की मुद्रायें चला दीं। इस दामभूति की प्रारंभिक मुद्रायें पांचाल-वंशीय मुद्राओं से पृथक् ढंग की हैं। परंतु कालांतर में ढाली गई मुद्रायें पूर्ववर्ती राजा विश्वपाल और वृषभमित्र की मुद्राओं के अनुकरण पर तैयार करवाई गईं। इस दामभूति को वंगपाल ने पराजित किया और इसी की प्रचलित मुद्राओं पर वंगपाल ने अपना ठप्पा लगवाकर उनको पुनः प्रचलित करवाया। पंचाल-प्रदेश से प्राप्त मुद्राओं का गहन अध्ययन और विश्लेषण करने से यह तथ्य सामने आता है। अन्यथा परंपरा से हटकर नितांत पृथक् प्रकार की मुद्रायें चलाना और उन मुद्राओं को वंगपाल द्वारा तुरंत नाम बदलकर चलाना किसी विशेष घटना को द्योतित करता है।

पभोसा लेख में वंगपाल को अहिच्छत्रा का शासक लिखा है। यह शोनकायन का पुत्र था। संभवतः शोनकायन विश्वपाल या वृषभमित्र के राज्य में विशेष अधिकारी रहा होगा।

इस प्रकार उक्त कथन से स्पष्ट है कि पांचाल-नरेश स्वतंत्र शासक थे।

पांचाल-राजाओं का तिथिक्रम

पंचाल-प्रदेश में महाभारत से पूर्व भी अनेक शासक हो चुके थे। महाभारत के पश्चात् होने वाले 27 शासकों की चर्चा पुराणों में आई है। परंतु इनके पश्चात् पुरातत्व साक्ष्यों से जिन पांचाल-शासकों के नाम ज्ञात हुये हैं, वे 48 शासक हैं। उनका समय निर्धारित करना अति दुष्कर कार्य है। पुनरपि कुछ सूत्र हैं जिनका विशदीकरण और विश्लेषण करने से तथ्यों तक पहुँचा जा सकता है।

1. पांचाल शासकों की मुद्राओं पर जो लिपि मिलती है उसे हम मौर्य, शुंग और कुषाण-कालीन लिपि कह सकते हैं। इससे सिद्ध है कि अशोक-मौर्य और हुविष्क-कुषाण के मध्यवर्ती समय में ये पांचाल-राजा विद्यमान थे।

2. ध्रुवमित्र तथा रुद्रगुप्त की मुद्रायें, वासुदेव-कुषाण की मुद्राओं के साथ एक ही पात्र में अनेक स्थानों से प्राप्त हो चुकी हैं[109]। इससे अनुमान लगाया जा सकता है कि ध्रुवमित्र और वासुदेव अथवा रुद्रगुप्त और वासुदेव कुषाण समकालीन थे। और वासुदेव ने इनमें से किसी एक पांचाल शासक को पराजित किया था। इसीलिये इनकी मुद्रायें साथ-साथ दबी मिलती हैं। जैसे कि यौधेयों की जयप्रकार वाली मुद्रायें, वासुदेव कुषाण की मुद्राओं के साथ प्रायः करके मिलती रहती हैं।

3. शुंगकाल के अंतिम शासक का नाम देवभूति था। वह अत्यन्त विलासी और स्त्रीलोलुप था। उसने अपने अमात्य वसुदेव कण्व की पुत्री से भी बलात्कार करना

---

109. क्वाइंज होर्डस् इन उत्तर प्रदेश

चाहा था। इस कारण वसुदेव ने देवभूति की दासी-पुत्री के द्वारा देवभूति का वध करवा दिया। परन्तु उसके परिवार की हत्या नहीं कराई गई। पंचाल से दामभूति नामक एक शासक की मुद्रायें मिली हैं। यह संभावना हो सकती है कि देवभूति का दामभूति नामक पुत्र अपने पिता की हत्या के पश्चात् भय के कारण भागकर पांचाल-राजा के पास शरण में आ गया हो और वहाँ जैसे-तैसे शासन प्राप्त करके अपनी मुद्रा चला दी हो। इस दामभूति की मुद्राओं पर वंगपाल ने अपने नाम का ठप्पा लगाकर पुनः प्रचलित किया था। कहीं-कहीं दामभूति नाम पूरी तरह नहीं कट पाया। किसी-किसी मुद्रा पर एक ओर दामभूति नाम तथा दूसरी ओर वंगपाल का नाम मिलता है। इससे सिद्ध है कि दामभूति को वंगपाल ने परास्त कर दिया था। हो सकता है इस बाह्य शासक को पंचाल-वासियों ने सहन नहीं किया हो और उसे तुरंत पराजित कर दिया हो।

वासुदेव-कुषाण के पश्चात् पंचाल के किसी शासक की मुद्रायें देखने में नहीं आतीं। इसके तुरंत पश्चात् चंद्रगुप्त, कुमारगुप्त और हरिगुप्त की मुद्रायें प्राप्त होती हैं। इससे ज्ञात होता है कि अंतिम पांचाल-शासक ध्रुवमित्र वा रुद्रगुप्त को वासुदेव कुषाण द्वारा पराजित करने के पश्चात् पांचालों का वंश समाप्त हो गया। कोई छोटा-मोटा रहा होगा उसे गुप्तों ने समाप्त कर दिया होगा।

5. अनेक पांचाल-राजाओं की मुद्रायें एक साथ मिलती हैं, उनसे भी यह ज्ञात हो सकता है कि ये शासक लगभग एक-दो पीढ़ी आगे-पीछे रहे होंगे। जैसे—

1. इंद्रमित्र+विष्णुमित्र+जयमित्र+प्रजापतिमित्र+रुद्रगुप्त+ध्रुवमित्र+कनिष्क+ढली ताम्र मुद्रा। (इन सभी की मुद्रायें एक ही पात्र में एक साथ मिली हैं)।

2. रुद्रगुप्त+ध्रुवमित्र।

3. रुद्रगुप्त+ध्रुवमित्र+वासुदेव कुषाण।

4. अग्निमित्र+इन्द्रमित्र+विष्णुमित्र+जयमित्र+रुद्रगुप्त।

इस प्रकार सिद्ध है कि पुरातत्व साक्ष्यों के माध्यम से ज्ञात 48 पांचाल शासक न्यूनातिन्यून 450 वर्ष तक शासन करते रहे होंगे। और यह समय शुंगकाल से लेकर कुषाण राजा वासुदेव तक रहा होगा।

अभी इस विषय में पर्याप्त अन्वेषण की आवश्यकता है।

षष्ठाध्याय समाप्त॥ ६ ॥

❑◆❑

उपसंहार

पांचालों के इस इतिहास ग्रंथ में पंचाल प्रदेश से प्राप्त विविध प्रकार की प्राचीन ऐतिहासिक सामग्री के द्वारा तथ्यों तक पहुँचने का प्रयास किया गया है। प्रत्येक विचार की पुष्टि और प्रामाणिकता के लिये पुरातत्व और यथा संभव साहित्य का भी साक्ष्य जुटाया गया है। पंचाल प्रदेश के 48 शासकों के नामों की सूची ज्ञात की गई है। इन शासकों का कालक्रमानुसार पौर्वापर्य निश्चित करना भी अति कठिन कार्य है। पुनरपि लिपि, मुद्रा की बनावट, धातु तथा उभय-पक्ष में बने चिह्नों की पूर्वापरता को दृष्टिगत रखते हुये वंशावलि तैयार की गई है। नये अन्वेषणों से इस सूची में परिवर्तन भी हो सकता है। प्राचीन राजाओं की इतनी लंबी सूची पुरातत्त्व के आधार पर अन्य किसी राजवंश की अभी तक नहीं बनी है और न आगे ही बनने की संभावना है, क्योंकि पुरातात्विक दृष्टि से प्रायः सभी वंशों की न्यूनाधिक खोज हो ही चुकी है। किसी वंश के नये शासक का तो पता लगाया जा सकता है परंतु इतनी लंबी सूची नहीं बनाई जा सकती। पुराणों में वर्णित शुंगराजावलि का समय भारतीय परंपरा के अनुसार 1500 वर्ष विक्रमपूर्व निश्चित होता है।

पंचाल-जनपद के मेरे इस अन्वेषण कार्य से पांचालवंश और क्षेत्र के अनेक नये शासकों की जानकारी इतिहास जगत् को हुई है। जैसे—वृषभमित्र, पुष्यसेन, यज्ञबल, दामभूति, वसुमित्र, भद्रमित्र, पृथिवीमित्र, यज्ञमित्र, रेवतीमित्र, विजयमित्र, शिवमित्र, राज्यमित्र, महेश्वर, नन्दिगुप्त, वीरसेन। एक-एक मुद्रा की प्राप्ति ही अपने आप में एक शोध का विषय हो सकती है।

इनमें से एक मुद्रा पूर्व ज्ञात थी उस पर सामान्यतया देखने पर ''दामगुतस'' नाम दृष्टिगोचर होता है, उसे विद्वानों ने दामगुतस पढ़कर दामगुप्त नाम का प्रचार कर दिया। परन्तु इस पर शुद्ध नाम ''दामभूतिस'' लिखा है। इस प्रकार यह भी नया ही शासक माना जाना चाहिये। अहिच्छत्रा से मिले एक मुद्रांक पर स्वामी ओमानंद सरस्वती द्वारा लिखित प्राचीन मुद्रांक ग्रंथ में ''अह्निलसुमित्र'' पाठ पढ़ा हुआ है, मेरे विचार से यहां भी शुद्ध पाठ ''श्रीवसुमित्र'' होना चाहिए। उसी मोहर पर दूसरा नाम 'भूमिमित्र' पढ़ा है। वह भी अशुद्ध पढ़ा है, यहां पृथिवीमित्र शुद्ध पाठ है। इस भाँति ये भी नये शासक हैं। महेश्वर तथा वीरसेन नामक शासक भी नये ही ज्ञात हुये हैं। चंद्रगुप्त और कुमारगुप्त की नूतन प्रकार की ताम्र मुद्रायें भी प्रकाश में आई हैं। विभिन्न गणराज्यों तथा शासकों की भी अनेक नई मुद्रायें प्रथम वार देखने में आयी हैं। शंकरिक लेखयुक्त ताम्रमुद्रांक तथा ताम्र के अनेक आभूषण, विभिन्न धार्मिक तथा राजकीय चिह्न आदि भी ढूँढे हैं। पंचाल-क्षेत्र के ताम्र-युगीन बहुत से शस्त्रास्त्रों की महत्त्वपूर्ण नूतन उपलब्धि हुई है।

अनेक प्रस्तर-मूर्तियाँ, मृन्मूर्तियाँ, लेखयुक्त तथा कलात्मक ईंटों आदि को भी

नई खोज में सम्मिलित किया है। रत्नोपरत्नों से पशु-पक्षी आदि की आकृति में बने विविध प्रकार के मणके मिलना भी नूतन अन्वेषण का ही परिणाम है। इन कलात्मक वस्तुओं के अध्ययन से पंचाल-प्रदेश की सांस्कृतिक तथा आर्थिक प्रगति का ज्ञान प्राप्त होता है। कलात्मक ईंटों आदि के अवशेषों से तत्कालीन भवन-निर्माण कला की संरचना भी का अनुमान लगाया जा सकता है।

महाराज हर्षवर्द्धन और महाराज वत्सराज के ताम्रपत्रों के विषय में भी नई सूचना दी है। महाराज हर्षवर्द्धन के ताम्रपत्र पर संवत् 53 लिखा है। यदि इसे हर्ष के समकालीन पुलिकेशी द्वितीय के ऐहोल शिलालेख से मिलाकर पढ़ा जाये तो यह विक्रम संवत् 53 सिद्ध हो सकता है। इससे इतिहास में बहुत परिवर्तन की सम्भावना है।

पांचाल-शासक शुंगवंशीय नहीं थे इस विषय का भी स्पष्टीकरण इस ग्रंथ में किया है। पंचाल-प्रदेश में स्थित अनेक अज्ञात और प्राचीन ऐतिहासिक महत्व के खंडहरों की चर्चा भी की गई है। पंचाल-प्रदेश तथा उसकी राजधानी अहिच्छत्रा तथा कांपिल्य अति प्रसिद्ध रहे हैं। इनकी स्थिति प्राचीन साहित्य तथा पुरावशेषों से सिद्ध की है। पंचाल-प्रदेश का भौगोलिक क्षेत्र कितना विस्तृत था, इसकी जानकारी के लिये प्राचीन स्थलों से प्राप्त सामग्री के आधार पर निर्णय करके भौगोलिक मानचित्र भी दिए हैं।

प्राचीन ऐतिहासिक स्थलों को स्थानीय लोग किस प्रकार नष्ट-भ्रष्ट कर रहे हैं इसका भी सचित्र विवरण दिया है। भारतीय पुरातत्व सर्वेक्षण विभाग को इस पुस्तक के माध्यम से तथा पृथक् से भी निवेदन किया गया है कि वह इस ऐतिहासिक धरोहर की सुरक्षा की ओर और अधिक विशेष ध्यान दे।

इस शोध कार्य में अधिकतर सामग्री ऐसी है जो प्रसिद्ध इतिहास पुरातत्त्वज्ञ और प्राचीन भारतीय इतिहास शोध परिषद् नई दिल्ली के संस्थापक और निदेशक श्री विरजानन्द दैवकरणि ने विगत अनेक वर्षों में तथा सन् 1996 से 2000 तक विशेषरूप से ज्ञात की है। कुछ सामग्री मैंने भी पांचाल-प्रदेश में घूम-घूमकर संगृहीत की है अथवा न मिलने पर उसके चित्र लेकर प्राचीन इतिहास की सुरक्षा करने का यत्न किया है।

यदि मेरे इस तुच्छ प्रयास से इतिहास-जगत् को एक भी नई उपलब्धि होती है तो मैं अपने परिश्रम को सफल समझूँगी और यह अनुभव करूँगी कि भारतीय प्राचीन इतिहास के संरक्षण, संवद्र्धन में जो यत्न मैंने किया, वह निरर्थक नहीं गया। इस ग्रंथ को पढ़कर कोई भी सहृदय पाठक यह अनुमान लगा सकता है।

इति शम्

❑◆❑

परिशिष्ट (1)

इस पुस्तक के प्रकाशित होते-होते हमारी शोध परिषद् को अनेक नई उपलब्धियां हुई हैं। उनमें से कुछ तो ग्रंथ के भीतर ही यथास्थान टिप्पणी में दे दी हैं, कुछ विस्तृत जानकारी यहां परिशिष्ट के रूप में छापी जा रही हैं। पुस्तकस्थ विषय के साथ प्रत्यक्ष-अप्रत्यक्ष रूप से संबंध होने से इनका प्रकाशित करना अत्यावश्यक था।

—विरजानंद दैवकरणि

पांचाल राज्य से मिलने वाली मुद्राएं विश्व के अनेक संग्रहालयों और व्यक्तिगत संग्रहों में सुरक्षित हैं। जैसे ब्रिटिश म्यूजियम लन्दन, लखनऊ संग्रहालय, प्रयाग संग्रहालय, चंदौसी संग्रहालय, राष्ट्रीय संग्रहालय दिल्ली, गुरुकुल झज्जर संग्रहालय तथा बरेली, आंवला, मुरादाबाद, अमरोहा, चंदौसी, प्रयाग, जौनपुर और दिल्ली के अनेक व्यक्तिगत संग्रहों में एकत्र की हुई हैं। ब्रिटिश म्यूजियम लन्दन के अतिरिक्त किसी ने अपने संग्रह का विवरण प्रकाशित नहीं किया है।

प्राचीन भारतीय इतिहास शोध परिषद् की ओर से विगत चार वर्षों में पांचाल क्षेत्र का अनेकवार सर्वेक्षण किया गया है। इन सर्वेक्षणों में जो पांचाल मुद्राएं प्राप्त हुई है उनका विवरण इस प्रकार है—

1.	विना नाम वाली मुद्राएं (पांचाल चिह्नों से युक्त)	15	13.	भद्रमित्र	3	27.	राज्यमित्र	1
			14.	भूमिमित्र	9	28.	जयमित्र	7
			15.	फल्गुनीमित्र	11	29.	प्रजापतिमित्र	2
2.	वृषभमित्र	1	16.	शिवमित्र	1	30.	वसुमित्र	1
3.	विश्वपाल	1	17.	विजयमित्र	2	31.	इन्द्रमित्र	18
4.	दामभूति	6	18.	वरुणमित्र	2	32.	वीरसेन	10
5.	वंगपाल	1	19.	विष्णुमित्र	11	33.	महेश्वर	1
6.	दामभूति+वंगपाल	5	20.	यज्ञमित्र	1	34.	हरिगुप्त	3
7.	पुष्यसेन	3	21.	अग्निमित्र	37	35.	चंद्रगुप्त (ताम्र)	15
8.	रेवतीमित्र	1	22.	ध्रुवमित्र	9	36.	कुमारगुप्त (ताम्र)	6
9.	भद्रघोष	8	23.	रुद्रगुप्त	1	37.	नन्दिगुप्त (ताम्र)	4
10.	सूर्यमित्र	5	24.	जयगुप्त	1	38.	कार्षापण (रजत)	17
11.	अच्युत	40	25.	वसुसेन	2	39.	कुणिन्दगण	7
12.	भानुमित्र	30	26.	यज्ञबल	3	40.	राजन्यगण	2

इनसे अतिरिक्त शताधिक मुद्राएँ ऐसी हैं जो साफ करके पढ़ी जानी हैं।

गुरुकुल झज्जर के संग्रहालय में लगभग तीन हजार पांचाल मुद्राएँ है। यह 1965

से 1995 तक के तीस वर्षों का संग्रह है। इनसे अतिरिक्त पचास से अधिक मोहरें हजारों मृन्मूर्तियां और मणके आदि विविध कलाकृतियां भी संगृहीत की हैं। इस संग्रह में मेरा बहुत बड़ा योगदान है। 1969 के अगस्त से 1995 के अगस्त तक 27 वर्ष की अवधि में पांचाल क्षेत्र के अहिच्छत्रा नामक प्राचीन ऐतिहासिक दुर्ग में 100 से अधिक वार जाकर ऐतिह्य सामग्री का संकलन करके गुरुकुल झज्जर (हरियाणा) के संग्रहालय में सुरक्षित कर चुका हूँ। यदि सभी संग्रहों का तुलनात्मक अध्ययन करके पांचाल इतिहास लिखा जाए तो इतिहास जगत् को बहुत बड़ी उपलब्धि होगी।

ऊपर वर्णित पांचाल मुद्राओं आदि के मूल लेख इस प्रकार हैं—

1. चन्द्र
2. चन्द्रगुप्तस्य
3. कुमारगुप्तस्य
4. वृषभमितस
5. विश्वपालस
6. दामभूतिस
7. वंगपालस
8. रेवतीमितस
9. पुससेनस
10. वसुसेनस
11. भद्रघोसस
12. भद्रमित्रस
13. अग्निमित्रस
14. अगिमितस
15. विजयमित्रस
16. वसुमित्रस्य
17. भानुमितस
18. भूमिमितस
19. अच्यु
20. अच्युत
21. इन्द्रमित्रस
22. यज्ञमितस
23. वरुणमितस
24. शिवमित्रस्य
25. यज्ञबलस
26. जयमितस
27. राज्यमित्रस
28. फगुनीमितस
29. विष्णुमित्रस
30. प्रजाप-तिमितस
31. सूर्यमित्रस
32. ध्रुवमित्रस
33. रुद्रगुप्तस
34. शिवनन्दिस शिरिस
35. महेश्वरः
36. वीरसेनस
37. राज्ञविष्णुमि...
38. MENANΔP·Y मिनेण्डरस
39. AΠΠ·Λ·Δ·T·Y अप्पोलोडोटस
40. श्रीप्रतापादित्य
41. राज्ञजयवर्मस

42. महाखतपस
43. पृथिवीमित्रस्य
44. शंकरिक
45. श्रीनन्दिगुप्त
46. ....नन्दिनः
47. पुठमितस
48. शिवदेवस
49. कामदतस
50. रामदतस

51. गोपालिस्य राज्ञा जयति क्षत्रपस्य (ईंट पर लेख)

52. भटचदलिय (स्य) (गोमेद का मुद्रांक)

53. राज्ञः कुणिन्दस अमोघभूतिस महाराजस

54. श्रीसूर्य्यनन्दनः (ईंट पर लेख)

55. – रकभानुमित्रस पाकारिटका (ईंट पर लेख)

56. गोमिकुलागोत्रगृहीतमहाराज
श्रीवसुमित्रमहाराज सूर्यमि-
त्र महाराजश्रीपृथिवीमि-
त्र श्रीमहाराजाच्युतस्य

परिशिष्ट (2)

एक स्वाभाविक प्रश्न होता है कि इतने विस्तृत पांचाल क्षेत्र के निवासियों का वर्तमानरूप क्या है। उस कुल के लोग आज कहाँ है, क्या कर रहे हैं इत्यादि।

जहाँ तक प्राचीन पांचालवासियों के वंशजों का प्रश्न है उसके लिए तो स्थानीय लोग सर्वथा अनजान हैं कि हम किस प्राचीनकुल से सम्बद्ध हैं। बरेली के आसपास के यादव और अहेर (अहीर) वंशीयलोग स्वयं को पाण्डवों से सम्बद्ध मानते हैं। उन यादव और अहीरों में भी ऊँच नीच का भेद है। यादव लोग अहीरों को अपने से हीन मानते हैं। जबकि पश्चिमी उत्तर प्रदेश, हरियाणा, राजस्थान आदि में ऐसा भेद नहीं है। इन क्षेत्रों में ये दोनों एक ही कुल के नाम भेद हैं।

सारे देश में लाखों लोग स्वयं को पांचाल लिखते हैं, वे लोहे का काम करते हैं, उन्हें सामान्यतया लुहार नाम से जाना जाता है। वे स्वयं को पांचाल क्यों कहते हैं इसका युक्तियुक्त उत्तर किसी के पास नहीं है। ऐसा प्रतीत होता है कि पांचालों में जो लोग युद्ध के समय शस्त्रास्त्र निर्माण करके सेना के लिए उनकी आपूर्ति किया करते थे, वे ही आज लोहे का काम करने वाले लुहार बन गए। पांचाल क्षेत्र के निवासी होने से अपने नाम के साथ स्थानवाची पांचाल शब्द लगाने लग गए, वही कालान्तर में जाति का रूप धारण करता चला गया।

वर्तमान में हरियाणा, राजस्थान, गुजरात, उत्तर प्रदेश, मध्य प्रदेश और बिहार के विस्तृत क्षेत्र में पांचाल लोग निवास करते हैं। इनके गोत्र ब्राह्मण, गूजर, जाट, यादव और राजपूतों के गोत्रों से मिलते हैं। सारे भारत में फैले इन पांचालों में अब जागृति आने लगी है। ये अपने पूर्वजों के इतिहासान्वेषण में लगे हुए हैं। अनेक लोग उच्चपदों पर आसीन हैं तथा अनेक संगठन भी बना रक्खे हैं। जैसे विश्वकर्मा पांचाल महासभा (गुजरात), विश्वकर्मा पांचाल सभा (रोहतक), अंगिरा शोध संस्थान (जींद) आदि। इनकी पत्रिकायें भी प्रकाशित होती हैं। इनके प्राचीन वंश, गोत्र और वर्तमान में स्थिति की एक झलक इस प्रकार देखी जा सकती है।

— मनु की सन्तति ने लोहे का कार्य करना प्रारम्भ किया।
— मय के पुत्रों ने भवन निर्माण और स्वर्णाभूषणादि का कार्य अपनाया।
— शिल्पी की सन्तान ने प्रस्तर की मूर्ति बनाने का काम लिया।
— काष्ठा के वंशजों ने लकड़ी के कार्य से आजीविका चलानी आरम्भ की।
— देवयज्ञ की भावी पीढियों ने मिट्टी के घड़े बनाने की कला को प्रश्रय दिया।

उपर्युक्त कार्य करने वाले लुहार, मिस्त्री, खाती और कुम्हार आदि के गोत्र निम्नलिखित सूची में देखिये—

कौडिन्य	वर्णक्त	बालायण	सुई
संधोजात	भूंड (भौंड)	भीमड़ा	सुरगला
आश्वलायन	अत्रि	भोटिया	सुराठिया
वरणा	वामदेव	लहकराना	हरसोरिया
धरा	आपस्तम्ब	भारद्वाज	हासरिया
धरु	अधेरलिया	अधीरे	गौतम
पटवा	असनोडिया	बोधायन	तत्पुरुष
पटरावल	गौड	कुरुवंश	दाक्षायण
पुवारपाल	शिढाण	भफोरिया	जायल
बागोरिया	सिसोदिया	भाटीवाल	जसपालपुरिया
बेसकसा	सुलपुरिया	पठियार	जुणी (जूण)
बरसावत	भगोला	तालचिड़ा	चचरेला
केरा	मैथुलाना	बुवला	बड़
मोधावल	मोहरे	सांगला	खेचिड़िया
मैथुलिया	गोयल	सांगलिया	गोलवाल
भादा (भेसवाल)	नरड़िया	सुजानपुरिया	गोगम
कालड़े	गधनिया	भोजादय	वेदवाल
टाबी	गलसतिया	सींभला	बालेला
डलवाल	डांगरा	सम्बली चौहान	पीतलहड़ा
तुवरवाल	डांगी	सम्बली नरेश	पीपड़िया
तावड़ा	ढाबर	सुजे चौहान	बरड़ा
दहिया	टांक	थुगोला	बड़किया
क्योरेके	तलपटिया	सोलंकी	(बड़जात्या,

कश्यप	निरवाणिया	हिसोला	बड़गूजर,
ईशान	रकराणिया	तरानिया	बड़क,
कात्यायन	रिठोरिया	मकरिया	बड़)
करहेडा	मधुरिया	भोटोरिंया	नरड़ा
कटोरिया	बगड़ा	करनशीस	नरेला
कंथु	पचोलिया	शांडिल्य	गाडावत
कछवाहा	वैद्य	समरिये	लोहनगरा
कसाणे	चैलान	तालखोरे	वैश्यखुराजा
कामडे	बावरी	धूला	खेगड़िया
खाखेर	सोता	दायमा	भुतलहड़ा
खानपुरा	धूरिया	डागर	बावरे
सुन पतलहड़ा	चांदी पतलहड़ा		

भारत में पांचालों के स्थानीय नाम

पांचाल	—	गुजरात, हरियाणा, दिल्ली, उत्तरप्रदेश
धीमान	—	पंजाब, उत्तरप्रदेश
जांगिड़	—	हरियाणा, राजस्थान, उत्तरप्रदेश, मध्यप्रदेश
ओम्मा उपाध्याय	—	बिहार, उत्तरप्रदेश
तक्षा-टांक	—	उत्तरप्रदेश, महाराष्ट्र
लाहोरी	—	उत्तरप्रदेश, महाराष्ट्र
मथुरिया	—	उत्तरप्रदेश, महाराष्ट्र
मूत्रधार, सुथार	—	महाराष्ट्र, गुजरात, उत्तरप्रदेश
कूकूहास	—	बिहार
रामगढिया, गढी	—	पंजाब (तरखान)
तरखान	—	उत्तरप्रदेश, बिहार
मैथिल	—	उत्तरप्रदेश, बिहार
त्रिवेदी	—	उत्तरप्रदेश, बिहार
लोष्टा	—	उत्तरप्रदेश
बहुलिया	—	उत्तरप्रदेश
रावत, पलोट, पिपलादी	—	उत्तरप्रदेश
कान्यकुब्ज	—	उत्तरप्रदेश
मालवीय	—	मध्यप्रदेश

नागर	—	पूर्वी उत्तरप्रदेश
पांचाल	—	महाराष्ट्र, मैसूर
सरथरिया	—	राजस्थान, उत्तरप्रदेश
गौड़	—	उत्तरप्रदेश, बंगाल, हरियाणा
देवकमलाट	—	बंगाल
विश्वब्राह्मण	—	उड़ीसा, महाराष्ट्र
कशाली	—	उड़ीसा, महाराष्ट्र
विश्वकर्मा	—	बंगाल, बिहार, हरियाणा
नवनन्दन	—	बंगाल, बिहार, हरियाणा
लरजय	—	बंगाल, बिहार, हरियाणा
आचार्य	—	महाराष्ट्र, आन्ध्र
थुकर	—	मद्रास, मैसूर, केरल
पांचाल	—	दक्षिण भारत, कुर्णक्षेत्र
शिल्पी, शिल्पाचार्य	—	दिल्ली, राजस्थान, उत्तरप्रदेश

यह जानकारी मुझे श्री ताराचन्दजी शास्त्री बरौदा (सोनीपत) वर्तमान में विश्वकर्मानगर रोहतक (हरियाणा) और श्री धर्मसिंहजी आर्य नादान, सुहरा (झज्जर) के सहयोग से प्राप्त हुई है। एतदर्थ इन दोनों सज्जनों को धन्यवाद है। अधिक सामग्री संकलित करके वर्तमान पांचाल जाति का विस्तृत इतिहास भी लिखा जा सकता है।

देश की अन्य ब्राह्मण, यादव, गूजर, जाट, राजपूत आदि तथाकथित जातियों के गोत्रादि का अध्ययन करके पांचालों के गोत्रों से मिलान करने पर यह सिद्ध हो जाता है कि मुस्लिम आक्रमण से पूर्व ये सभी जातियां एक थीं और इनका मूलरूप भी एक ही था। इनका रहन-सहन, खान-पान, आचार व्यवहार, धर्म, रीति, नीति, संस्कृति, सभ्यता सब एकसमान है। केवल वैवाहिक सम्बन्ध नहीं होते, जिस दिन यह सम्बन्ध भी होने लगेगा, उसी दिन से भारत का कल्याण होना आरम्भ हो जायेगा। आज जन्मगत जाति व्यवस्था ने देश में भयंकर रूप धारण किया हुआ है। एकमत को माननेवाले भी जन्मगत जातियों में बँटे हुए हैं। देश की चुनाव प्रक्रिया का जो ढाँचा है उसके कारण जातिगत फूट, ईर्ष्या, द्वेष, वैमनस्य बहुत बढ़ गया है जाति से भी आगे जाकर एक ही जाति के लोग गोत्र और क्षेत्र के कारण भी विभक्त होते जा रहे हैं। जिन संन्यासी महात्माओं को यह दोष दूर करना चाहिए था, वे स्वयं सर्वोच्च पदों पर रहते हुए भी जातिगत संकीर्णता से ऊपर नहीं उठ पाते। अपने जन्मगत जाति और गोत्र में उत्पन्न अशिक्षित और अल्पगुणी व्यक्ति को अन्य जातीय शिक्षित और बहुगुणीजन से श्रेष्ठ मानकर उन्हें ही बढ़ावा देते देखे गए हैं। इससे बड़ा भारत का दुर्भाग्य और क्या होगा। आदर्शवाद का ढिंढोरा पीटने वाले

संकुचित हृदय के लोग जब छलकपट करके दूसरों के कन्धों पर चढ़कर उच्च पदों पर आसीन हो जाते हैं तो सुधार के स्थान पर बिगाड़ ही उत्पन्न होता चला जाता है।

आज देश की बड़ी-बड़ी धार्मिक संस्थाएँ, मत, सम्प्रदाय, शिक्षणालय भी इस रोग से ग्रस्त हो चुके हैं। इसलिए देश को संगठित करने के लिए जातिगत भावों और वैमनस्य को भुलाकर एकरूपता प्रदर्शित करना श्रेष्ठ है।

जिन दुर्गुणों से देश की हानि होती आई है, उनसे यदि शिक्षा न ली जाए तो इतिहास की दुहाई देना, इतिहास-संग्रह करना, उसके आधार पर भाषणबाजी करना सब व्यर्थ है, बाह्य आडम्बर है। सच्चा इतिहासज्ञ वही है जो विगत इतिहास से शिक्षा लेकर देश जाति को दुर्गुणों से बचाता हुआ उन्हें आदर्शवाद की ओर अग्रसर करने का अहर्निश प्रयत्न करता है। इतिहास से ऐसी शिक्षा ग्रहण करके जीवन में ढालना ही सच्चा इतिहास पढ़ना-पढ़ाना है। जन्मगत जाति की अपेक्षा गुण कर्मानुसार वर्ण-व्यवस्था का पुनश्चालन करना देशोन्नति का सबसे उत्तम उपाय है। गोत्र, जाति, क्षेत्रवाद, मत, सम्प्रदाय से ऊपर उठकर जब हम विशुद्ध भारतीय हो जाएंगे तभी देश संगठित और सुरक्षित हो सकेगा। अन्यथा अलग-अलग रहकर विद्वेष करते रहेंगे और शत्रुओं से पराभूत होते रहेंगे। जैसे मुस्लिम और अंग्रेजी दासता के समय हमारी दुरवस्था इतिहास प्रसिद्ध है वैसी अवस्था पुनः न आए, इसलिए इतिहास से शिक्षा लेकर सावधान होकर रहना सबका मुख्य कर्त्तव्य है।

परिशिष्ट (3)

महाराज हर्षवर्द्धन का एक अन्य ताम्रपत्र पंजाब प्रान्त के नाभा शहर के निकट किसी ग्राम से मिला है। यद्यपि उसमें अहिच्छत्रा की चर्चा तो नहीं है, पुनरपि सम्राट् हर्षवर्द्धन अहिच्छत्रा के शासक थे, इसीलिए उस ताम्रपत्र का मूलपाठ यहाँ उद्धृत किया जा रहा है, जिससे एक ऐतिहासिक साक्ष्य सुरक्षित रह सके।

इस ताम्रपत्र के साथ मुद्रांक (मोहर) भी है, ऐसा ताम्रपत्र प्रथम वार ही प्रकाश में आया है जिसके साथ मोहर भी हो और वह प्रकाशित होकर इतिहास जगत् में ज्ञात भी हो।

महाराज श्री हर्ष के इस ताम्र पत्र के साथ मिले ताम्र मुद्रांक (मोहर) पर बारह पंक्तियों में उभरा हुआ लेख इस प्रकार लिखा है—

1. ॐ महाराजश्रीनरवर्द्धनः तस्य पुत्रस्तत्पादानुध्यातः श्रीवज्रिणी-
2. देव्यामुत्पन्नः परमादित्यभक्तो महाराजश्रीराज्यवर्द्धनः तस्य पुत्र [स्तत्पा-]
3. दानुध्यातः श्रीमदप्सरोदेव्यामुत्पन्नः परमादित्यभक्तो महाराजश्रीमदादित्य-
4. वर्द्धनः तस्य पुत्रस्तत्पादानुध्यातः श्रीमहासेनगुप्तदेव्यामु [त्प] न्नः चतुः समु-
5. द्रातिक्रान्तकीर्त्तिः प्रतापान्तरागोपनतान्यराजान्य[व]र्णाश्रमव्यवस्थापनप्रवृ (त्त-)

6. चक्र एकचक्ररथ इव प्रजानामार्त्तिहरः परमादित्यभक्तः परमभट्टारक-
7. महाराजाधिराजश्रीप्रभाकरवर्द्धनः तस्य पुत्रस्तत्पादानुध्यातः अतिशयि-
8. तपूर्वराजचरितदेव्याममलयशोमत्यां श्रीयशोमत्यामुत्पन्नः परमसौगत इ-
9. व परहितैकरतः परमभट्टारकमहाराजाधिराजश्रीराज्यवर्द्धनः
10. तस्यानुजस्तत्पादानुध्यातः परमभट्टारकमहादेवीश्रीयशोमती-
11. देवोत्पन्नः परममाहेश्वरः महेश्वर इव सर्व्वस [त्वा-] नु-
12. कम्पकः परमभट्टारकमहाराजाधिराजश्रीहर्षः

उपर्युक्त लेख वाला मुद्रांक ताम्रपत्र के वामपार्श्व में मध्य में जुड़ा हुआ था। ताम्रपत्र का आकार 16.5 इंच लम्बा और 12.5 इंच (42×32 सैंटीमीटर) चौड़ा है। मुद्रांक के ऊपर बायें मुख किये बैठे हुये नन्दी का चित्र बना है। (चित्र 202) इस मोहर के साथ लगे ताम्रपत्र का मूलपाठ इस प्रकार है—

[पंक्ति १] स्वस्ति॥ महानौहस्त्यश्वजयस्कन्धावारश्रीवर्धमानकोटीवासक-महाराजश्रीनरवर्द्धनः तस्य पुत्रस्तत्पादानुध्यातः श्रीवज्रिणीदेव्यामुत्पन्नः परमादित्य-भक्तो महाराज श्री [राज्य]-

[२] वर्द्धनः तस्य पुत्रस्तत्पादानुध्यातः श्रीमदप्सरोदेव्यामुत्पन्नः परमादित्यभक्तो महाराजश्रीमदादित्यवर्द्धनः तस्य पुत्रस्तत्पादानुध्यातः श्रीमहासेनगुप्तादेव्यामुत्पन्नः चतुः समु—

[३] द्रातिक्रान्तकीर्त्तिप्रतापान्तरागोपनतान्यराजावर्णाश्रमव्यवस्थापनप्रवृत्तचक्र एकचक्ररथ इव प्रजानामार्त्तिहरः परमादित्यभक्तः परमभट्टारकमहाराजाधिराज-

[४] श्रीप्रभाकरवर्द्धनः तस्य पुत्रस्तत्पादानुध्यातः सितयशःप्रतानविच्छुरित-सकलभुवनमण्डलः परिगृहीतधनदवरुणेन्द्रप्रभृतिलोकपालतेजाः

[५] सत्पथोपार्जितानेकद्रविणभूमिप्रदानसम्प्रीणितार्थिहृदयेतिशयितपूर्वराजचरितः देव्याममलयशोमत्यां श्रीयशोमत्यामुत्पन्नः परम-

[६] सौगतः सुगत इव परहितैकरतः परमभट्टारकमहाराजाधिराजश्रीराज्यवर्द्धनः राजानो युधि [दु] ष्टवाजिन इव श्रीदेवगुप्तादयः, कृत्वा येन कशा-

[७] प्रहारविमुखाः सर्वे समं संयताः। उत्खाय द्विषतो विजित्य वसुधां कृत्वा प्रजानां प्रियं, प्राणानुज्झितवानरातिभवने सत्यानुरोधेन यः[॥] तस्यानुजस्तत्पा-दानुध्यातः परममा-

[८] हेश्वरो महेश्वर इव सर्वसत्वानुकम्पी परमभट्टारकमहाराजाधिराजश्रीहर्षः जयरतभुक्तविषयसम्बद्धडरिक्काणिपरिभाष्यमाणपण्डराङ्ककग्रामे स-

[९] मुपगतान् महासा[म]न्तमहाराजदुस्साधसाधनिकप्रमातारराजस्थानीय-कुमारामात्योपरिकविषयपतिभटचाटसेवकादीन् प्रतिवासिजानपदांश्च

[१०] समाज्ञापयति विदितस्तु वो यथायमुपरिलिखितग्रामः स्वसीमापर्यन्तः

सोद्रंगः सर्व्वराजकुलाभाव्यप्रत्ययसमेतः सर्वपरिहृतपरि-

[११] हारविषयादुद्धृतपिण्डः पुत्रपौत्रानुगश्चन्द्रार्क्कक्षितिसमकालीनः भूमिच्छिद्रन्यायेन मया पितुः परमभट्टारकमहाराजाधिराजश्रीप्रभा-

[१२] करवर्द्धनदेवस्य मातुश्च भट्टारिकामहादेवीराज्ञीश्रीयशोमतीदेव्याः ज्येष्ठभ्रातृपरमभट्टारकमहाराजाधिराजश्रीराज्यवर्द्धनदेवपादानां च

[१३] पुण्ययशोभिवृद्धये भार्ग्गवसगोत्रबह्वृचसब्रह्मचारिभट्टोलूखलस्वामिने प्रतिग्रहधर्म्मेणाग्रहारत्वेन प्रतिपादितः इति विदित्वा भवद्भिः सम-

[१४] नुमन्तव्यः प्रतिवासिजानपदैरप्याज्ञाश्रवणविधेयैर्भूत्वा यथा समुचित-तुल्यदेयभागभोगकरहिरण्यादिप्रत्ययः अस्यैवोपनेयः सेवोपस्थानं च

[१५] करणीयमित्यपि च। अस्मत्कुलक्रममुदारमुदाहरद्भिरन्यैश्च दानमिद-मभ्यनुमोदनीयं लक्ष्म्यास्तडित्सलिलबुद्बुदचंचलायाः दानं फलं पर-

[१६] यशः परिपालनं च॥ कर्म्मणा मनसा वाचा कर्त्तव्यं प्राणिने हितं हर्षेणैत्समाख्यातं धर्मज्ञानमनुत्तमं॥ दूतकोत्र महाक्षपटलाधिकरणाधि-

[१७] कृतसामन्तमहाराजकृष्णगुप्तः तदादेशाच्चोत्कीर्णं। संवत् ५३

[१८] स्वहस्तो मम महाराजाधिराजश्रीहर्षस्य॥ (चित्र 203)

उपर्युक्त मुद्रांक और ताम्रपत्र के मिलाने पर श्रीहर्ष की वंशावली इस प्रकार बनती है—

१ श्रीनरवर्द्धन+श्रीवज्रिणीदेवी (पत्नी)

२ श्रीराज्यवर्द्धन+श्रीमदप्सरोदेवी (पत्नी)

३ श्री आदित्यवर्द्धन+श्रीमहासेनगुप्तादेवी (पत्नी)

४ श्री प्रभाकरवर्द्धन+श्रीयशोमतीदेवी (पत्नी)

५ श्री राज्यवर्द्धन

६ श्रीहर्ष

इस ताम्रपत्र में महाराजाधिराज श्रीहर्ष ने भार्गवगोत्रोत्पन्न बह्वृचशाखाध्यायी श्री भट्ट उलूखलस्वामी और उनके ब्रह्मचारी शिष्यों को जयरतभुक्ति के अन्तर्गत डरिक्काणि विषय में स्थित पण्डराङ्गक नामक ग्राम दान में दिया था। यह ताम्रशासन महाराजाधिराज श्रीहर्ष के सामन्त, दूत और महाक्षपटल कार्यालय के अध्यक्ष महाराज कृष्णगुप्त के आदेश से उत्कीर्ण किया गया था। इस पर ५३ संवत् लिखा है। कुछ विद्वान् इसे हर्ष संवत् मानते हैं। मेरे विचार से यह विक्रमसंवत् है। क्योंकि महाराष्ट्र राज्य के ऐहोल नामक स्थान में उत्कीर्ण महाराज पुलकेशी द्वितीय के शिलालेख में हर्ष का उल्लेख हुआ है, यह लेख महाभारत युद्ध के ३१४२ वर्ष पश्चात् लिखा गया था। इस लेख से महाराज हर्ष का काल ३५ विक्रमसंवत् से ७६ विक्रमसंवत् तक सिद्ध होता है। प्रस्तुत ताम्रशासन में लिखित ५३ संवत् विक्रमसंवत् ही है। ज्ञात रहे वर्तमान

इतिहासकार हर्ष को ६०६ ई० से ६४७ ई० तक मानते हैं। इनको पुनर्विचार करना चाहिये।

हर्ष के काल के लिये चीनीयात्रियों आदि का प्रमाण दिया जाता है। उनकी भी पुनः परीक्षा की जानी चाहिये।

इस ताम्रपत्र के अन्त में महाराजाधिराज श्रीहर्ष के हस्ताक्षर भी खुदे हैं जो इस प्रकार हैं—

स्वहस्तो मम महाराजाधिराजश्रीहर्षस्य।

श्रीमहाराज हर्ष द्वारा पराजित श्रीदेवगुप्त का नाम भी यहां लिखा है। यह भी लिखा है कि जैसे दुष्ट घोड़े को चाबुक के प्रहार से सीधा किया जाता है, इसी भांति श्रीहर्ष ने देवगुप्त आदि को सीधा कर दिया था।

❑◆❑

संदर्भ ग्रंथ सूची

1. अंगुत्तरनिकाय
2. अन ऐडवांस हिस्ट्री ऑफ ऐनशियेंट इंडिया
3. अमरकोश : अमरसिंह, चौखंभा प्रकाशन, वाराणसी
4. अहिच्छत्रा : कृष्णदत्त वाजपेयी, शिक्षा विभाग उत तर प्रदेश लखनऊ 1956 ई०
5. अष्टाध्यायी : पाणिनिमुनि, प्रकाशक–हरयाणा साहित्य संस्थान, गुरुकुल झज्जर, संवत् 2034 वि०
6. आँवला : गिरिराजनंदन
7. उत्तराध्ययनसूत्र
8. ऋग्वेद : हरयाणा साहित्य संस्थान, गुरुकुल झज्जर, रोहतक, 2041 वि० संवत्
9. ऋग्वेद–प्रातिशाख्यम्
10. ऋग्वेदभाष्यम् : महर्षि दयानंद सरस्वती, परोपकारिणी तथा, अजमेर, 2019 वि० सं०
11. एनशियेंट इंडिया भाग 8 : मोरेश्वर दीक्षित, 1962, भाग 4 सन् 1948 ई०, भाग 1, सन् 1946, ए घोष, के०सी० पाणिग्राही
12. एनशियेंट इंडियन क्वाइंज : लंदन म्यूजियम, 1936 ई०
13. ऐतरेय़ आरण्यक : आनंदाश्रम ग्रंथालय, पूना
14. ऐतरेय ब्राह्मणम् : आनंदाश्रम ग्रंथालय
15. ऐप्पिग्राफिका इंडिका : भारतीय पुरातत्व सर्वेक्षण विभाग, नई दिल्ली
16. कन्नौज : राजकुमार दीक्षित, शिक्षा विभाग, उत्तर प्रदेश, लखनऊ 1955 ई०
17. काठकसंहिता
18. कामसूत्र : वात्स्यायनमुनि, डायमंड जुबली प्रेस, अजमेर, 1927 ई०
19. काव्यमीमांसा : राजशेखर, भारतीय बुक कार्पोरेशन, शक्तिनगर, एक्सटेंशन, दिल्ली–7
20. काव्यालंकारसूत्राणि : यास्कमुनि, अखिलानंद शर्मा, राजपुरा, बदायूँ, संवत् 1970
21. काशिका : वामन जयादित्य, चौखंभा प्रकाशन वाराणासी, सं० 2009 वि०
22. कुंभकारजातक
23. कौटिलीय अर्थशास्त्र : उदयवीर शास्त्री, संन्यास आश्रम गाजियाबाद
24. क्वाइंज आफ गुप्त डायनिस्टीज एलन, ब्रिटिश म्यूजियम लन्दन 1976 ई०
25. गंडतुंडिजातक

26. गणपाठ : पाणिनिमुनि, वैदिक यंत्रालय, अजमेर, संवत् 2013
27. गर्गसंहिता : आचार्यगर्ग, जगदीश्वर छापाखाना बंबई, संवत् 1952 वि०
28. गुप्त अभिलेख : डॉ० वासुदेव उपाध्याय, बिहार हिंदी ग्रंथ अकादमी, पटना, 1974 ई०
29. गुप्तकालीन मुद्रायें : अनंत सदाशिव अलतेकर, बिहार राष्ट्रभाषा परिषद् पटना, 2029 वि० संवत्
30. गुप्त साम्राज्य का इतिहास : परमेश्वरीलाल गुप्त
31. गोपथ ब्राह्मणम् : रामलाल कपूर ट्रस्ट, बहालगढ़, सोनीपत 2037 वि० सं०
32. चेतियजातक
33. छांदोग्योपनिषद् : शिवशंकर शर्मा, हरयाणा साहित्य संस्थान, गुरुकुल झज्जर, संवत् 2040 वि०
34. जनरल ऑफ एशियाटिक सोसायटी : हिंदू विश्वविद्यालय, वाराणसी।
    जनरल आफ दी न्यूममेस्टिक्स सोसायटी आफ इंडिया
    खंड 24, भाग 1–2, 1962 ई०
    खंड 31, भाग 1, सन् 196 ई०
    खंड 25, भाग 1–2, सन् 1962
    खंड 5, जून 1945 ई०
35. जैमिनीय ब्राह्मणम् : आनंदाश्रम ग्रंथालय, पूना
36. तैतिरीय ब्राह्मणम् :
37. नामलिंगानुशासनम् : अमरसिंह, चौखंभा विद्या भवन, वाराणसी
38. निरुक्तम् : यास्काचार्य, हरयाणा साहित्य संस्थान, गुरुकुल झज्जर, संवत् 2033
39. पतंजलिकालीन भारत : प्रभुदयाल अग्निहोत्री, बिहार राष्ट्रभाषा परिषद् पटना, संवत् 2019 विक्रम संवत्
40. पभोसा का गुहालेख
41. परोपकारी मासिक पत्र : अंक–अप्रैल 1995 (अजमेर)।
42. पाणिनिकालीन भारतवर्ष : वासुदेवशरण अग्रवाल, चौखंभा संस्कृत सीरीज वाराणसी, सं० 2012 विक्रम संवत्
43. पेपर्स आन दी डेट ऑफ कनिष्क : ए० एल० वाशम (रूस)
44. पोलिटिकल हिस्ट्री ऑफ ऐनशियेंट इंडिया :
45. प्राचीन भारतीय मिट्टी के बर्तन : डॉ० रायगोविंदचंद, चौखंभा, विद्याभवन, वाराणसी, 1960 ई०

46. प्राचीन भारतीय वेशभूषा : डॉ० मोतीचंद्र
47. बाल रामायण :
48. बृहदारण्यकोपनिषद् : नारायण स्वामी, सार्वदेशिक प्रकाशन, पटौदी हाऊस, दिल्ली, संवत् 2006 विक्रम संवत्
49. ब्रह्मांड-पुराणम् : मनसुखरायमोर, कलकत्ता
50. भागवत-पुराणम् : गीताप्रेस गोरखपुर
51. भारत के प्राचीन मुद्रांक : स्वामी ओमानंद सरस्वती, हरयाणा प्रान्तीय पुरातत्व संग्रहालय, गुरुकुल झज्जर, 1975 ई०
52. प्राचीन भारतीय अभिलेखों का अध्ययन : वासुदेव उपाध्याय, मोतीलाल बनारसीदास, दिल्ली, सन् 1961 ई०
53. मत्स्यपुराणम् : मनसुखरायमोर, कलकत्ता
54. मनुस्मृति : डॉ० सुरेन्द्र कुमार, आर्ष साहित्य प्रचार ट्रस्ट, कमलानगर, दिल्ली सन् 1981 ई०
55. महा उम्मग :
56. महाभारतम् : गीता प्रेस, गोरखपुर, संवत् 2013 वि०
57. महाभारत युद्ध कब हुआ एवं अन्य रचनायें : विरजानन्द दैवकरणि, परोपकारिणी सभा, अजमेर, 1995 ई०
58. मैत्रायणी-संहिता : डॉ० रघुवीर, हौजखास, दिल्ली
59. यजुर्वेद : स्वाध्याय मंडल पारडी, बलसाड, संवत् 2013 वि०
60. युग-युगों में उत्तर प्रदेश : कृष्णदत्त वाजपेयी, शिक्षा विभाग उत्तरप्रदेश, लखनऊ 1955 ई०
61. राजतरंगिणी : इडुकेशन मंत्रालय कलकत्ता, सन् 1835 ई०
62. रामाश्वमेध भाषा : रेवाराम, खेमराज श्रीकृष्णदास, बंबई, 1964 विक्रम सं०
63. वत्सराज का ताम्रपत्र : मुरादाबाद
64. वाल्मीकीयरामायणम् : गीता प्रेस गोरखपुर, सं0 2017 वि०
65. वायुपुराणम् : मनसुखरायमोर, कलकत्ता
66. विविधतीर्थकल्प :
67. विष्णुपुराणम् : मनसुखराय मोर, कलकत्ता
68. वैदिक इंडेक्स : मैकडानल, कीथ : चौखंभा विद्या भवन, वाराणसी
69. वैदिक वाङ्मय का इतिहास : भगवद्दत्त रिसर्चस्कालर, प्रणव प्रकाशन, पंजाबी बाग, दिल्ली, सन् 1974 ई०
70. व्याकरणमहाभाष्यम् : पतंजलिमुनि, गुरुकुल झज्जर, रोहतक 1964 ई०

71. शतपथ-ब्राह्मणम् : वैदिक यंत्रालय, अजमेर
72. शांखायनआरण्यक : आनंदाश्रम मुद्रणालय, पूना
73. शांखायनश्रौतसूत्र : पाण्डुलिपि
74. शुंगकालीन भारतवर्ष : सच्चिदानंद त्रिपाठी, विश्वविद्यालय प्रकाशन, वाराणसी, 1977 ई०
75. समुद्रगुप्त की प्रयाग प्रशस्ति
76. हरिवंश-पुराणम् : गीता प्रेस, गोरखपुर
77. हर्षवद्र्धन का बाँसखेड़ा ताम्रपत्र
78. हर्षवर्द्धन का नाभा (पंजाब) ताम्रपत्र : विरजानन्द दैवकरणि, परोपकारी मासिकपत्र, अजमेर, अप्रैल 1995 ई०
79. हिस्ट्री ऑफ पंचाल : कृष्णमोहन श्रीमाली, मुंशीराम मनोहरलाल, रानी झाँसी मार्ग, दिल्ली, सन् 1983
80. ह्वेंत्सांग चीनी-यात्री का यात्रा विवरण
81. अहिच्छत्रा थ्रू दी एजज् : के०डी० वाजपेयी, पंचाल रिसर्च इंस्टीच्यूट, कानपुर

❑◆❑

1. अहिच्छत्रा खंडहर का दृश्य
(पूर्व दिशा से लिया गया चित्र)
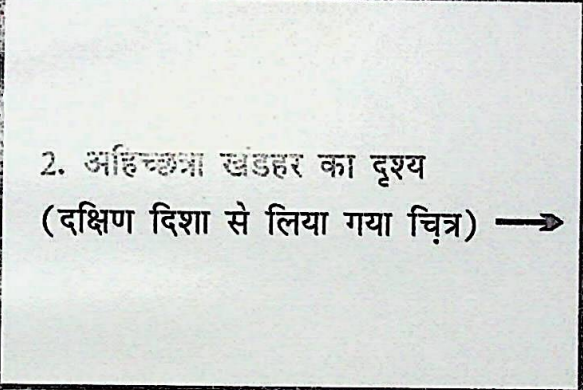
2. अहिच्छत्रा खंडहर का दृश्य
(दक्षिण दिशा से लिया गया चित्र)
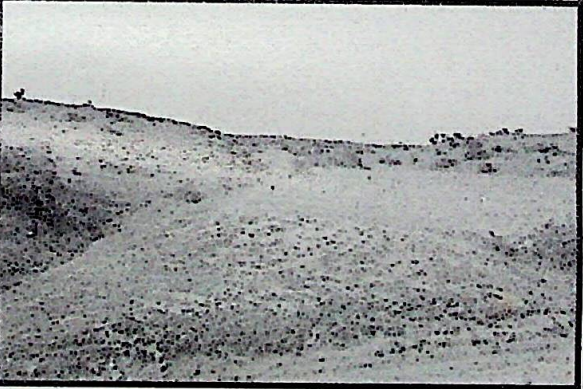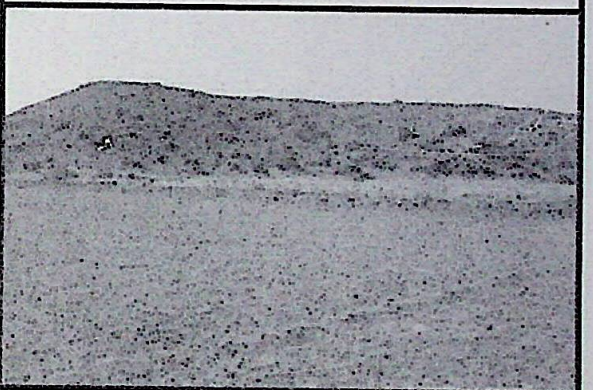
3. अहिच्छत्रा खंडहर का दृश्य
(पश्चिम दिशा से लिया गया चित्र)
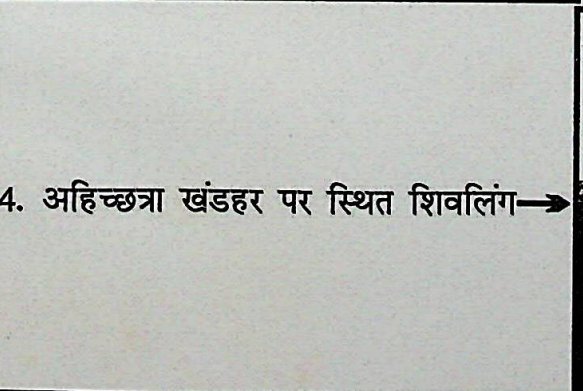
4. अहिच्छत्रा खंडहर पर स्थित शिवलिंग
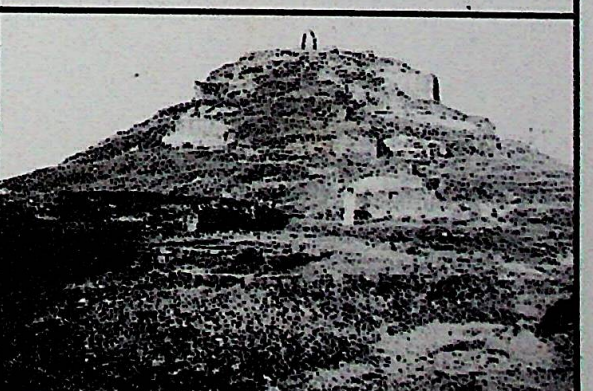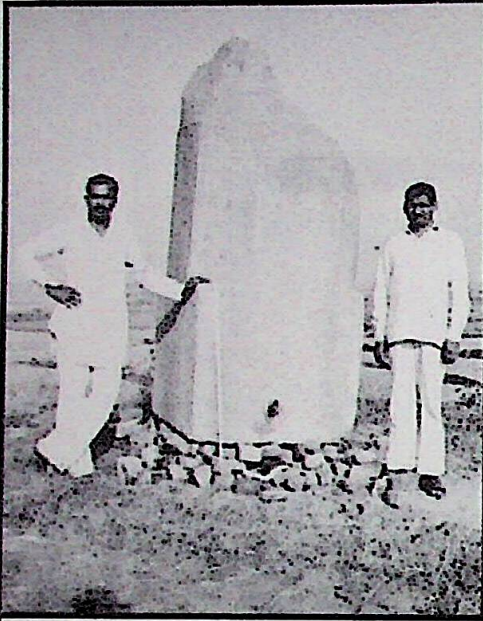
5. शिवमंदिर में स्थित शिवलिंग : अहिच्छत्रा
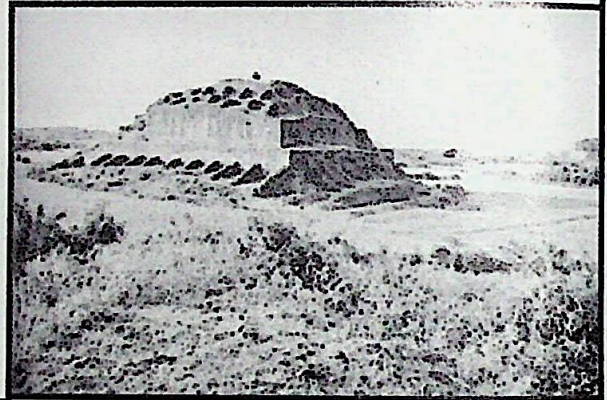
6. अहिच्छत्रा में 1940–44 की खुदाइ में निकला बौद्ध स्तूप
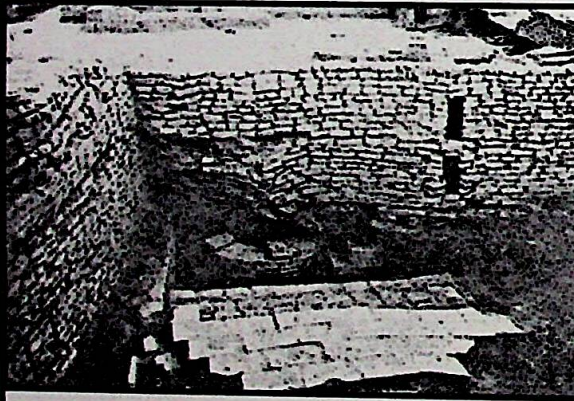
7. अहिच्छत्रा में 1940–44 में की गई खुदाई का दृश्य

8. अहिच्छत्रा में 1940–44 में की गई खुदाई का दृश्य
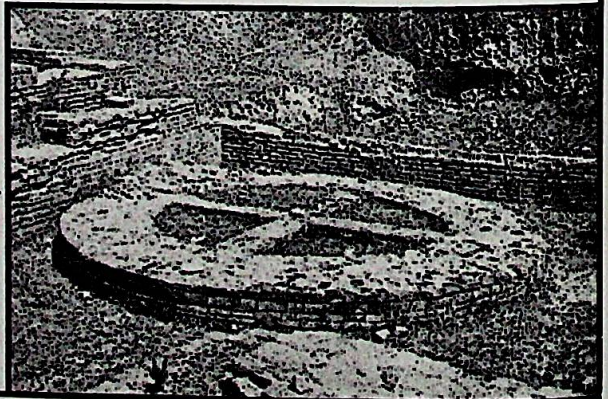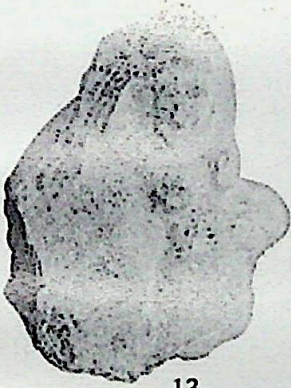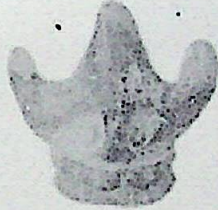
चित्र 9-16(ख) : अहिच्छत्रा से प्राप्त मौर्यकालीन मृन्मूर्तियाँ
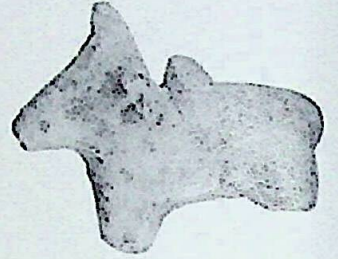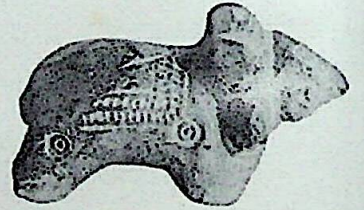
चित्र 17-24 : अहिच्छत्रा से प्राप्त मौर्यकालीन मृन्मूर्तियाँ

चित्र 25: शुंगकालीन यक्षिणी की मृन्मूर्ति : अहिच्छत्रा
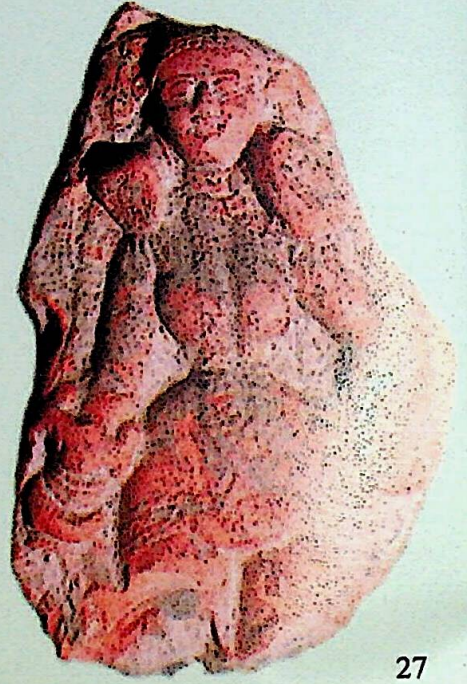
चित्र 26–29 : शुंगकालीन मृन्मूर्तियाँ : अहिच्छत्रा
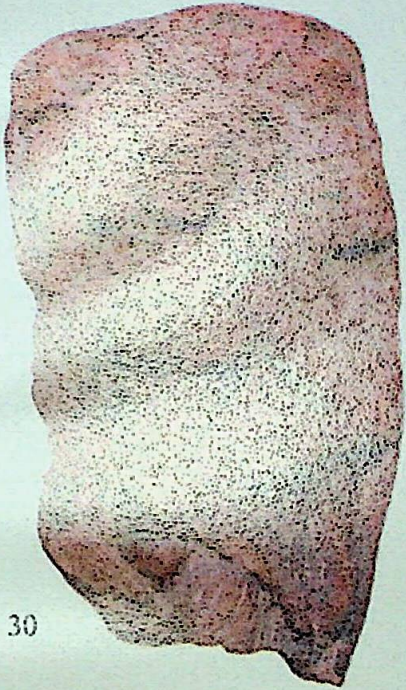
चित्र 30–33: शुंगकालीन यक्षिणी की मृन्मूर्तियाँ : अहिच्छत्रा
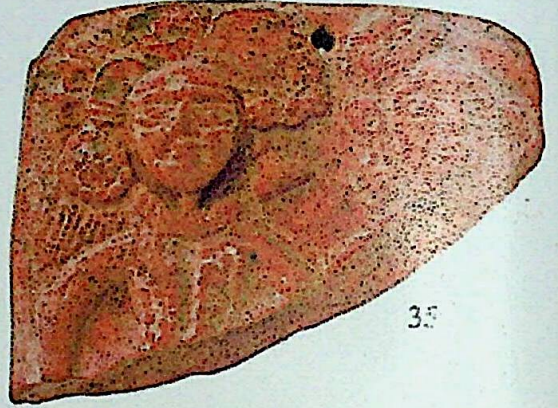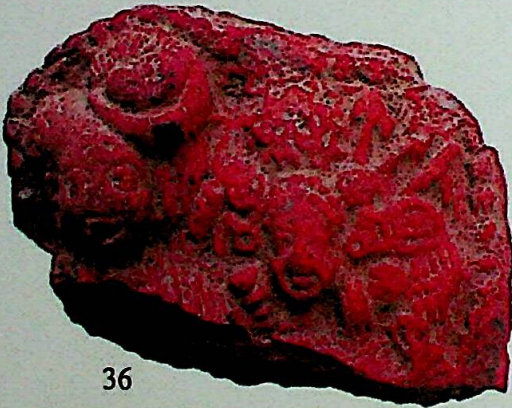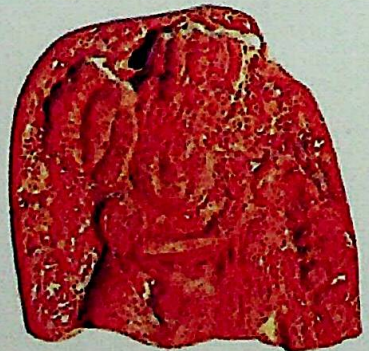
चित्र 34-37 (क) :
शुंगकालीन मृन्मूर्तियाँ : अहिच्छत्रा

चित्र 38-41 : अहिच्छत्रा से प्राप्त कुषाणकालीन मृन्मूर्तियाँ
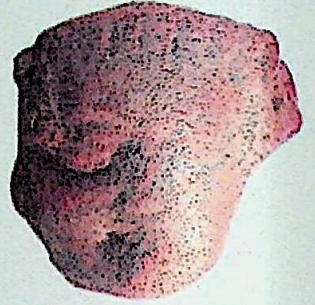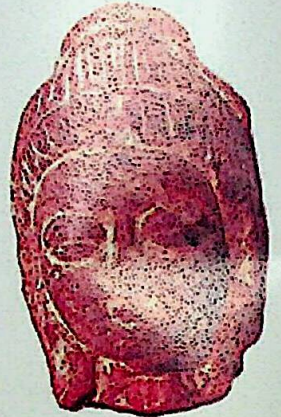
चित्र 42-48 (ख) : अहिच्छत्रा से प्राप्त कुषाणकालीन मृन्मूर्तियाँ

चित्र 49 : अहिच्छत्रा से प्राप्त राजपुरुष की प्रस्तरमूर्ति

चित्र 50 : अहिच्छत्रा से प्राप्त मकरवाहिनी गंगा की मृन्मूर्ति

चित्र 51 : अहिच्छत्रा से प्राप्त कच्छपवाहिनी यमुना की मृन्मूर्ति

चित्र 52 : अहिच्छत्रा से प्राप्त युधिष्ठिर और जयद्रथ के युद्ध की मृन्मूर्ति

53

54
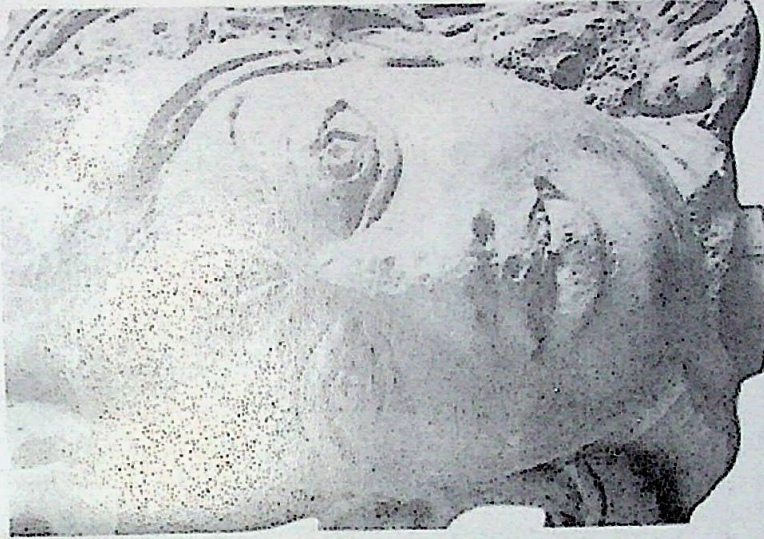
चित्र 53-54 : अहिच्छत्रा से प्राप्त शिव की मृन्मूर्तियाँ
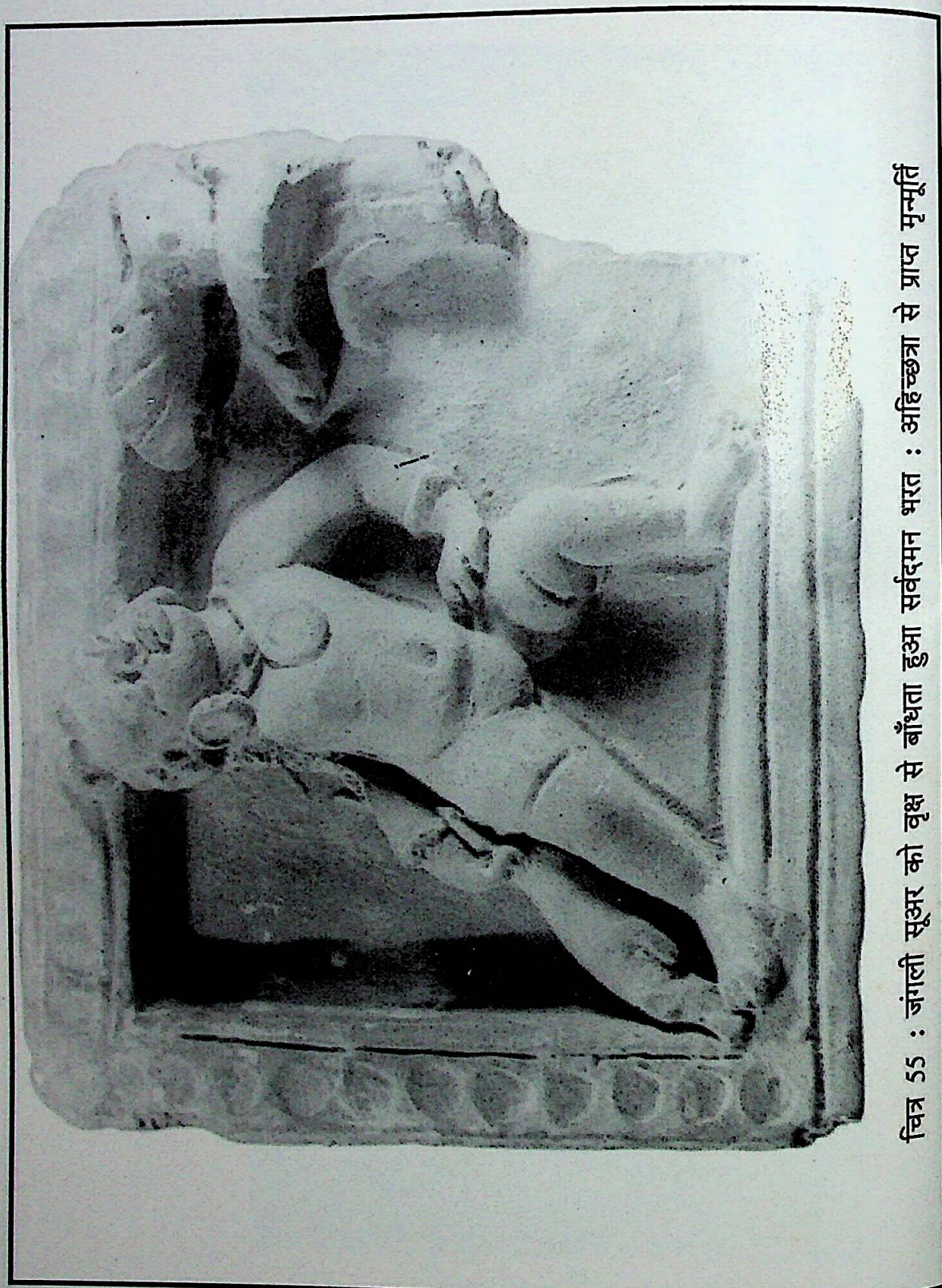
चित्र 55 : जंगली सूअर को वृक्ष से बाँधता हुआ सर्वदमन भरत : अहिच्छत्रा से प्राप्त मृन्मूर्ति
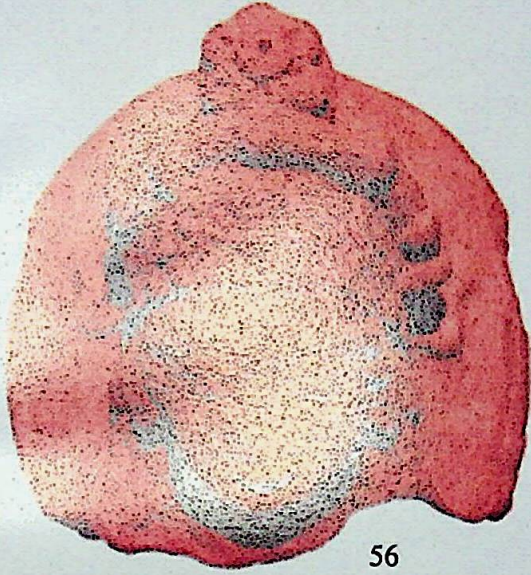
56 . 56 (क) : विष्णु (मृन्मूर्ति) : अहिच्छत्रा

57-58 : शिव, पार्वती (मृन्मूर्ति) : अहिच्छत्रा

चित्र 59 : चतुर्मुख शिवलिंग (अग्रभाग): त्रिनेत्र शिव (मृन्मूर्ति) : कठौती (अहिच्छत्रा)

चित्र 60 : चतुर्मुख शिवलिंग (वाम पक्ष): पार्वती, (मृन्मूर्ति) : कठौती (अहिच्छत्रा)

चित्र 61 : शिवलिंग के साथ कुएँ से निकली मृन्मूर्ति : कठौती (अहिच्छत्रा)
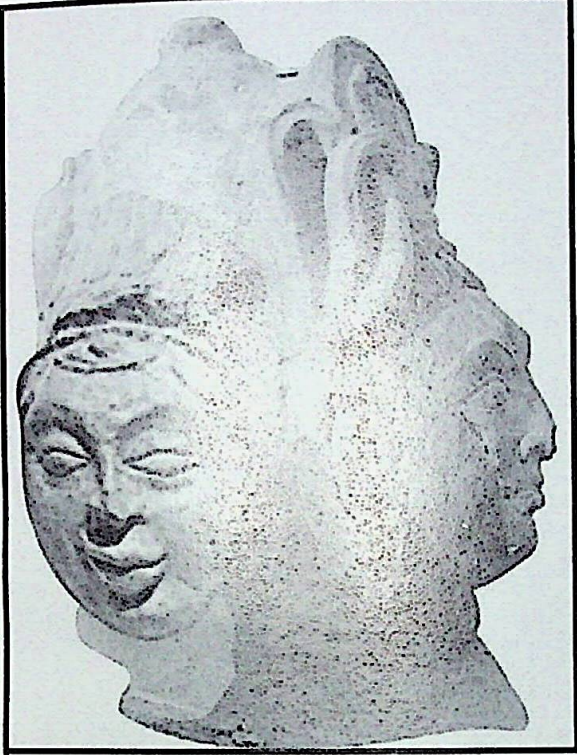
चित्र 62
चतुर्मुख शिवलिंग : मृन्मूर्ति-(तृतीय पक्ष)
कठौती (अहिच्छत्रा)
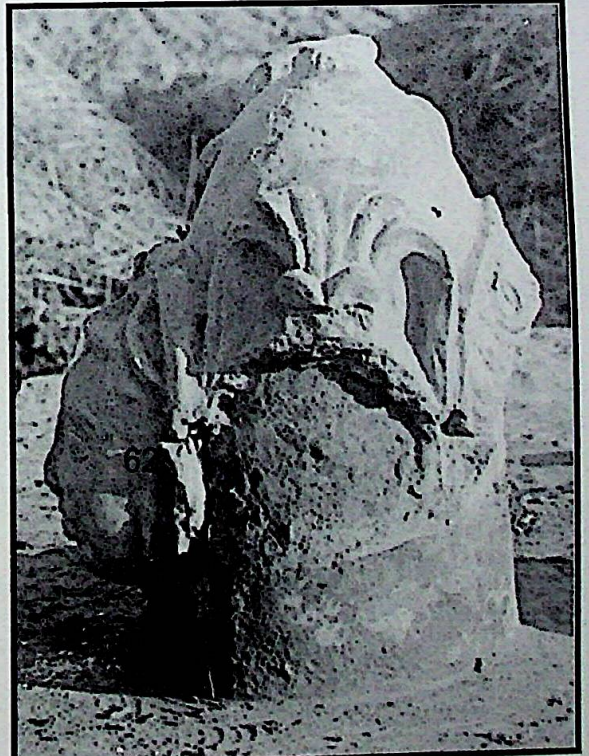
चित्र 62 (क)
चतुर्मुख शिवलिंग : मृन्मूर्ति-(चतुर्थ पक्ष)
कठौती (अहिच्छत्रा)

चित्र 63 : कठौती गाँव का कुआँ जिसमें से
चतुर्मुख शिवलिंग सहित अन्य मृन्मूर्तियाँ पाई गईं
(अहिच्छत्रा)
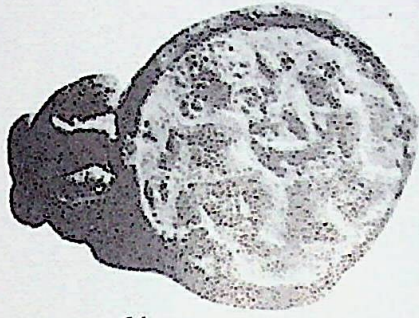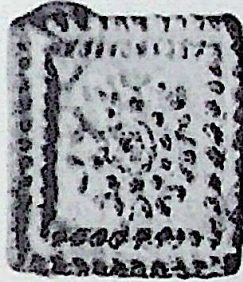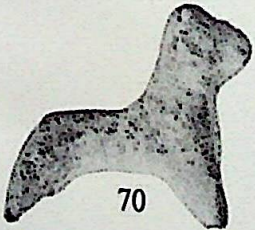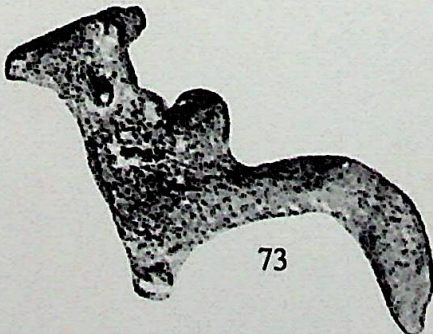
चित्र 64-75(क) : ताम्र की विविध कलाकृतियाँ : अहिच्छत्रा

76

76(क)

चित्र 76-76 क :
झुनझुना और उसका निचला भाग (कपड़े छापने के लिए) : अहिच्छत्रा

77

77 (क)

78
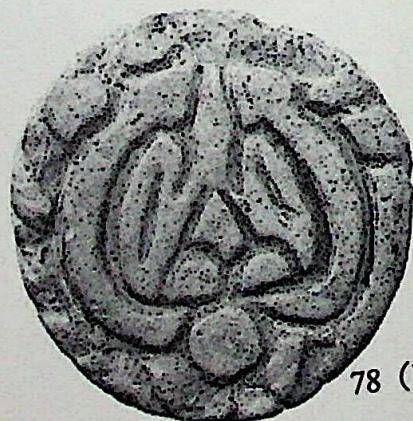
78 (क)

चित्र 77-78 क : मिट्टी की विविध कलाकृतियाँ : अहिच्छत्रा
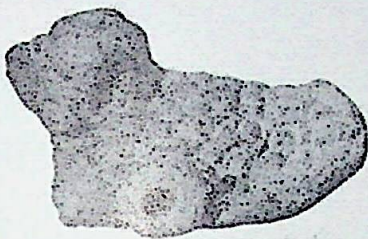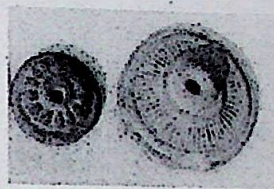
चित्र 79-81 क :

बन्दर और मगरमच्छ की आकृति की गाड़ियाँ और उनके पहिये
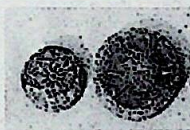
चित्र 81-82 : मिट्टी के बाट : अहिच्छत्रा

चित्र 85 : पूजापात्र का नन्दीयुक्त हत्था अहिच्छत्रा

चित्र 84

नन्दी : अहिच्छत्रा

चित्र 84 :

मानव मुखाकृतियुक्त सुराही की टोंटी : अहिच्छत्रा

चित्र 87

आभूषण बनाने का साँचा अहिच्छत्रा
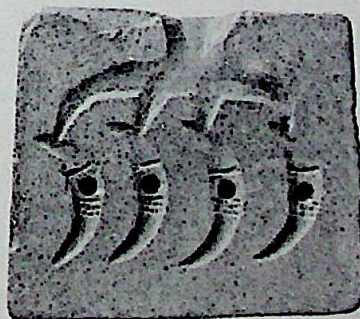
चित्र 87 क

आभूषण बनाने का साँचा अहिच्छत्रा

चित्र 88 : सैनिक की कुषाण कालीन मृन्मूर्ति : अहिच्छत्रा

89 : सैनिकों की मृन्मूर्ति : अहिच्छत्रा

90 : बुद्ध की मुखाकृति का झुनझुना
अहिच्छत्रा

मुखभाग

पृष्ठभाग

91 : झुनझुना : अहिच्छत्रा

91 क : मानव मुखाकृति (मृन्मूर्ति)
अहिच्छत्रा
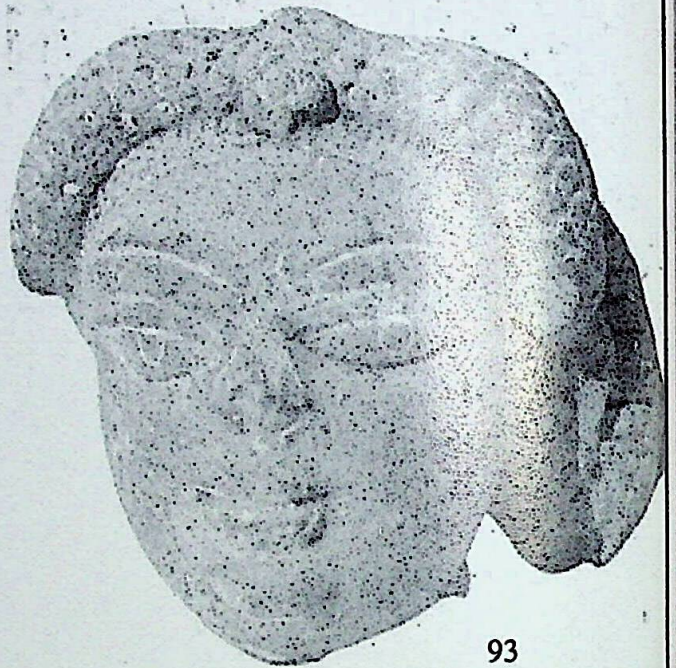
चित्र 92–95 : विविध केश विन्यासयुक्त मिट्टी की मुखाकृतियाँ : अहिच्छत्रा
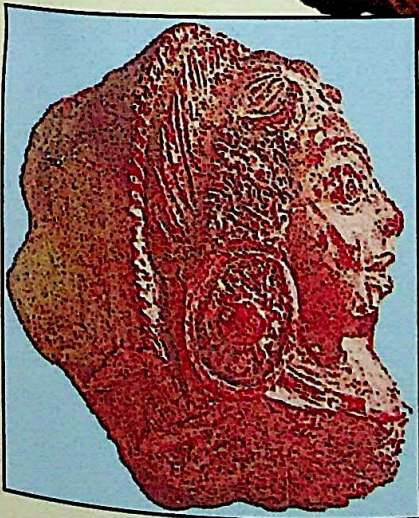
चित्र 96 :
अलंकरण और केश विन्यास युक्त नारी का सिर
(मृन्मूर्ति) : अहिच्छत्रा
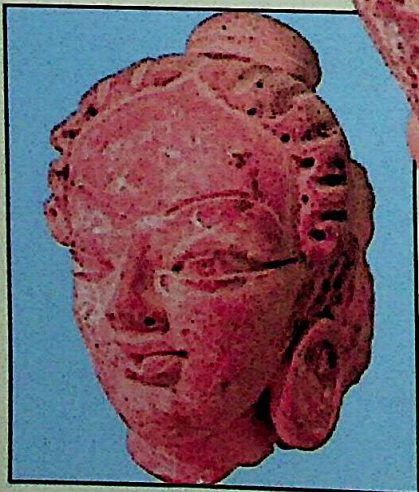
पार्श्व भाग

पार्श्व भाग

चित्र 97 :
केश विन्यास युक्त नारी का सिर
(मृन्मूर्ति) : अहिच्छत्रा

सम्मुख भाग

दायाँ भाग

बायाँ भाग

चित्र 98 :
नारी का सिर
मृन्मूर्ति : अहिच्छत्रा

चित्र 99 :
मकुटधारी पुरुष की मुखाकृति (मृन्मूर्ति) : अहिच्छत्रा

चित्र 100 :
वीणावादक समुद्रगुप्त, मृन्मूर्ति : अहिच्छत्रा
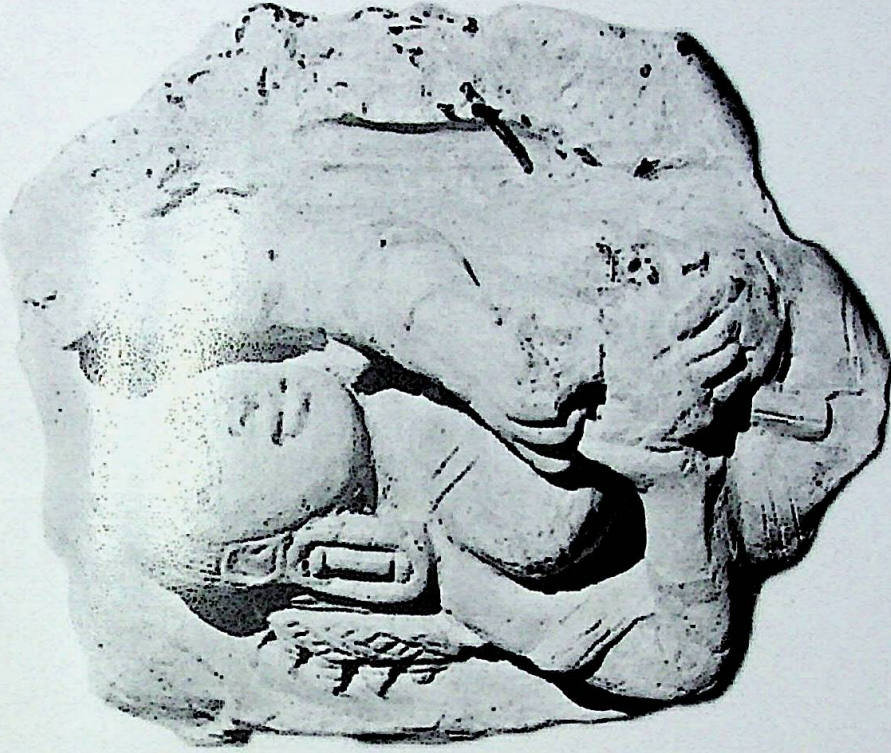
चित्र 101 :
सेवक पुरुष (मृन्मूर्ति) : अहिच्छत्रा

चित्र 102
विष्णु की [illegible] प्रतिमा
अहि[illegible]

चित्र 103 :
प्रस्तर का एकमुख शिवलिंग
(बड़ागाँव गुलरिया)
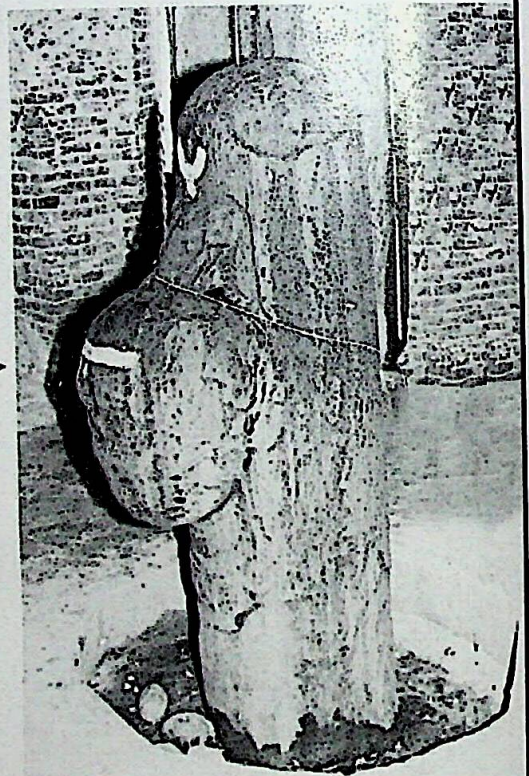
चित्र 104
जैन प्रस्तर प्रतिमा
रामनगर (अहिच्छत्रा)
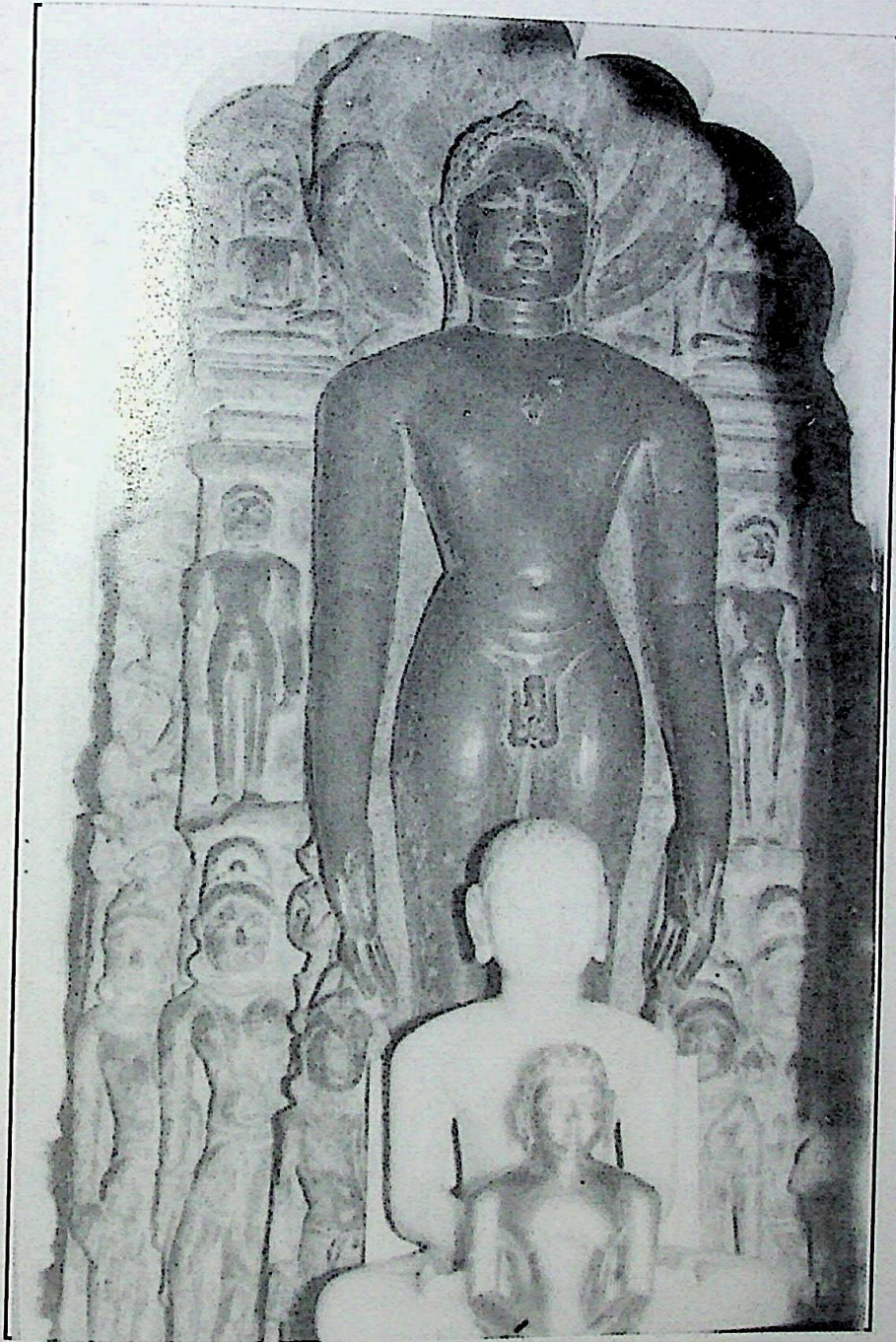
चित्र 105 :

जैन तीर्थंकर पार्श्वनाथ की प्रस्तर प्रतिमा : रामनगर (अहिच्छत्रा)
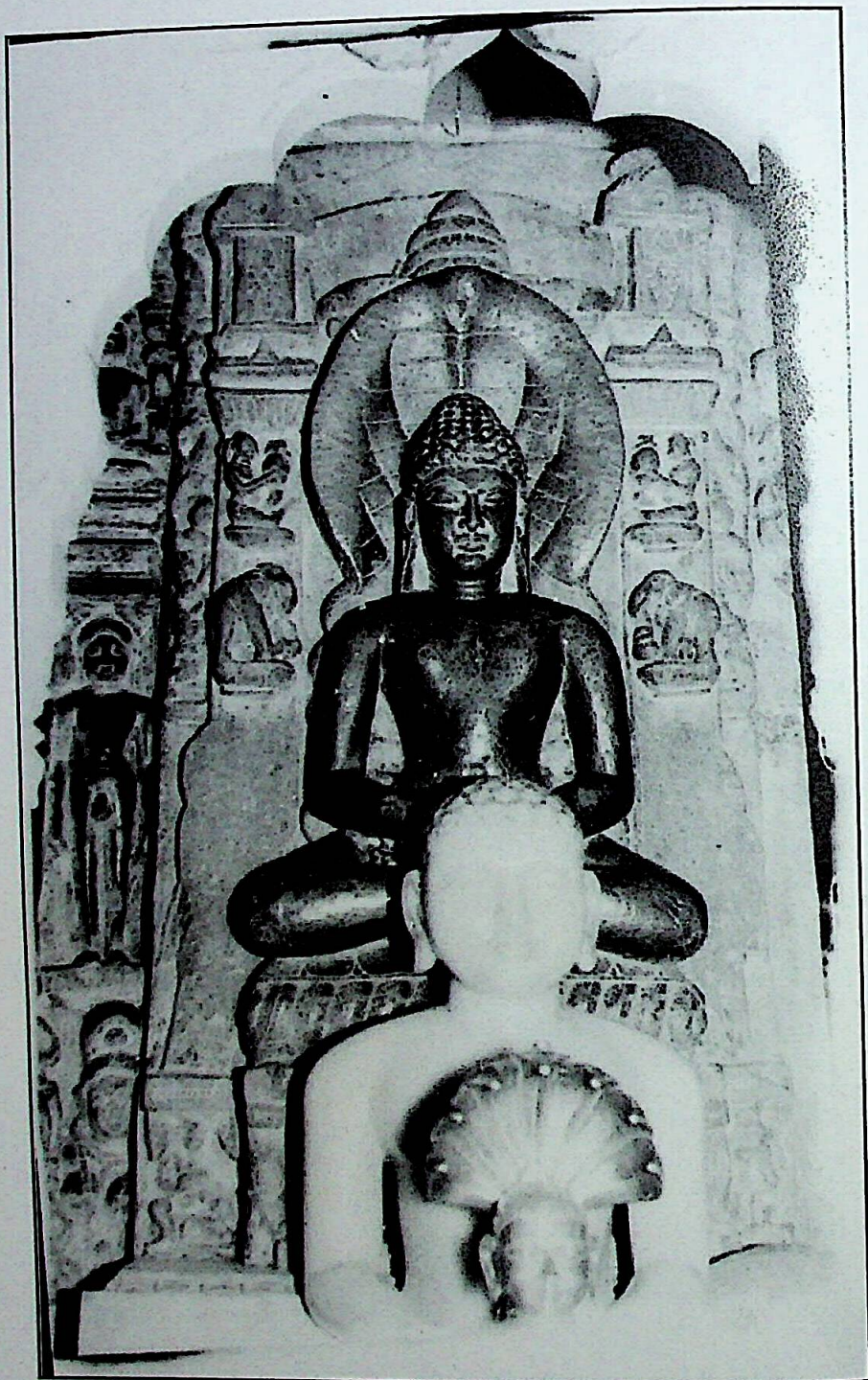
चित्र 106 : जैन तीर्थंकर पार्श्वनाथ की प्रस्तर प्रतिमा : रामनगर (अहिच्छत्रा)
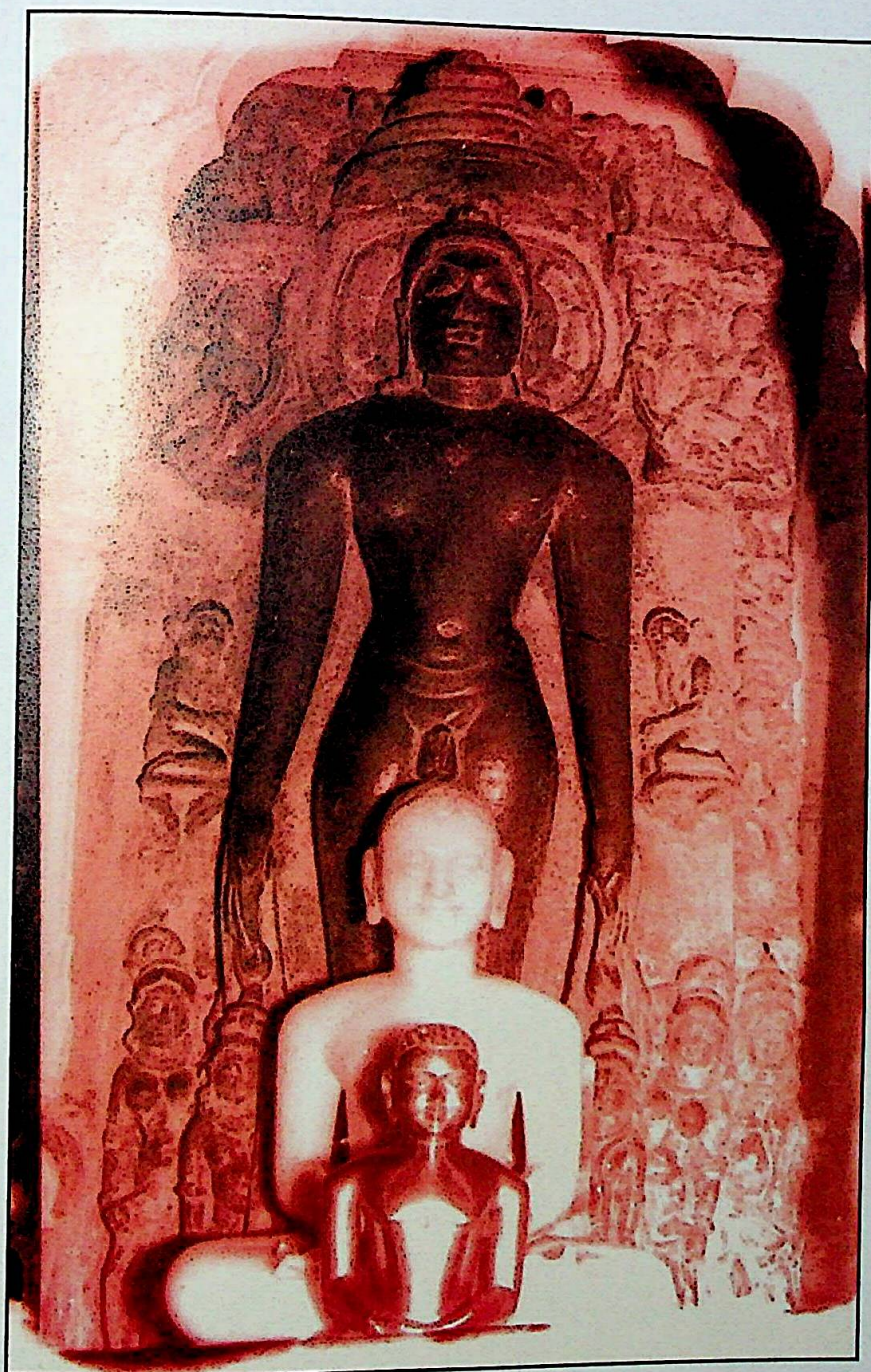
चित्र 107 :
जैन तीर्थंकर ऋषभदेव की प्रस्तर प्रतिमा : रामनगर (अहिच्छत्रा)

(क)

(ग)
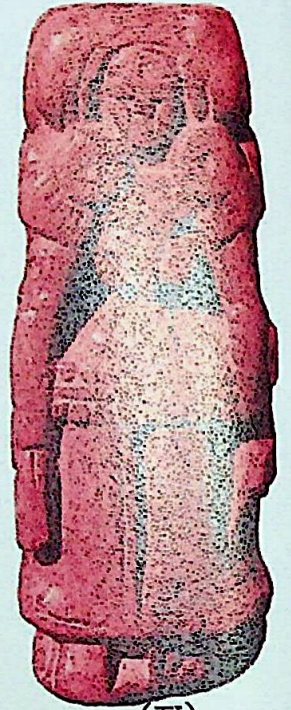
(ख)

चित्र 108 क–ग :
पुरुष एवं नारी की आकृतियुक्त
मुलायम पत्थर से बनी शीशे की मूठ : अहिच्छत्रा

चित्र 109 : पाँच पुरुषों की प्रस्तर प्रतिमा : अहिच्छत्रा

चित्र 110 :
पंख वाले हिरण के चित्र से युक्त यक्षीयोजक प्रस्तर : अहिच्छत्रा

111
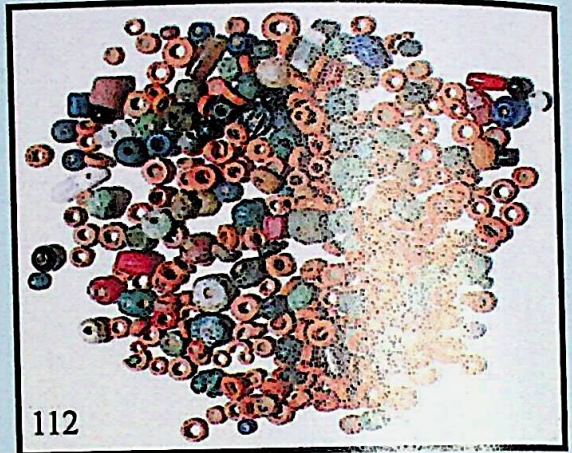
112

113

114

115

115 क

चित्र 111.115 : विविध प्रकार के मणके : अहिच्छत्रा
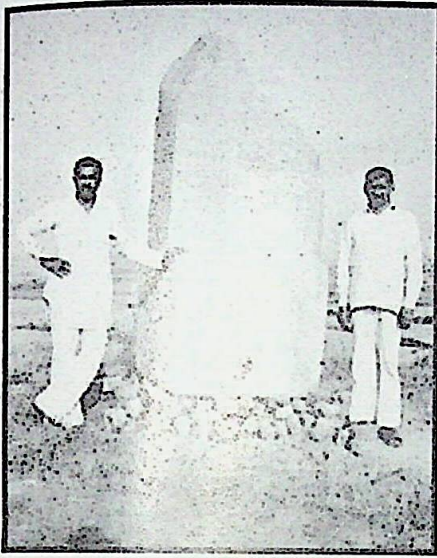
चित्र 116
अहिच्छत्रा में शिवमंदिर के ऊपर
स्थित विशाल शिवलिंग

चित्र 117
अहिच्छत्रा की
खुदाई में
निकला कुण्ड
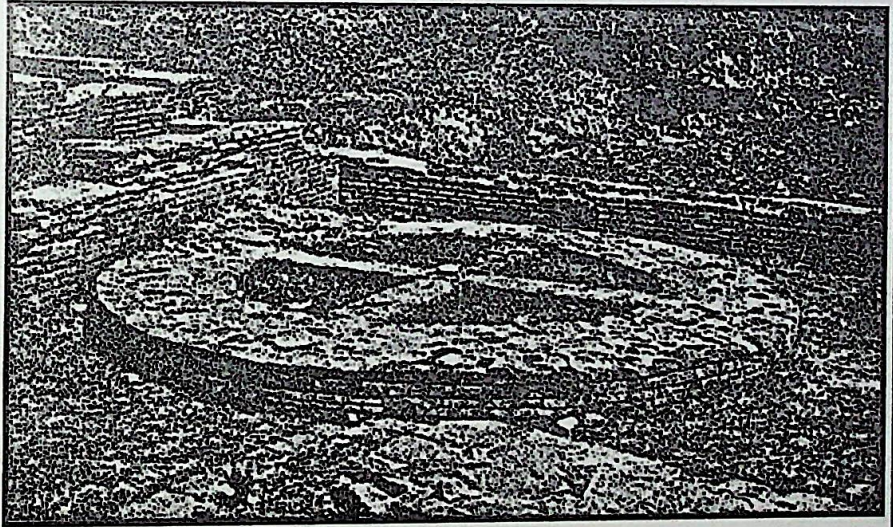
चित्र 117 (क)
अहिच्छत्रा की खुदाई में निकला
बौद्ध स्तूप
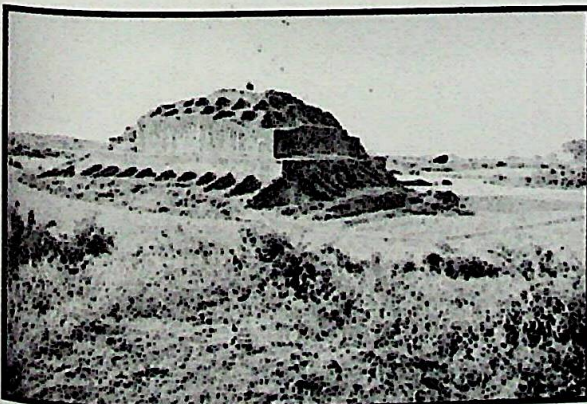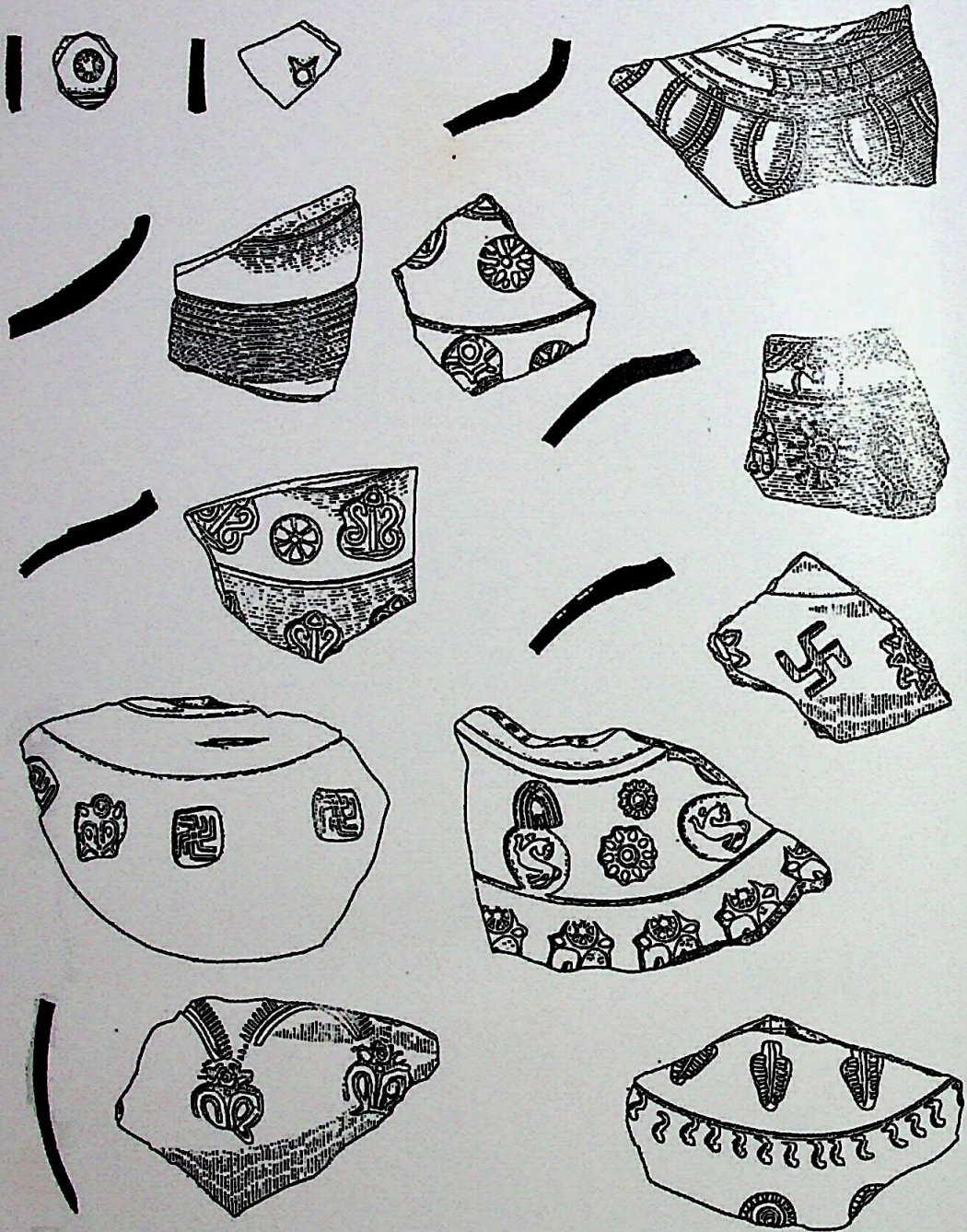
चित्र 118 : अहिच्छत्रा से प्राप्त मिट्टी के चित्रित बर्तनों के टुकड़े
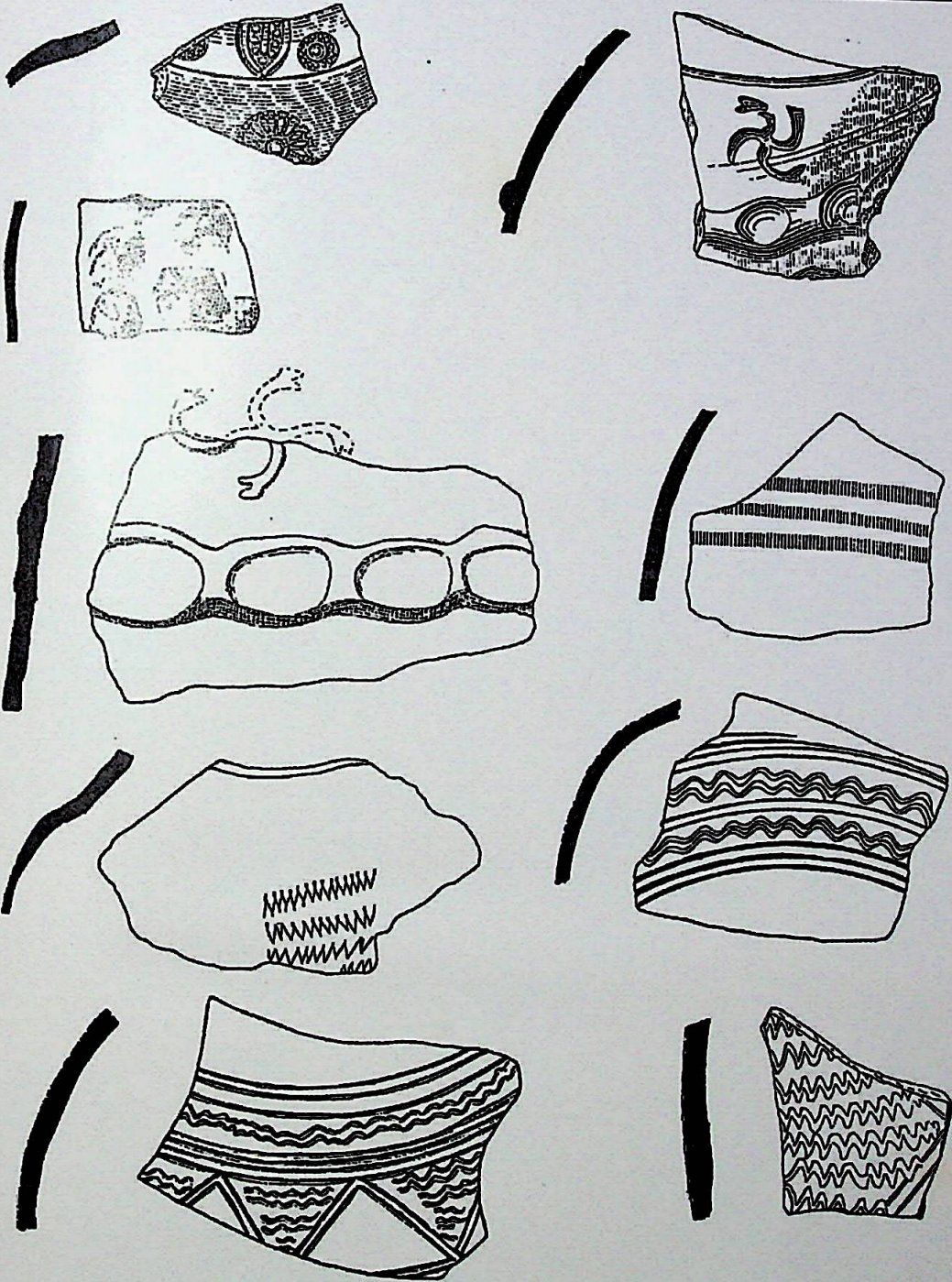
चित्र 119 : अहिच्छत्रा से प्राप्त मिट्टी के चित्रित बर्तनों के टुकड़े
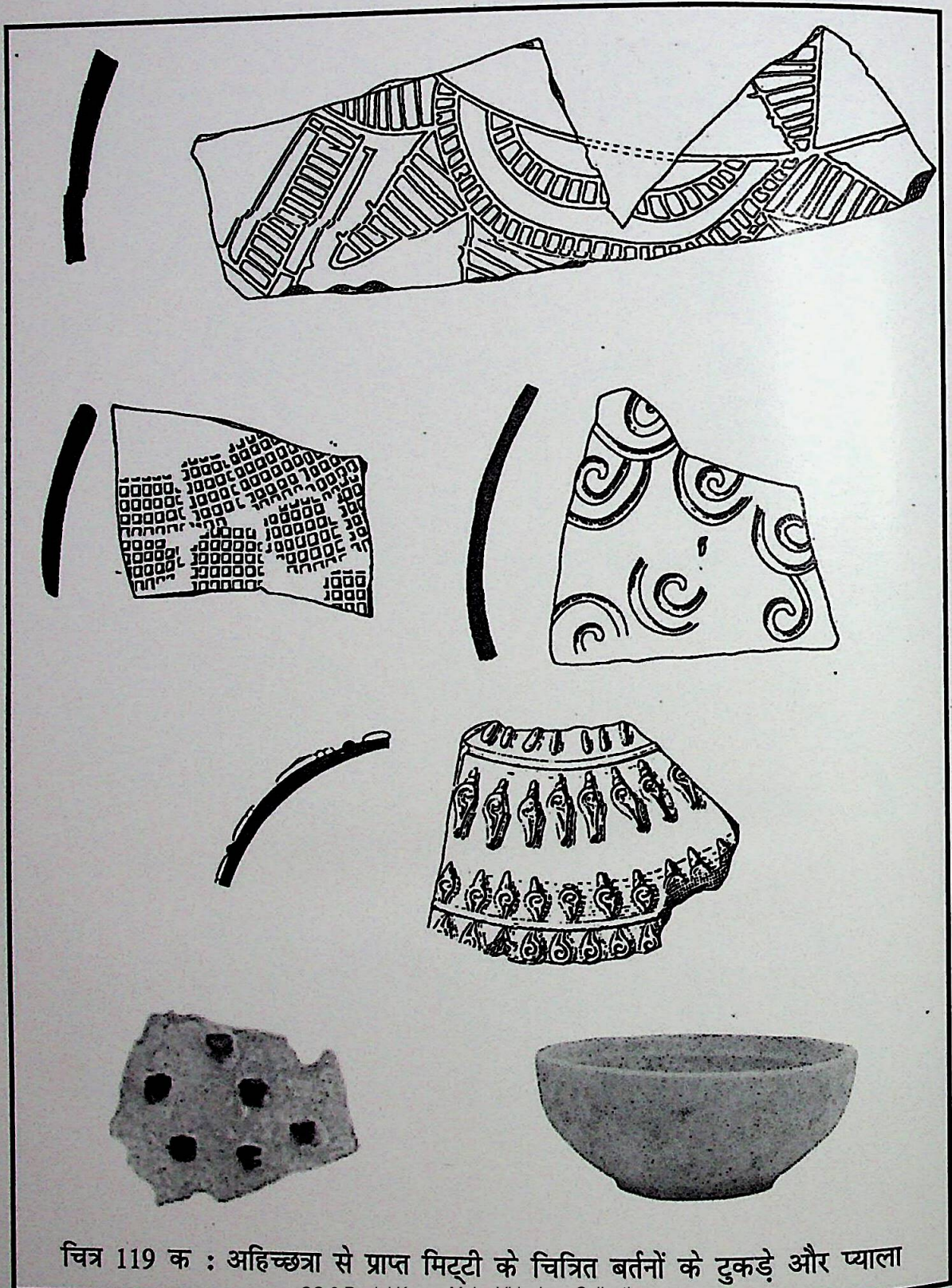
चित्र 119 क : अहिच्छत्रा से प्राप्त मिट्टी के चित्रित बर्तनों के टुकड़े और प्याला

चित्र 120
स्वर्ण कार्षापण

चित्र 121 रजत कार्षापण : अहिच्छत्रा

चित्र 122
ढली ताम्र मुद्राएँ : अहिच्छत्रा

चित्र 123 चंद्रगुप्त की ताम्र मुद्राएँ
अहिच्छत्रा

चित्र 123 क
महाराज श्री नन्दिगुप्त की ताम्र मुद्राएँ ⟶
अहिच्छत्रा
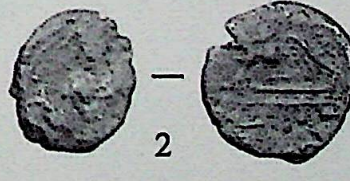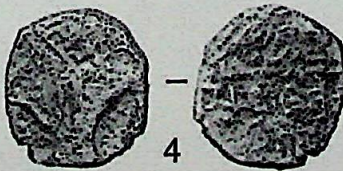
1 2 3 4 5 6

चित्र 124 श्री कुमारगुप्त की ताम्र मुद्राएँ : अहिच्छत्रा

चित्र 125
धनुर्धारिणी देवी की मुद्रा : अहिच्छत्रा

चित्र 125 क
कुषाण ताम्रमुद्रा
अहिच्छत्रा

चित्र 127
बिना नाम वाली पांचाल मुद्राएँ : अहिच्छत्रा

चित्र 126
नगरभूति (मुद्रांक)
नौरंगाबाद

चित्र 128
वृषभमित्र (पांचाल)

चित्र 129
विश्वपाल (पांचाल)

चित्र 129 क
यज्ञपाल (पांचाल)
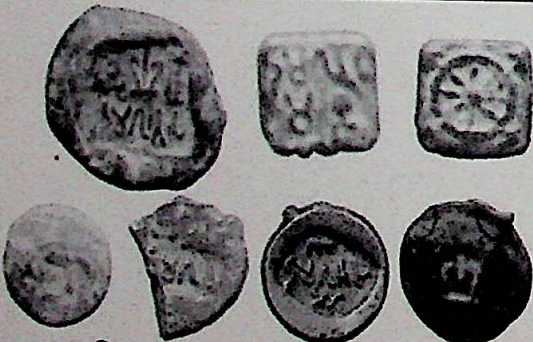
चित्र 130 : दामभूति (पांचाल)

चित्र 130 क: दामभूति, वंगपाल (पांचाल)

चित्र 131 वंगपाल (पांचाल)

चित्र 131 क वंगपाल (पांचाल)

चित्र 132 रेवतीमित्र (पांचाल)

चित्र 133 पुससेन(पुष्यसेन) (पांचाल)

चित्र 134 वसुसेन (पांचाल)

चित्र 135 भदघोस(भद्रघोष) (पांचाल)

चित्र 136 भद्रमित्र (पांचाल)

चित्र 137 अग्निमित्र (पांचाल)

चित्र 137 (क) अगिमित (पांचाल)

चित्र 138 विजयमित्र (पांचाल)

चित्र 139 वसुमित्र (पांचाल)

चित्र 140 भानुमित्र (पांचाल)

चित्र 141 भूमिमित्र (पांचाल)

चित्र 142 : अच्युत (पांचाल)

चित्र 143
इन्द्रमित्र(पांचाल)

चित्र 144
यज्ञमित्र(पांचाल)

चित्र 145
वरुणमित्र(पांचाल)

चित्र 146
शिवमित्र(पांचाल)

चित्र 147
यज्ञबल(पांचाल)

चित्र 148
जयमित्र(पांचाल)

चित्र 149
राज्यमित्र(पांचाल)

चित्र 150
फगुनिमित्र(पांचाल)

चित्र 151 : विष्णुमित्र(पांचाल)

चित्र 152 : प्रजापतिमित्र(पांचाल)

चित्र 153 : सूर्यमित्र(पांचाल)

चित्र 154 : ध्रुवमित्र(पांचाल)

चित्र 155 : रुद्रगुप्त (पांचाल)

चित्र 156
शिवनन्दि (पांचाल)

चित्र 157
महेश्वर (पांचाल)

चित्र 158 : वीरसेन

चित्र 159 राज्ञ विष्णुसेनस

चित्र 160 : अपोलोडोटस (इंडो-ग्रीक)

चित्र 161 मिनेंडर (इंडो-ग्रीक)

चित्र 162 : अमोघभूति कुणिंद

चित्र 163 प्रतापादित्य एवं विनयादित्य (कश्मीर)

चित्र 164 राज्ञ जयवर्मस

चित्र 165 महाराज श्री गणेन्द्र (नाग)

चित्र 166 शिवदेवस

चित्र 167 महाखतपस (महाक्षत्रपस)

चित्र 168 उज्जयिनी

चित्र 169 राजन्यगण
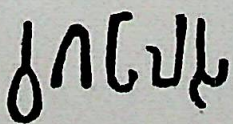
चित्र 170 : वंगपाल की मोहर : अहिच्छत्रा

चित्र 171 : वंगपाल की मोहर : कौशाम्बी

चित्र 172
महाराजा अच्युत (पांचाल) की मोहरें : अहिच्छत्रा

चित्र 174
शंकरिक
ताम्र का विपरीत मुद्रांक
अहिच्छत्रा

चित्र 173
महाराजा श्री पृथिवीमित्र (पांचाल)
की मोहर
अहिच्छत्रा

चित्र 174 क
श्रीभट्ट चदलिय-
गोमेद का विपरीत मुद्रांक
अहिच्छत्रा

चित्र 174 ख
जबुलस्य मिट्टी की मोहर
अहिच्छत्रा

चित्र 175
धर्मो रक्षति रक्षित
[illegible] से बना विपरीत मुद्रांक
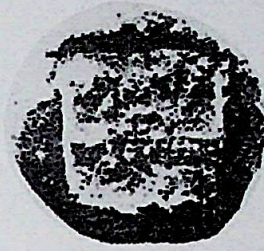
चित्र 176
हरनकरविहारे संघस
मिट्टी की मोहर

चित्र 177
सुधर्ममहाविहारे

चित्र 178
कुम्हकारसेणायै

चित्र 179
प्रवरस्य

चित्र 180
भास्करस्य

चित्र 181
कोदिपुत्रस देवदिनस

चित्र 182
(अज्ञात लेख)

चित्र 183 : श्रीरामिकस

चित्र 184 : ओपभदस

चित्र 185 : भोगीकस्य

चित्र 186 : कृष्णवस
--मि-

अहिच्छत्रा से प्राप्त मिट्टी की मोहरें

चित्र 187 : ईश्वरपुर
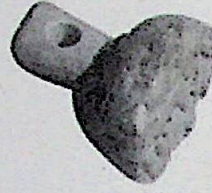
चित्र 188
मुडपुत्रस आहिलकस

चित्र 189
स्वस्तिक चिह्न

चित्र 190
शस्त्रास्त्रों के चित्रयुक्त मोहर

1. नम भगव..............................
2. ....बुधर..........................
3. (व)र्ष प्रथमे..........................
4. ....दिवसे 10, 1................
5. ....मित्रस्य प्र (पौत्रेण).......
6. ....स्य पौत्रेण शो................
7. ....भार्गविपुत्रेण..................
8. ....सु पांचालीये.................
9. ....स्थितेन हाति................
10. ....कायां पतितः..............
11. ....इतः स्थितेन..............

चित्र 191
पांचाल शब्द युक्त शिलालेख : अहिच्छत्रा

चित्र 192
..............गोशालस्याधिता मित्राये......................

चित्र 193
................पक........गन......धानन्यनस्य त.........अया (ये).......येधिच्छत्रकाये.......र्तिना..........
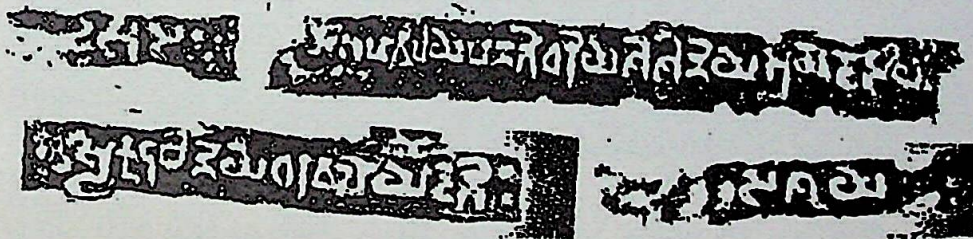
चित्र 194
..........सुस............गहवलाये पणति धरिये शिशिनिये अर्यदासिये..................
...........देवस्य कुटुम्बिनीये धरवलाये दति:.........सशुये...................
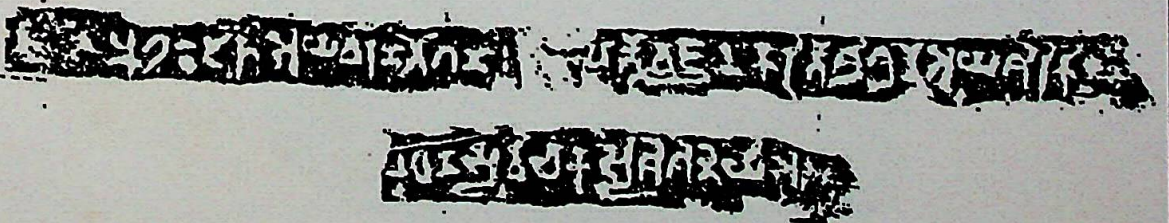
चित्र 195
सं. 704 गुप्त दि 5 2 अय वरणतो गणत: कुलतो वजनकरितो शिशिने अय शिरिकातो........
...........नधस्य वाचकस्य शिशिनिये अर्य................
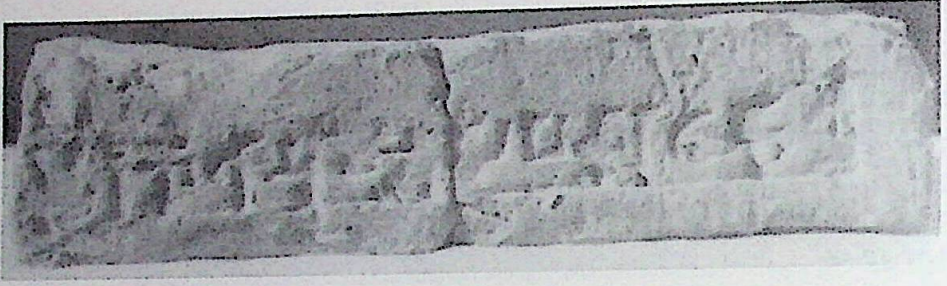
चित्र 196
...........र का भानुमित्रस्य पाकारिटका.................

चित्र 197
गोपालीस्यै राज्ञा जयति क्षत्रपस्य

चित्र 198
श्रीसूर्य्यनन्दन:
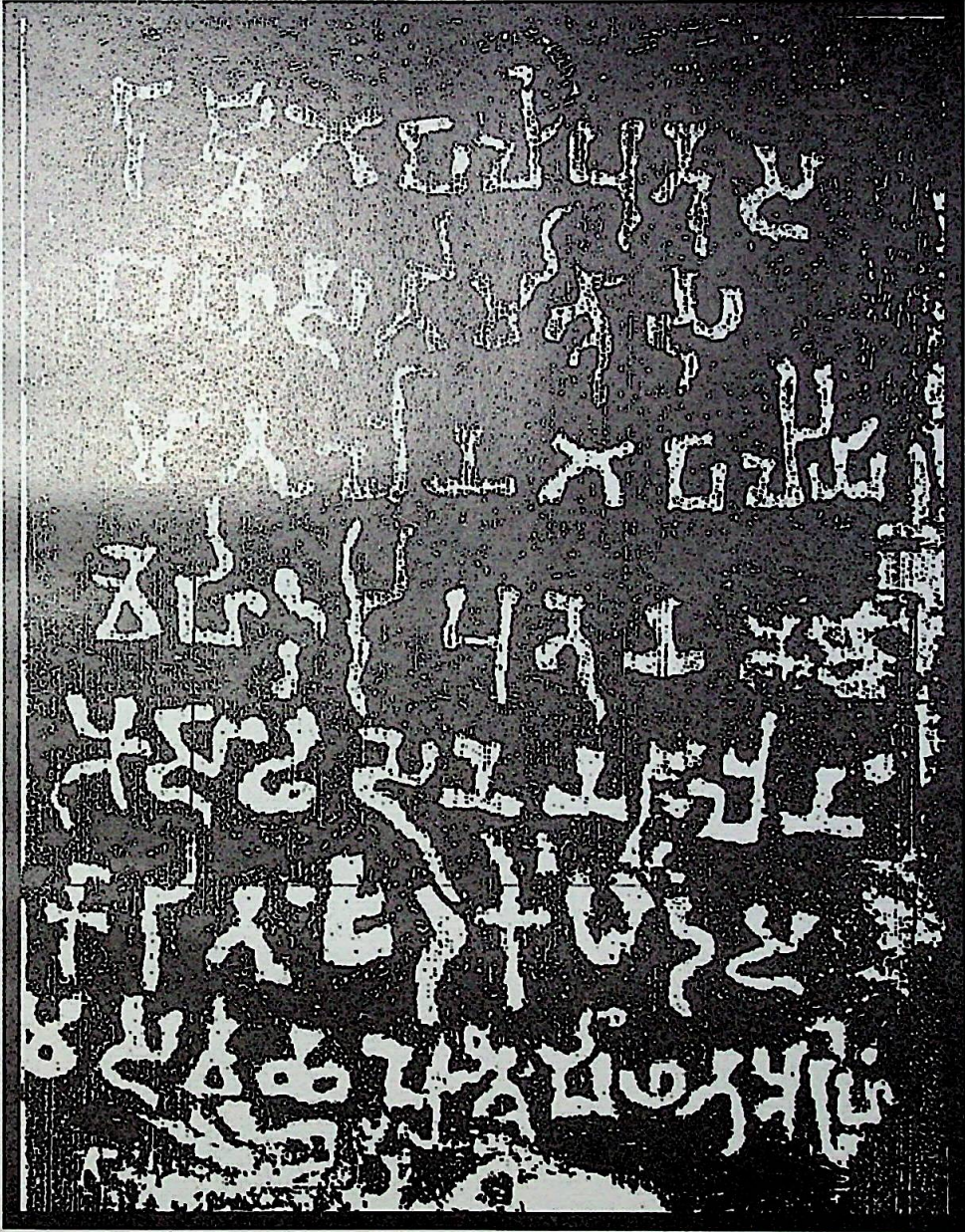
चित्र 199. पभोसा (कौशांबी) से प्राप्त गुहालेख

1. राज्ञो गोपालीपुत्रस
2. बहसतिमित्रस
3. मातुलेन् गोपालीयेन
4. वैहिदरीपुत्रेण–
5. आषाढसेनेन–लीनं
6. कारितं उदकपादस
7. मसवछपुत्र पो–त्र अरिहं

चित्र 200. पभोसा (कौशांबी) से प्राप्त गुहालेख

अधिच्छत्राया राज्ञो शोनकायनपुत्रस्य वंगपालस्य
पुत्रस्य राज्ञः तेवणीपुत्रस्य भागवतस्य पुत्रेण
वैहिदरीपुत्रेण आषाढसेनेन कारितं।

चित्र 200क.

राज्ञो गोपालिपुत्रस सूर्यमित्रस बाठमदिनकशैपु.......
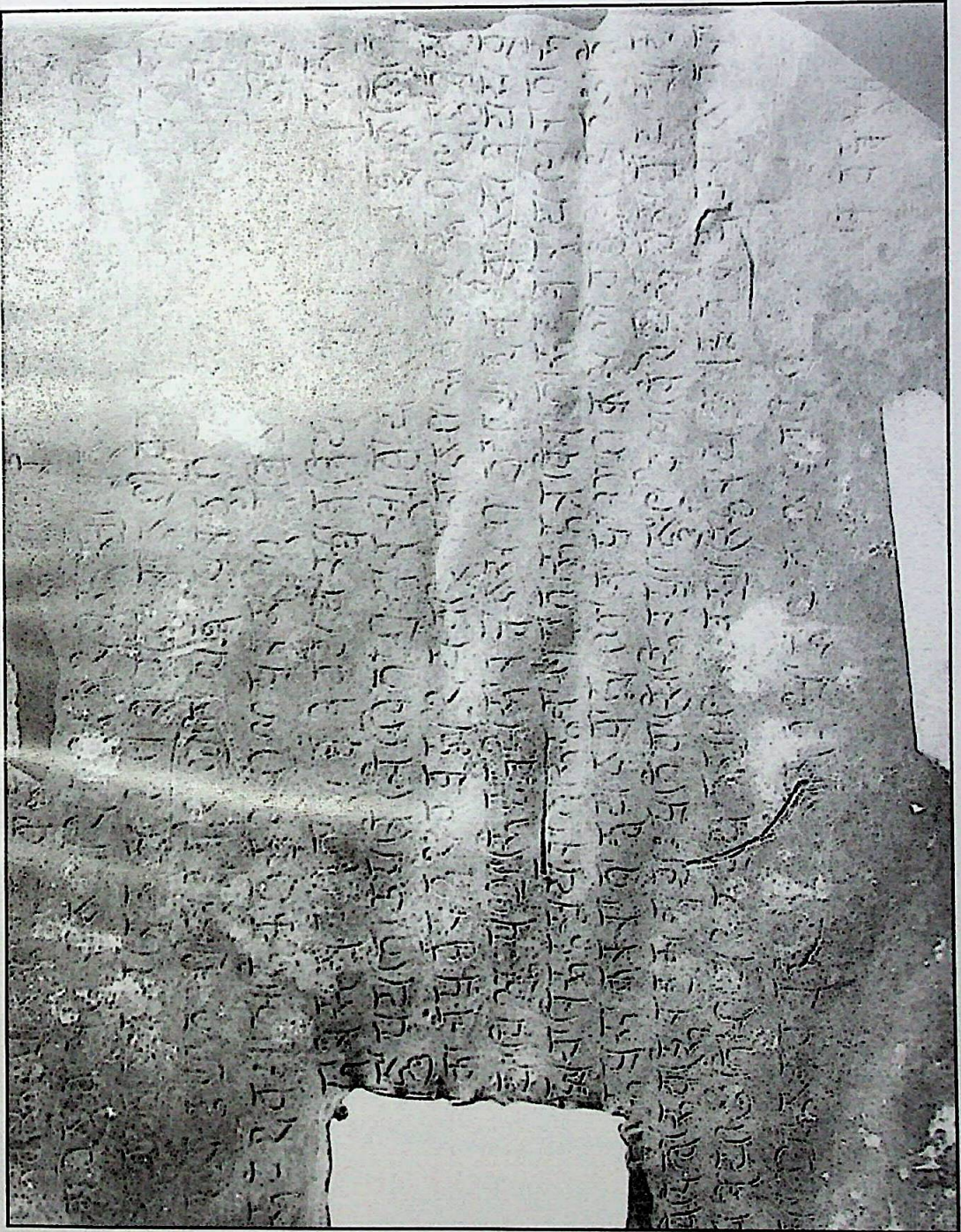
चित्र 201 :अहिच्छत्रा नाम से युक्त महाराज नागभट्ट देव का ताम्रपत्र
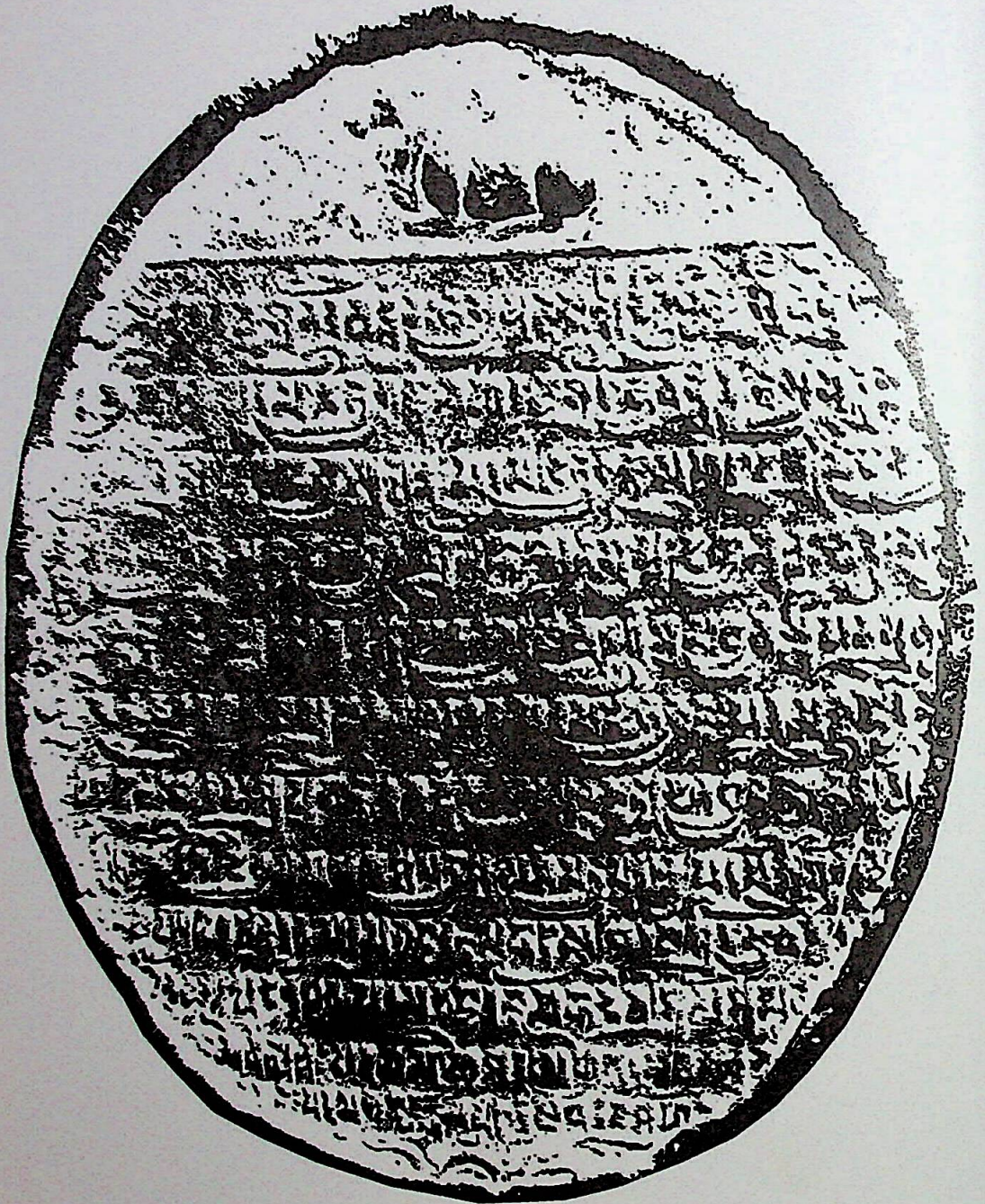
चित्र 202
महाराजा हर्षवर्धन का ताम्र-मुद्रांक
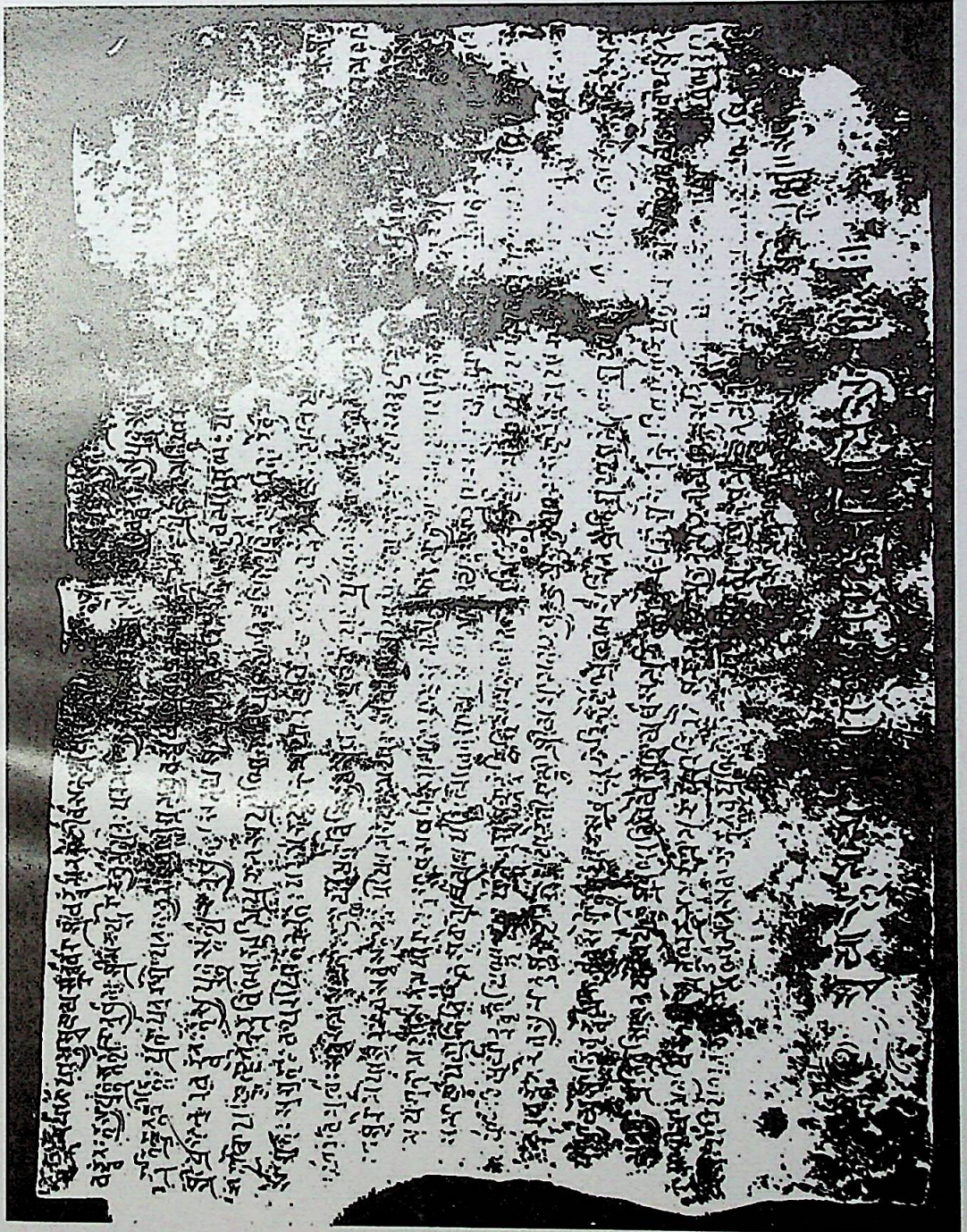
चित्र 203 : महाराजा हर्ष का ताम्रपत्र
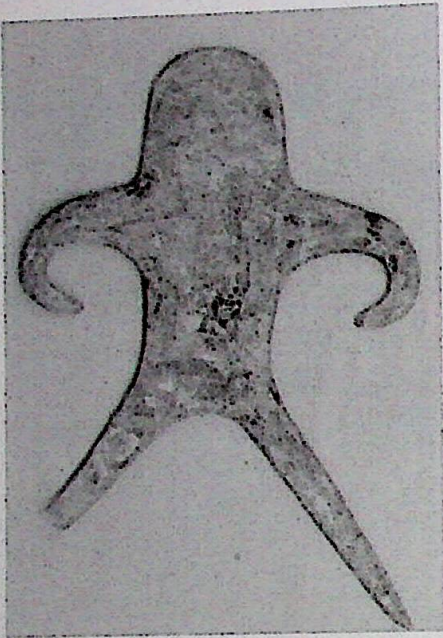
चित्र 204 चित्र 205

चित्र 206 चित्र 207 चित्र 208 चित्र 209 चित्र 210

पांचाल प्रदेश से प्राप्त ताम्रयुगीन शस्त्रास्त्र
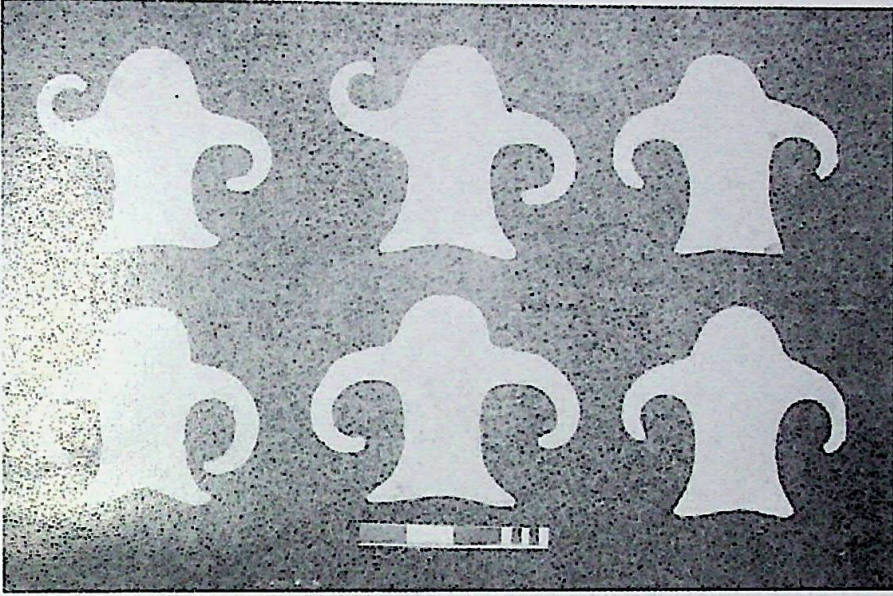
चित्र 211
मदारपुर (ठाकुरद्वारा, मुरादाबाद) से प्राप्त ताम्रयुगीन मानवाकृतियां
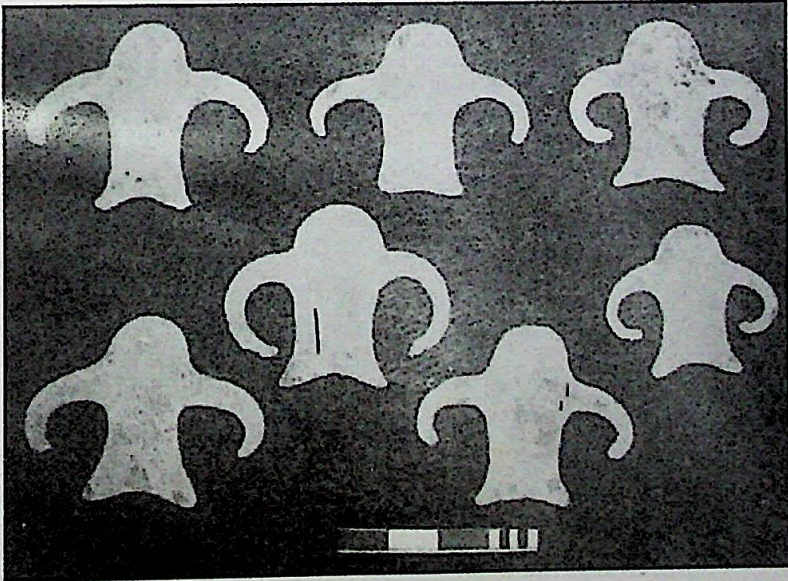
चित्र 212
मदारपुर (ठाकुरद्वारा, मुरादाबाद) से प्राप्त ताम्रयुगीन मानवाकृतियां

चित्र 213
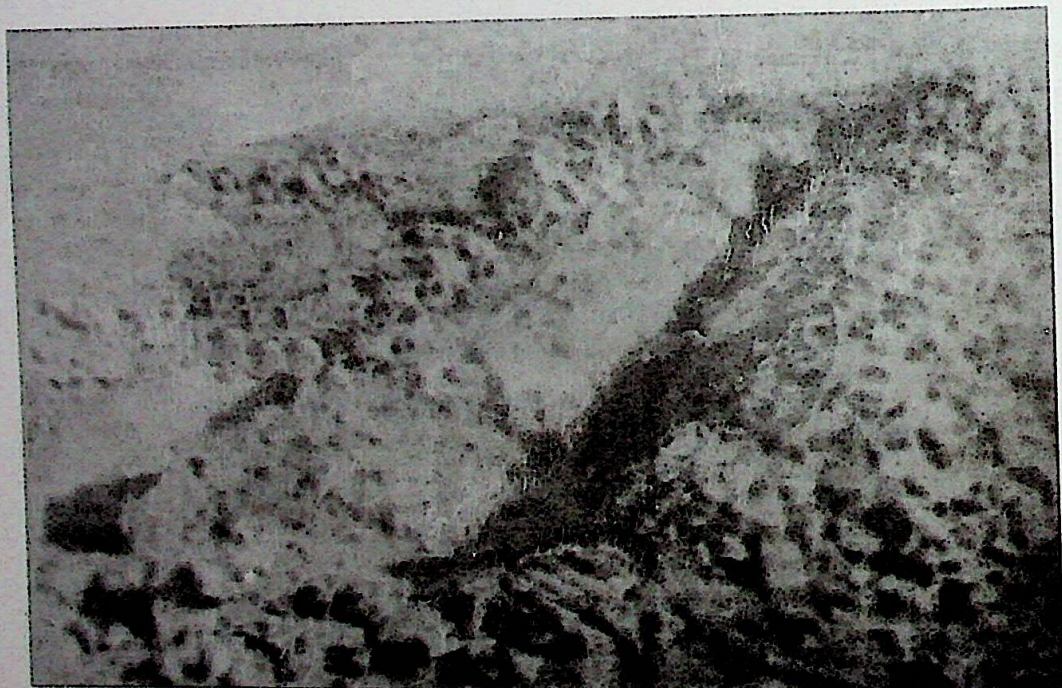
चित्र 214

अहिच्छत्रा की नष्ट की जा रही चारदिवारी के दृश्य

चित्र 215 : जैन तीर्थंकर ऋषभदेव की ताम्र प्रतिमा : अहिच्छत्रा
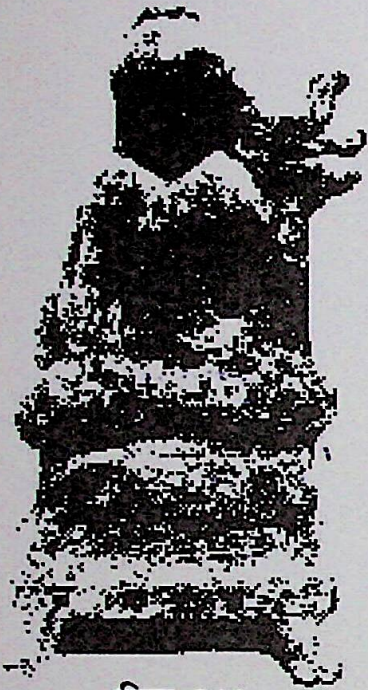
चित्र 216
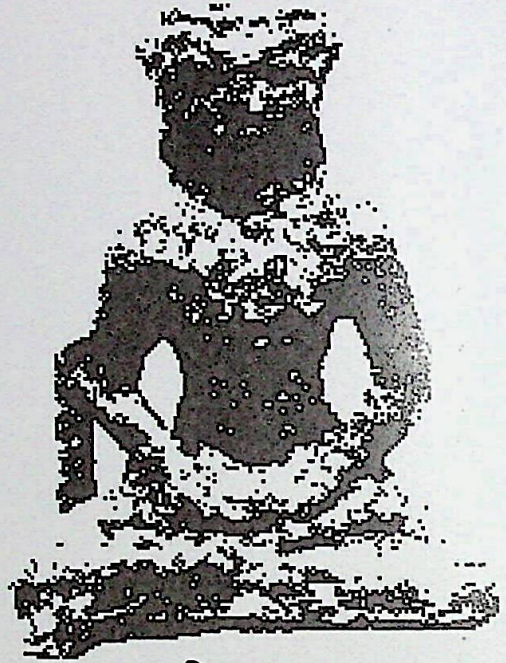
चित्र 217

चित्र 218

चित्र 219

जैन तीर्थंकरों की ताम्र प्रतिमायें : अहिच्छत्रा

चित्र 220
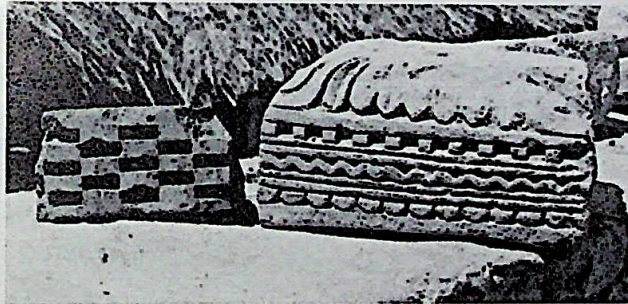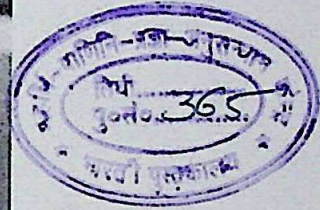
चित्र 221
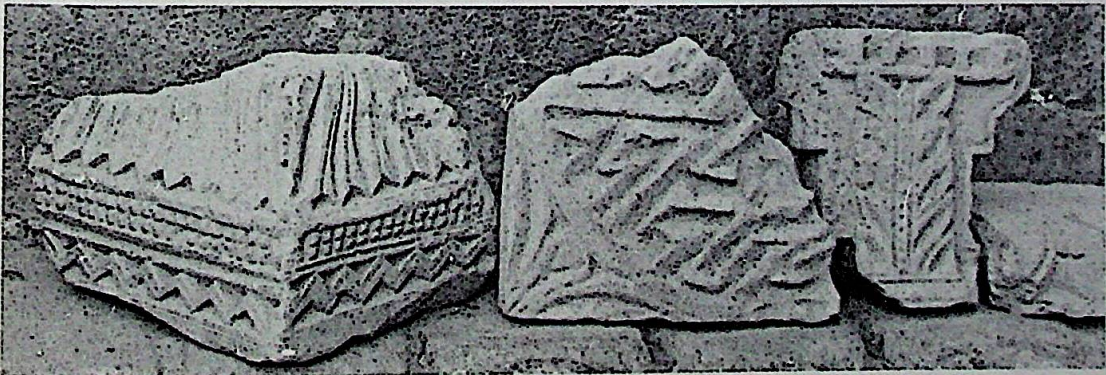
चित्र 222

कलात्मक ईंटें : अहिच्छत्रा से प्राप्त

चित्र 223
श्रीदण्डनायकहरिभवस्य
मिट्टी की मोहर : अहिच्छत्रा

चित्र 223 क
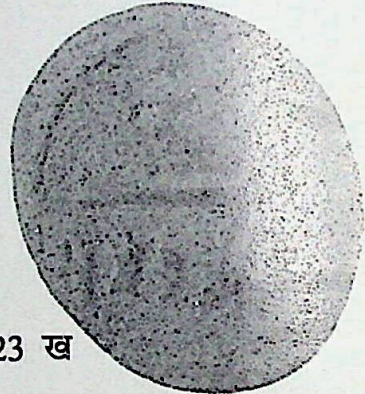
चित्र 223 ख

चित्र 223 क, ख
मिट्टी की मोहर : अहिच्छत्रा

चित्र 224 : श्रीदण्डनायकहरिभवस्य
मिट्टी की मोहर : अहिच्छत्रा

चित्र 225 : श्रीदण्डनायकयश ?
मिट्टी की मोहर : अहिच्छत्रा
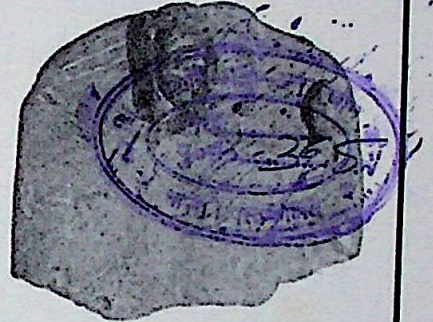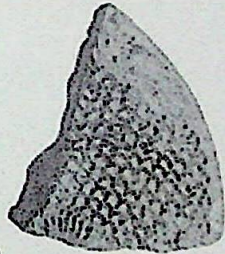
चित्र 226–232 : जसमापुर (उसावा) बदायूँ से प्राप्त कलाकृतियाँ
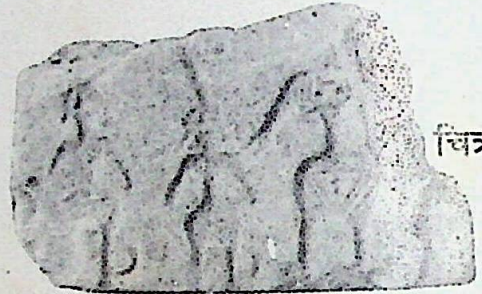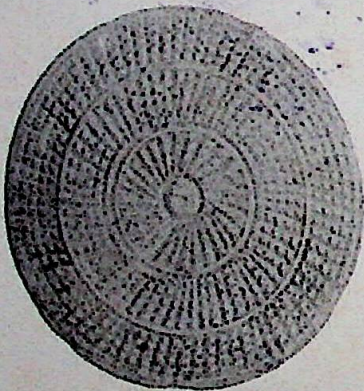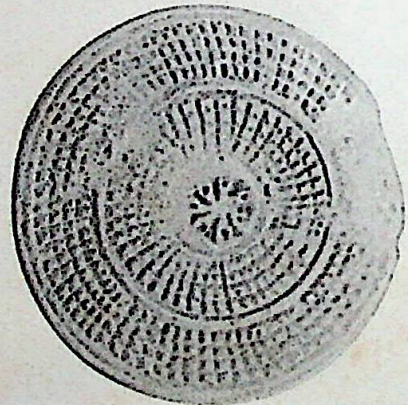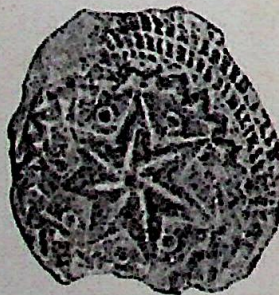
चित्र 233–242 : अहिच्छत्रा से प्राप्त कलाकृतियाँ
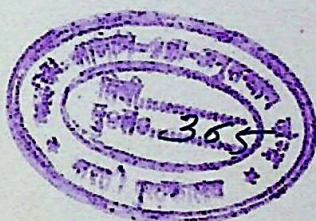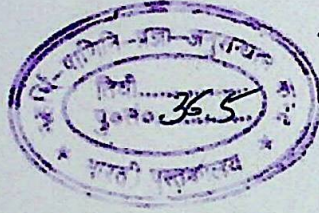
पुस्तक के विषय में

प्राचीन भारत में जितने राज्य वा जनपद थे, उनमें से 'पंचाल' की चर्चा वैदिक, संस्कृत, जैन और बौद्ध साहित्य में सर्वाधिक पाई जाती है। स्थापत्य-कला, कला-कौशल, साहित्यसर्जन, ब्रह्मविद्या आदि विषयों में यह राज्य सर्वोपरि था। इसी राज्य से संबंधित पुरावशेषों का अन्वेषण करके उनका साहित्य के साथ सचित्र और प्रामाणिक समीकरण करने का अद्भुत एवं सफल प्रयास इस ग्रंथ में अनुपम रूप से किया है। इस रूप में पंचाल क्षेत्र के विषय में सर्वप्रथम किया गया यह कार्य इतिहास पुरातत्त्व जगत् की धरोहर बन गया है। विदुषी लेखिका डॉ० सुषमा आर्या अपने प्रयास में पूर्ण सफल हुई हैं। ग्रंथ का गहन अध्ययन करने पर पदे-पदे यह सत्य साक्षात् प्रकट होता जान पड़ता है।

एक ही कुल की और विश्व की सबसे लंबी वंशावली प्राचीन मुद्राओं, मोहरों और शिलालेखों के आधार पर इस ग्रंथ के द्वारा प्रथम बार प्रकाश में आई है।